'ललिता'-संस्कृत-हिन्दी-टीकोपेता

चौखम्भा संस्कृत संस्थान • वाराणसी

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
284
****

LAGHUSIDDHĀNTAKAUMUDĪ

OF

Śrī VARADARĀ JĀCHĀRYA
(Sanskrite Śabda–Dhātu–sādhutva prakārah
Parikṣopyogi–Pariśiṣta Samyuktā)

with

'Lalitā' Sanskrit-Hindi Commentaries

Dr. KAUSHAL KISHOR PĀNDEYA
Āeharya (Vyākaran Darshan'a P. H. D.)
Edited with Prastāvanā
By
Dr. DĪNĀNĀNĀTHA TIVĀRĪ
Prāchārya (R. S. College Patna)
and
Dr. KAPIL DEO GIRI
Sāhityāchārya, M. A., Ph, D.
Parishishta Lekhaka
GAJENDRA PĀNDEYA, Yyākarṇāchārya

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar Near Maidagin)
VARANASI–221 001

भूमिका

संस्कृत भाषा का ही दूसरा नाम महर्षियों ने देववाणी कहा है—

"संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः"

संसार की अनेक भाषाओं में यही एक भाषा है जो वस्तुतः स्वर्ग से अवतीर्ण हुई है। इसलिए की विश्व के सब से प्राचीन और अनादि ग्रन्थ वेद की रचना सर्व प्रथम भगवान् इसी भाषा में किया है।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदत्रयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय मनीषियों के सद्विचार से ओत-प्रोत होने के कारण संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व लोकोत्तर होता गया है। देश की सम्पूर्ण संस्कृति सारा इतिहास तथा सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान संस्कृत में ही निहित है। विज्ञान कोश का रत्नाकर ऋग्वेद को भी संस्कृत भाषा में लिखा गया है, यही कारण है कि दूसरे देशों के विचारकों ने भी संस्कृत के प्रत्येक अंश का अध्ययन एवं अनुसन्धान तन्मयता से करते हैं। अंग्रेजी के रङ्ग में रङ्गे हम भारतीय संस्कृत को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। भारतवासियों के मन में एक प्रकार का भाव उत्पन्न हो गया हैं कि संस्कृत का अध्ययन कर तथा संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाकर भारत की शासन व्यवस्था को नहीं चलाई जा सकती; यही कारण है कि अंग्रेजी और उर्दू को बलात् भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया। परन्तु यह धारणा सर्वथा अनुचित है क्योंकि संस्कृत की संस्कृति में पले भारत का शासन सूत्र

संस्कृत के राष्ट्रभाषा होने से जितना अक्षुण्ण रह सकता है, उतना अन्य भाषा के राष्ट्रभाषा होने से नहीं।

निष्पक्षभाव से यदि विचार किया जाय तो उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों को राष्ट्रभाषा हिन्दी होने से जितनी कठिनाई होती है उतनी संस्कृत से नहीं, क्योंकि इन राज्य की भाषाओं में संस्कृत के अस्सी प्रतिशत शब्द का प्रयोग मिलता है। हिन्दी भी सौन्दर्य धारण संस्कृत से करती है। इसलिए भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत का होना अत्यावश्यक था, इससे संस्कृत भाषा के मुख में लगा हुआ ताला टूट जाता और हम भारतीय एक स्वर से 'संस्कृत भाषा की जय हो' के नारे से संस्कृत का स्वागत करने लगते।

आचार्य वरदराज विरचित लघुसिद्धान्तकौमुदी संस्कृत भाषा का दिनकर है, यदि इस ग्रन्थ को अनिवार्यरूप से प्रत्येक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन प्रारम्भ हो जाए तो अल्प समय में ही महाराज भोज के युग का उदय हो जाएगा।

एक समय एक ब्राह्मण को इंधन के भार से दबे देखकर राजा भोजने पूछा—

भूरिभारभराक्रान्तस्तवस्कन्धो न बाधति।

ब्राह्मण ने राजा के अशुद्ध वाक्य पर विचार करते हुए उत्तर दिया—

तथा न बाधते राजन्! यथा बाधति बाधते।

यानी राजा ने बाधति का प्रयोग किया जो अशुद्ध है बाधते होना चाहिए था।

व्याकरण

व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—वि + आङ् + कृ + ल्युट् (अण्) = व्याकरण, यानी—'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति

व्याकरणम्', जिससे साधुशब्दों का ज्ञान हो उसी का नाम व्याकरण है। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शास्त्र का अध्ययन परमावश्यक है क्योंकि व्याकरण के ज्ञान के विना वेद, पुराण, स्मृति, इतिहास, काव्य, कोश आदि किसी भी शास्त्र का ज्ञान सम्भव नहीं है। भास्कराचार्य ने इसी लिए लिखा है—

यो वेद वेद वदनं सदनं हि सम्यक्-
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्-
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥

शास्त्रकारों ने वेद के छः अङ्गों का वर्णन करते हुए व्याकरण को वेदाङ्ग का मुख कहा हैं—

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'

महाभाष्य में लिखे वाक्य—**"ब्राह्मणेन हि निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"** पर विचार करते हुए भगवान् पतञ्जलि ने कहा— **षट्स्वङ्गेषु प्रधानं व्याकरणम्, प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।** इस उक्ति से भी सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए मुख्यतः व्याकरण शास्त्र का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

इन्द्र और व्याकरण

महाभाष्य के वचनों के अनुसार ऐसा मालूम पड़ता है कि व्याकरण के प्रथम प्रवक्ता के रूप में इन्द्र थे।

क्योंकि वृहस्पति ने सर्व प्रथम एक हजार वर्ष लगातार देवाधिपति इन्द्र को प्रतिपदपाठ द्वारा शब्दों का उपदेश किया था, जैसा कि महाभारत में लिखा है—**"बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्ष सहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच"।**

आठ प्रकार के वैयाकरणों की चर्चा करते हुए वोपदेव ने भी सर्व प्रथम इन्द्र का ही नाम लिया है—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥ इति

आचार्य पाणिनि

पाणिनि के काल निर्णय में विवाद है; कोई तो इन्हें बुद्ध के बाद मानते हैं तो कोई यवन के, इसका कारण यह है कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में श्रवण और यवन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। इस समस्या का समुचित समाधान युधिष्ठिर मीमांसक जी ने व्याकरण शास्त्र का इतिहास में विक्रम से लगभग २८०० वर्ष प्राचीन सिद्ध किया है। गणतन्त्र महोदधि के निम्न व्युत्पत्ति से सिद्ध होता है कि पाणिनि का जन्म शालातुरीय नामक गाँव में हुआ था। (शालातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः, तत्र भवान् पाणिनिः इति) जो अभी पाकिस्तान में लाहौर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पाणिनि के माता का नाम दाक्षी और पिता का नाम पाणि था। इनके गुरु का नाम उपवर्षाचार्य जो नन्दराज के राज्यकाल में बिहार राज्य में स्थित नालन्दा विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध विद्वान् माने जाते थे। अध्ययनावस्था में ही पाणिनि ने अपनी तपस्या से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर के उन के आदेश से गुरु के आश्रम में ही (पटना में) अष्टाध्यायी सूत्रप्राठ आदि की रचना की थी, इसलिए आचार्यों ने कहा भी हैं—

अक्षरसमाम्नायमधिगम्यमहेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥

महामुनि कात्यायन

कात्यायन और पाणिनि तो समकालीन ही माने जाते हैं। पूर्व आचार्यों ने कात्यायन को महर्षि याज्ञवल्क्य के पुत्र माना है। कात्यायन स्मृतिकार और वार्तिककार दोनों हैं, "प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्याः" महाभाष्य के अनुसार यह सिद्ध होता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य थे।

वार्तिककारों में महामुनि कात्यायन सब से श्रेष्ठ हुए। और निम्नलिखित वार्तिक लक्षणों से सर्वथा पूर्ण है उनका वार्तिक—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः॥

कात्यायन का वार्तिक पाणिनि व्याकरण का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, क्योंकि वार्तिक विना पाणिनि व्याकरण अधूरा रह जाता, वार्तिक इस व्याकरण में लिखा गया जिस के कारण इस व्याकरण के आलोक में दूसरा व्याकरण पनप नहीं रहा है। महामुनि कात्यायन का ही दूसरा नाम वररुचि है। ये स्मृतिकार और वार्तिककार के साथ-साथ महाकवि भी थे। इन के 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य की प्रशंसा अनेक ग्रन्थों में भी की गयी है।

भगवान् पतञ्जलि

शेषावतार भगवान् पतञ्जलि द्वारा विरचित व्याकरण महाभाष्य की सभी ग्रन्थों में प्राथमिकता है, सभी व्याकरण इसके सामने घुटना टेक देता है। व्याकरण शास्त्र ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वाङ्मय का यह उदधि है।

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने भी लिखा है—

कृतोऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिता।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धनम्॥

भगवान् पतञ्जलि द्वारा विरचित तीन प्रमुख ग्रन्थ हैं—

१ पातञ्जलयोगसूत्रम्।
२ व्याकरणमहाभाष्यम्।
३ चरकसंहिता।

जैसा कि कैयट ने महाभाष्य की टीका के मङ्गलाचरण में लिखा है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

आचार्यों के कथनानुसार यह सिद्ध होता है कि पाणिनि और कात्यायन उपवर्षाचार्य नामक एक ही गुरु के दोनों शिष्य थे।

अध्ययन के समय कात्यायन की बुद्धि अति प्रखर थी, कात्यायन के सामने पाणिनि हतप्रभ हो जाया करते थे। अतः पाणिनि प्रयाग में अक्षयवट के नीचे जहाँ सनक सनन्दन आदि ऋषिगण तप करते थे, वहीं जाकर तपस्या करने लगे। इनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर नटराज भगवान् शङ्कर ने ताण्डव नृत्य करते हुए चौदहवार डमरू बजाकर तपस्वियों का मनोकामना को सिद्ध किया। इसका प्रमाण नन्दिकेश्वर विरचित काशिका में लिखा गया है, जो श्लोक से मिलता है।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

इन्हीं चौदह माहेश्वर सूत्रों के आधार पर पाणिनि ने व्याकरण की रचना की है।

पाणिनि द्वारा विरचित वैयाकरण (अष्टाध्यायी) सिद्धान्त कौमुदी में छुटे हुए अंशों को पुनः वार्तिक बना कर पुरा किया—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः प्राज्ञया यन्मनीषिणः॥

इस लोकोक्ति के अनुसार पाणिनि और कात्यायन दोनों ने आवेश में आकर परस्पर शाप के कारण त्रयोदशी तिथि को शिवलोक प्रस्थान कर गये। इसलिए त्रयोदशी तिथि को व्याकरण का अध्यय न करना निषेध माना जाने लगा।

पाणिनि तथा कात्यायन के निधन के बाद पाणिनि व्याकरण शनैः शनैः लुप्त होने लगा और मुकुटाचार्य ने एक नये ही व्याकरण की रचना करने लगे।

साक्षात् शङ्कर अपने डमरू से निकले ध्वनि को लुप्त नहीं होने देना चाहते थे, क्योंकि उनका अक्षर समाम्नाय अतिप्रिय है। पाणिनि व्याकरण को नष्ट होते आशुतोष भगवान् शङ्कर ने शेषशायी भगवान् विष्णु से प्रार्थना

की कि शेषनाग स्वतः पाणिनि व्याकरण को पल्लवित एवं पुष्पित रखने के लिए भूतल पर 'चिदम्बरम्' में अवतार ग्रहण करें।

चिदम्बरम् प्रदेश में उस समय गोणिका नाम की महाशक्ति ने तीव्र बुद्धि वाले पुत्र की कामना से भगवान् शङ्कर की आराधना कर रही थी। एक दिन तपस्विनी माता गोणिका भगवान् भास्कर को अर्घ्यदे रही थी कि अञ्जलि में भगवान् शेष के स्वरूप में अवतरित हुए। सर्प के रूप में उन्हें देखकर माता गोणिका घवरा कर पूछा—

प्रश्नः—गोणिका–को भवान् ?

शेषः—सप्पोऽहम्

गोणिका—रेफः क गतः ?

शेषः—त्वयाऽहृतः।

प्रश्नों के उत्तर को सुन कर माता गोणिका शेषरूप भगवान् को हँसते हुए बालक के रूप में पाया और उसी दिन उसका नाम पतञ्जलि रख दिया गया। कुछ ही दिनों के बाद भगवान् शङ्कर की कृपा से पतञ्जलि व्याकरण शास्त्र में पारङ्गत हो गये और प्रतिदिन हजारों की संख्या में शिष्यगण आ आकर उनसे पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन करने लगे।

आचार्य वरदराज

वरदराज भट्टाचार्य का जन्म दाक्षिणात्य ब्राह्मण कुल में हुआ था इनके पिता पूज्य दुर्गातनय तथा गुरु भट्टोजिदीक्षित थे, वरदराजाचार्य अपने पूज्य गुरु से आज्ञा प्राप्त कर सिद्धान्त कौमुदी के अध्ययन के पूर्व लघुसिद्धान्त कौमुदी नामक ग्रन्थ को पथ प्रदर्शक के रूप में रचना की।

सम्पूर्ण भारत में यदि संस्कृत को समृद्ध तथा उसके स्तर को ऊँचा करना चाहते हैं तो अतिशीघ्र ही पूर्ण ज्ञान के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन जोर शोर से प्रारम्भ करें।

इस संस्करण के सुसम्पादन में मुझे पूज्य गुरुवर डॉ० दीनानाथ तिवारी जी(प्रधानाचार्य रा० सं० महा० वि० पटना) से प्रेरणा मिली है। कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण विभाग के उपाचार्य डॉ० विकाऊ झा जी ने भी मुझे आध्यापित कर इस कार्य को करने के योग्य बनाया है, अतः मैं दोनों गुरुजनों के प्रति कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक में हुई त्रुटियों के लिए विद्वज्जनों से क्षमा मांगता हूँ। नीर-क्षीर विवेकी पाठक जन इसका अनुभव स्वयं करेंगे।

विनयावनत

कौशल किशोर पाण्डेय

आजकल लघुकौमुदी के बहुत से संस्करण प्रचलित हुए हैं। परन्तु सरल, सुबोध तथा प्रामाणिक व्याख्या से संयोजित और आधुनिक विद्यार्थियों की मनोभावनाओं को हृदयंगम बनाते हुए उपयोगी अन्य बहुत सी सामग्रियाँ इसमें भरी गई हैं। इसमें शब्दःसाधना की रीति, अनुवादोपयोगी शब्दों का संग्रह, अनुवाद बनाने के प्रकार तथा शब्द एवं धातुरूपावलियों का अच्छा संयोजन हुआ है। चुने हुए प्रश्न-पत्रों को भी संग्रह कर लिया गया है। इससे यह संस्करण बड़ा ही मनमोहक बना है तथा परीक्षोपयोगी भी है।

शिव के डमरू से व्याकरण की उत्पत्ति—माहेश्वरसूत्रों की उत्पत्ति—की कहानी अपने आप में रोचक है तथा आध्यात्मिक व्याख्यामंडित है जो संक्षेप से इस प्रकार है। लघुकौमुदी के मंगल-श्लोक के बाद ही चौदह सूत्रों से परिचय होता है। ये ही चौदह सूत्र पाणिनि की अष्टाध्यायी के मूल आधार हैं। ये 'शिवसूत्र' के नाम से भी पुकारे जाते हैं तथा वर्णों के यानी स्वर तथा व्यंजनों को अपने में वैज्ञानिक ढंग से सन्निवेश किए हुए हैं। इन्हीं के सहारे प्रत्याहार बनाने की रीति बालकों को समझाई जाती है। अतः इसे 'वर्णसमाम्नाय' भी कहा जाता है। ये १४ सूत्र महर्षि पाणिनि को शिव से मिले हैं। कहा जाता है कि सनकादि महर्षियों की तपस्या से खुश होकर आशुतोष शंकर ने ताण्डव नृत्य की समाप्ति पर १४ बार अपना डमरू बजाया था और उन तपोनिष्ठ महर्षियों के मनोरथ को पूरा किया। इसी पुण्यबेला में अपने व्याकरण की साधना का अलख जगाये हुए महर्षि पाणिनि तप करते थे और इस १४ बार की ध्वनि पर से ये १४ सूत्र की कल्पना कर बैठे। जैसा कि नन्दीकेश्वर कृत काशिका में निर्देश है :—

नृत्ताऽवसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शं शिवसूत्रजालम्॥

इसीलिए पाणिनि महर्षि ने इसे 'माहेश्वरसूत्र' कहा है तथा प्रयोजन भी बता दिया है (इति माहेश्वराणि सूत्राणीति)।

हाँ, तो शिव का ताण्डव नृत्य क्या है, क्यों होता है? इसे हृदयंगम यहाँ कीजिए। इन १४ सूत्रों के जरिये शिव की स्तुति भी कीजिए, महाफल प्राप्त होगा। शिवमन्त्र हैं ये सूत्र। देखिये, जब सदाशिव और उनकी शक्ति के समवेत भाव से जो स्पन्दन हुआ, वही जगत की उत्पत्ति का कारण बना। इसी को शिव का ताण्डव नृत्य कहते हैं। रसायनशास्त्र का सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रोन जो पुरुष के समान आधेय है उसका प्रोटोन, जो प्रकृति के समान आधेय है, के साथ संघर्ष होने से जो स्पन्दन होता है, उसी के द्वारा अणुओं की उत्पत्ति होती है तथा उन अणुओं से आकार बनते हैं।

जब परमशिव हर्षित होकर आनन्दमय होकर आनन्दमयी माँ से मिलकर नाचते हैं तो उस महा नाच से इस संसार की पैदाइशी होती है, नाना पदार्थों का जन्म होता है। इस तरह यह विश्व आशुतोष विश्वनाथ के नृत्य तथा नाद का सुफल है, क्योंकि शिवजी नाचते हुए डमरू भी बजाते ही हैं। तो जहाँ स्पन्दन होता है वहीं तो शब्द होता है। इस तरह शंकर भगवान के डमरू के शब्द से (जो पुरुष तथा प्रकृति के संयोग के जरिये नादरूप में प्रगट होता है।) व्याकरण के मुख्य सूत्र (अइउण् से हल् तक १४ सूत्र) की उत्पत्ति हुई। अतः भारतवर्ष में व्याकरण को उत्तर विद्या एवं छह वेदांगों में प्रधान माना गया है (व्याकरणं नामेयं उत्तरा विद्या, भाष्य १।२३२; प्रधानं च षट्सु अङ्गेषु व्याकरणम्)। यह शब्द चार प्रकार के (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) शब्दों में अन्तिम 'वैखरी' वाक् का व्यक्त रूप है। इसलिए वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर में शिव-शक्ति का वास है। इसीलिए 'मन्त्र' में भी शिवशक्ति का निवास होता है। इसी शक्ति के चलते शरीर के भीतर बनें कुदरती षट्मन्त्रों में इन अक्षरों का निवास है। इस शिवशक्ति के नाद का स्थान स्वर्ग के उपरि भाग में है जिसे 'परा' नाम से पुकारा जाता है। उस पराशक्ति को स्वर्गस्थ ऋषिगण मन्त्र रूप में दर्शन करते हैं, इसी हेतु से उसका 'पश्यन्ती' नाम पड़ा है। लेकिन ये मन्त्र उस परा

के आध्यात्मिक स्वरूप-लक्षण हैं एवं स्वर्ग में देखे-सुने जाते हैं। फिर बाद में वे मन्त्र में 'वैखरी' रूप से प्रगट होते हैं, इसलिए कि भगवान शिव उस परावाक् पराशक्ति के कारण हैं, जिसके जरिये मन्त्र आदि समस्त वाक्यों की उत्पत्ति हुई। इसलिए भगवान शंकर मन्त्र विद्या के प्रवर्तक माने जाते हैं। शिवपूजा के अन्त में 'बम्-बम्' बोला जाता है, स्नान करते समय भी 'बम्-बम्' कहते ही हैं, वह 'प्रणव' मन्त्र का ही सुलभ रूप है, जो बहुत ही शक्तिशाली है। निष्कर्ष, यह है कि ये चौदह सूत्र शिवमय हैं, शक्तिसम्पन्न हैं इसी से अष्टाध्यायी के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं ये माहेश्वर सूत्र।

अन्त में हम अपने पूर्वज विद्वानों के प्रति विनम्र हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, जिनकी साहित्यवाटिका से निर्भय होकर शब्द सुमनों को संग्रह किया है तथा सर्वसुलभ बना दिया है। यह संग्रह कैसा है, इसकी जाँच-परख उन सहृदयों संत हंसों पर सौंप रहा हूँ, वे ही इसका सही समादर करेंगे। भूल-चूक के लिए सही निर्देश भी चाहता हूँ जिसे यथासमय सुधारा जा सके। बाबा विश्वनाथ जी एवं अन्नपूर्णा जी की वरदानी दृष्टि इस रचना पर सदैव बनी रहे यही मेरी प्रार्थना है। इति शिवम्।

कार्तिकीपूर्णिमा
विद्याविहार
१११, नरिया, वाराणसी-५
दिनांक—१८-११-९४

विनीत—
कपिलदेव गिरि

शिवसूत्र-प्रत्याहार

व्याकरण में 'प्रत्याहार' शब्द का अर्थ है कि, एक ही ध्वनि के उच्चारण में कई अक्षरों का बोध। सूत्र में पहला अक्षर से लेकर अन्तिम सांकेतिक अक्षर तक जोड़ना या कई सूत्रों के होने पर अन्तिम सूत्र के अक्षर तक। जैसे—'अइउण्' सूत्र का प्रत्याहार 'अण्' तथा अ इ उ ण्—यानी अ से ण् तक के अक्षरों का आहरण किया गया है। इसी प्रकार ऋलृक् ए ओङ्, ऐ औ च्, इन चार सूत्रों का प्रत्याहार 'अच्' (= स्वर) प्रत्याहार हैं, इसी तरह व्यंजनों का प्रत्याहार 'हल्' तथा सभी वर्णों का बोधक 'अल्' प्रत्याहार हैं। नीचे की तालिका में स्पष्ट है :—

अक्—अ, इ, उ, ऋ, लृ।

अच्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ।

अण्—अ, इ, उ।

अट्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र।

अण्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल।

अम्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न।

अल्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

अश्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द।

इक्—इ, उ, ऋ, लृ।

इच्—इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ।

इण्—इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल।

उक्—उ, ऋ, लृ।

एङ्—ए, ओ।

एच्—ए, ओ, ऐ, औ।

ऐच्—ऐ, औ।

खय्—ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प।

खर्—ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स।

ङम्—ङ, ण, न।

चय्—च, ट, त, क, प।

चर्—च, ट, त, क, प, श, ष, स।

छव्—छ, ठ, थ, च, ट, त।

जश्—ज, ब, ग, ड, द ।

झय्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प ।

झर्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स ।

झल्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष स, ह ।

झश्—झ, भ, घ, ढ. ध, ज, ब, ग, ड, द ।

झष्—झ, भ, घ, ढ, ध ।

बश्—ब, ग, ड, द ।

भष्—भ, घ, ढ, ध ।

मय् -म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प ।

यञ्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ ।

यण्—य, व, र, ल ।

यम् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ थ, च, त, क, प ।

यर्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श. ष, स ।

रल्—र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ।

वल्– व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त क, प, श, ष, स, ह ।

वश् व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द ।

शर्– श, ष, स ।

शल्—श, ष, स, ह ।

हल्—ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ।

हश् - ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द ।

र

स्वरों का अष्टादश भेदबोधक चक्र

अ इ उ ऋ लृ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
ह्रस्वभेद	दीर्घभेद	प्लुतभेद
१ ह्रस्व उदात्तानुनासिक	७ दीर्घ उदात्तानुनासिक	१३ प्लुत उदात्तानुनासिक
२ ,, उदात्ताननुनासिक	८ ,, उदात्ताननुनासिक	१० ,, उदात्ताननुनासिक
३ ,, अनुदात्तानुनासिक	९ ,, अनुदात्तानुनासिक	१५ ,, अनुदात्तानुनासिक
४ ,, अनुदात्ताननुनासिक	१० ,, अनुदात्ताननुनासिक	१६ ,, अनुदात्ताननुनासिक
५ ,, स्वरितानुनासिक	११ ,, स्वरितानुनासिक	१७ ,, स्वरितानुनासिक
६ ,, स्वरिताननुनासिक	१२ ,, स्वरिताननुनासिक	१८ ,, स्वरितानुनासिक

वर्णोद्भवस्थानबोधक चक्र

कंठ	तालु	मूर्धा	दन्त	ओष्ठ	नासिका	कं. ता.	कं. ओ.	दं. ओ.	जि. मू.	नासिका
अ	इ	ऋ	लृ	उ	ञ	ए	ओ	व	≍क	
क	च	ट	त	प	म	ऐ	औ			
ख	छ	ठ	थ	फ	ङ				≍ख	
ग	ज	ड	द	ब	ण					अनुस्वार
घ	झ	ढ	ध	भ	न					
ङ	ञ	ण	न	म						
ह	य	र	ल	≍प						
ः	श	ष	स	≍फ						

विषयानुक्रमणिका

परिशिष्ट–विषयानुक्रमणिका

विषयाः पृष्ठाङ्काः

॥ ॐ नमः श्रीपरमात्मने ॥

श्रीवरदराजाचार्यकृत

लघुसिद्धान्तकौमुदी

ललिता-संस्कृत-हिन्दी-टीकोपेता

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

॥ अथ संज्ञाप्रकरणम् ॥

॥ माहेश्वरसूत्राणि ॥

अ इ उण् १ । ऋलृक् २ । ए ओङ् ३ । ऐ औच् ४ । हयवरट् ५ ।

श्रीरङ्गपदाम्भोजं परिभाव्य गुरोः गिरः ।
शब्दज्ञानाय बालानां क्रियते ललिता मया ॥

शुद्धस्वरूपां प्रशस्तगुणयुक्तां सरस्वतीं वाग्देवतां नमस्कृत्य बालानां सुखपूर्वकज्ञानलाभाय अहं=वरदराजभट्टाचार्यः, लघुसिद्धान्तकौमुदीनामकं ग्रन्थं रचयामीत्यर्थः ।

हिन्दी अनुवाद

नत्वा इति—मैं (वरदराज भट्टाचार्य) शुद्धस्वरूप, प्रशस्तगुणों से युक्त सरस्वती देवी को नमस्कार करके पाणिनीय व्याकरणशास्त्र में बालकों को सुखपूर्वक ज्ञान प्राप्ति के लिए 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ ।

विशिष्ट—नम् + क्त्वा=नत्वा, सरस्वतीं=द्वितीया विभक्ति एकवचन । देवीं = सरस्वती का विशेषण, शुद्धां = सरस्वती का विशेषण, गुण्यां = सरस्वती का विशेषण, पाणिनीयप्रवेशाय = चतुर्थी एकवचन ।

लण् ६। ञ म ङ ण नम् ७। झ भञ् ८। घढधष् ९। ज ब ग ड दश् १०। ख फ छ ठ थ च ट तव् ११। क पय् १२। श ष सर् १३। हल् १४।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषां अन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण्मध्ये तु इत्संज्ञकः।

१. हलन्त्यम् १।३।३॥

महेश्वरेणोपज्ञातानि महेश्वरादागतानि वा सूत्राणि माहेश्वरसूत्राणीति। तथा च नन्दिकेश्वरकृतकाशिकायामुक्तम्—

"नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥"

तथा च सूत्राणामन्त्याः ण् क् ङ् चकारादिवर्णाः अनुबन्धसंज्ञकाः।

अत्र प्रमाणम्—"अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥

तत्र सूत्रस्य किं लक्षणम्—अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वं सूत्रत्वमिति। सूत्रं षट्प्रकारकं भवति—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

हलन्त्यमिति सूत्रेण येषु माहेश्वरसूत्रेष्वन्त्यवर्णाः ते सर्वे इत्संज्ञकाः भवन्ति। प्रत्याहारार्थमित्संज्ञाकरणम्। उपदेश इति। अत्र केचन

धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगम प्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥ इति।

परन्तु महाभाष्ये पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलिप्रभृति वैयाकरणानामाद्युच्चारणमेवोपदेश पदेन गृह्यते।

उपर्युक्त चौदह सूत्रों के अन्त्य जो 'हल्' वर्ण ण्, क्, ङ्, च्, ट्, ण्, म् ञ् ष् श् व् य् र् ल् इत्संज्ञक होते हैं। यह माहेश्वर सूत्र 'अण्' आदि (प्रत्याहार) संज्ञाओं के लिए हैं। हकार आदि वर्णों में जो अकारादि देखे जाते हैं वे मात्र उच्चारण सामर्थ्य के लिए है परन्तु 'लण्' सूत्रस्थ लकार के अकार की इत्संज्ञा होती है।

इस माहेश्वर सूत्र में स्वर तथा व्यञ्जन दोनों सन्निहित हैं।

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ।

२. अदर्शनं लोपः १।१।६०॥

प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

३. तस्य लोपः १।३।९॥

तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

४. आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१॥

अन्त्येन इता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा—'अण्' इति अ इ उवर्णानां संज्ञा । एवमच् हल् अलित्यादयः ।

सूत्रेष्विति—यत्पदं सूत्रेषु न दृश्यते किन्तु तत्प्रतिपादनमावश्यकमिति, सूत्रान्तरात् तत्पदमनुवर्तनीयम् ।

प्रसक्तस्य–उपस्थितीत्यर्थः ।

णादयोऽणाद्यर्थाः—'ण्' इत्यारभ्य 'ल' पर्यन्ताः सूत्रान्त्यवर्णाः अण्, अक् आदि प्रत्याहारार्थाः ।

४. अन्त्येनेति—(प्राक् हलन्त्यमिति 'अण्' णकारस्येत्संज्ञा) इत्संज्ञक 'ण्' तत्सहित आदिः वर्णः 'अ' (उभयं मिलित्वा अण् प्रत्याहारस्य बोधको

---

१. उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् वर्णों की इत्संज्ञा (इत् नाम) होती है पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं । जैसे—'गम्' धातु उपदेश है और जब उसी को 'गच्छ्' आदेश हो जाता है तब वह उपदेश नहीं रह जाता यह सर्वत्र ज्ञेय है ।

जो पद सूत्र में नहीं है और उसकी आवश्यकता है तो उसको दूसरे सूत्र से सर्वत्र अनुवर्तन कर लेना चाहिए ।

२. विद्यमान शब्द का दर्शनाभाव ही लोप कहलाता है ।

३. जिसकी इत्संज्ञा होती है उसी का लोप होता है । अ इ उण् इत्यादि सूत्रों में जो ण् क् इत्यादि (हल अन्तिम वर्ण) हैं वे सभी प्रत्याहार सिद्धि के लिए हैं ।

४. अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण के साथ जो आदि उच्चार्यमाण वर्ण वह मध्यवर्ती वर्णों का तथा अपना बोधक होता है । जैसे—अण्—ऐसा कहने से अ इ उ इन

५. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १।२।२७॥

उश्च ऊश्च उ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्व-दीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादि भेदेन त्रिधा।

६. उच्चैरुदात्तः १।२।२९॥

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्।

७. नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्।

८. समाहारः स्वरितः १।२।३१॥

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा।

भवति), मध्यगानां ये पतिताः वर्णाः ते सर्वे संगृहीताः सन्ति 'अण्' कथनेनेति। पूर्वाकारः स्वस्य रूपस्य बोधकोऽपि भवति।

५. उकालेति—उ ऊ उ३ इत्युकारत्रयस्योच्चारणकालसदृश उच्चारणकालो यस्य अचः सोऽच् क्रमाद् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत संज्ञावान् भवतीति सूत्रार्थः।

८. उदात्तत्वानुदात्तत्वोभयधर्मावच्छिन्नवर्णविषयत्वं स्वरितसंज्ञकत्वम्। तेषां वर्णानां अनुनासिकाननुनासिकभेदाभ्यां द्विधाकरणेनाष्टादश भेदा भवन्ति।

तीनों वर्णों का बोध होता है। इसी प्रकार अच् हल् अल् इत्यादि समझना चाहिए।

५. एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक जिस अच् का उच्चारण काल है वह क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञक होता है और वह अच् पुनः उदात्त आदि भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं।

६. तालु आदि स्थान के ऊपर भाग से निष्पन्न जो स्वर वह उदात्त संज्ञक होता है।

७. तालु आदि स्थान के नीचे भाग को स्पर्श करते हुए उच्चरित अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है।

८. मध्यभाग में उच्चार्यमाण अच् स्वरित संज्ञक होता है। वह नौ प्रकार का जो अच् (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत भेद से) अनुनासिक अननुनासिक भेद से दो-दो प्रकार का होता है।

९. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम्—अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः । ऌवर्णस्य द्वादशस्तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश एतेषां ह्रस्वाभावात् ।

१०. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् । (ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) । अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा । ऌतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च ।

एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य ।

---

९. आस्ये = मुखे भवमास्यं = स्थानम्, प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः = आभ्यन्तरप्रयत्नेत्यर्थः । स्थानप्रयत्नौ ययोः परस्परं तुल्यौ तौ मिथः सवर्णौ इत्ययं सूत्रार्थः ।

---

९. मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है । सो इस प्रकार अ इ उ ऋ वर्णों में प्रत्येक के अठारह-अठारह भेद होते हैं । ऌ वर्ण के बारह भेद होते हैं, क्योंकि दीर्घ का अभाव रहता है, एचों के भी बारह-बारह ही भेद होते हैं, क्योंकि ह्रस्व का अभाव रहता है ।

१०. तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के तुल्य हों उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है (ऋ और ऌ वर्ण की परस्पर सवर्णसंज्ञा कहनी चाहिए) अ, कवर्ग, हकार और विसर्ग का उच्चारण कण्ठ स्थान है, इ, चवर्ग, यकार और शकार का उच्चारण स्थान तालु है । ऋ, टवर्ग, रेफ तथा षकार का उच्चारण स्थान मूर्धा है । ऌ, तवर्ग, लकार तथा सकार इनका उच्चारण स्थान दन्त है । उ, पवर्ग, उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है । ञ, म, ङ, ण, न का उच्चारण स्थान नासिका भी है । ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठतालु है । ओ और औ का कण्ठोष्ठ है । वकार का दांत और ओष्ठ स्थान हैं । जिह्वामूलीय का जिह्वामूल स्थान है । अनुस्वार का नासिका स्थान है ।

यत्नो द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यःपञ्चधा—स्पृष्टईषत्स्पृष्ट-ईषद्विवृत-विवृत-संवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादोऽघोषो घोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा-घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीय-चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तस्थाः। शल ऊष्माणः। अचः स्वराः। अ ≍ कः, अ ≍ खः इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वा-मूलीयः। अ ≍ पः, अ ≍ फः इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मा-नीयः। अं, अः, इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

प्रयत्न दो प्रकार का होता है; (१) आभ्यन्तर और (२) बाह्य। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार का होता है—स्पृष्ट-ईषत्स्पृष्ट-ईषद्विवृत-विवृत और संवृत। उनमें स्पर्शों का स्पृष्ट प्रयत्न है। अन्तस्थों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। उष्मवर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न है। स्वरों का विवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अवर्ण के प्रयोग में संवृत प्रयत्न होता है। किन्तु प्रक्रियादशा में विवृत ही रहता है।

बाह्यप्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है, जैसे—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। जिसमें खर प्रत्याहार के वर्णों के संवार, नाद, घोष प्रयत्न होते हैं। वर्गों के प्रथम-तृतीय-पञ्चम वर्ण तथा यण् इनका अल्पप्राण प्रयत्न होता है। वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ वर्ण और शल् प्रत्याहार का महाप्राण प्रयत्न है।

क से म तक स्पर्श वर्ण हैं। यण अन्तःस्थ वर्ण कहलाते हैं। शल् प्रत्याहार के वर्णों का ऊष्म नाम हैं। अचों की स्वर संज्ञा होती है। ≍ क ≍ ख से पूर्वार्ध विसर्ग-सदृश जिह्वामूलीय कहलाता है। ≍ प ≍ फ से पूर्वार्ध विसर्ग सदृश उपध्मानीय कहलाता है। अनुस्वार और विसर्ग अच् से परे होते हैं। जैसे—अं, अः।

११. अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः १।१।६९।।

प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः। तदे-

॥ आभ्यन्तरप्रयत्नबोधकचक्रम् ॥

स्पृष्टम् (स्पर्शवर्ण)	ईषद् स्पृष्ट	विवृतम्	इषद्विवृत	संवृतम्
क, ख ग. घ. ङ.	य,	अ. इ.	श	ह्रस्व 'अ'
च, छ. ज. झ. ञ.	र,	उ. ऋ.	स	प्रयोगे
ट. ठ, ड. ढ. ण.	ल.	ऌ. ए,	ष	
त.. थ, द. ध. न.	व.	ओ. औ. ऐ.	ह	
प. फ. ब. भ. म,				

॥ अत्रायं बाह्यप्रयत्नबोधकचक्रम् ॥

विवारः श्वासः अघोषः	संवारः, नादः घोषः	अल्पप्राणः	महाप्राणः	उदात्त । अनुदात्तः स्वरितः
क. ख. श.	क. ध. ङ. थ	ख ग. ङ. य	ख. ग. श.	अ. ए.
च. छ. ष,	झ. ञ. ब, ङ	च. ज ञ, व	छ. झ. ष	इ. ओ.
ट. ठ स.	ण. र. द. थ.	ट. ड. ण. र,	ठ. ढ. स.	उ. ऐ.
त, थ.	ल. ब. भ. म	त. द, न. ल,	श. घ. ह.	ऋ. औ.
प. फ.	ह. ज ढ न.	प. ब. म. औ.	फ. भ.	ऌ
		अ. ए ऐ. ओ.		
		इ, उ. ऋ. ऌ		

अणुदिदिति—प्रतीयते = विधीयते इति प्रत्ययः, अत्रैवाऽण् परेण णकारेण (लण्सूत्रस्थेनेति भावः)। इतोऽन्यत्र ढ्रलोपे इत्यादौ पूर्वेणैवाण्प्रत्याहारो ज्ञेयः।

११. विधान किये जानेवाले को प्रत्यय कहते हैं, अविधीयमान अण् और प्रत्याहार उदित् (कु चु टु तु पु) की सवर्ण संज्ञा होती है। इसी 'अणुदित्' सूत्र में अण् केवल पर णकार से लिया जाता है। कु-चु-टु-तु-पु ये उदित् कहलाते है। इस प्रकार 'अ' अठ्ठारह संज्ञाओं का बोधक होता है। इसी प्रकार इकार-उकार

वम्—'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ ऋकारस्त्रिंशतः। एवम् लृकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा। तेनानुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

१२. परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१०९॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

१३. हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।७॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञा स्युः।

१४. सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

॥ इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाण्ग्रहा मताः।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु॥ (इति हरकारिकायाम्)

। इति संज्ञाप्रकरणम्।

भी अठारह-अठारह के बोधक हैं। ऋ तीस संज्ञाओं का बोधक है, इसी प्रकार लृकार भी तीस संज्ञायुक्त होता है। एच् बारह के बोधक होते हैं अनुनासिक और अननुनासिक भेद से यवल दो दो प्रकार के होते हैं। इसी से य-व-ल दो-दो के बोधक होते हैं।

१२. वर्णों के अत्यन्त सामीप्य को संहिता कहते हैं।

१३. अचों के व्यवधान से रहित हल् संयोगसंज्ञक होते हैं।

१४. सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में संज्ञाप्रकरण समाप्त हुआ।

अच्सन्धिप्रकरणम्

१५. **इको यणचि ६।१।७७॥**

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। 'सुधी + उपास्यः' इति स्थिते।

१६. **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६६॥**

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

१७. **स्थानेऽन्तरतमः १।१।५०॥**

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। सुध्य् + उपास्य इति जाते।

१८. **अनचि च ८।४।४७॥**

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

१९. **झलां जश् झशि ८।४।५३॥**

स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

सुद्ध्युपास्यः—'सुधी + उपास्यः' इति स्थिते "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य", "स्थानेऽन्तरतमः" इति सूत्रद्वयसहकारेण "इको यणचि" इति सूत्रेण यणि कृते "अनचि चे'ति धकारस्य द्वित्वे, 'सुध् ध् य् उपास्यः' इति जाते 'झलां जश् झशि' इति पूर्वधकारस्य दकारः, 'संयोगान्तस्य लोपः' इति यलोपे प्राप्ते 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति वार्तिकेन निषेधे 'सुद्ध्युपास्यः इति। द्वित्वाभावपक्षे 'सुध्युपास्यः' इति। मधु + अरिः, धातृ + अंशः, लृ + आकृतिः इत्यादीनि ज्ञेयानि।

---

१५. इक् के स्थान में यण् होता है संहिता के विषय में अच् परे रहते।

१६. सप्तमी निर्देश के द्वारा विधीयमान कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व का होता है।

१७. प्रसङ्ग होने पर अत्यन्त सदृशतम आदेश होता है।

१८. अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व होता है, यदि पर में अच् न हो तब।

१९. झल् को जश् हो झश् परे रहते।

२०. संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्।

२१. अलोऽन्त्यस्य १।१।५२॥

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याऽल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते। (यणः प्रतिषेधो वाच्यः) सुद्ध्युपास्यः। मद्ध्वरिः। धात्त्रंशः। लाकृतिः।

२२. एचोऽयवायावः ६।१।७८॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि।

२३. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०॥

समसम्बन्धीविधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

२४. वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९॥

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्। (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः।

आदेशः शत्रुवत् भवति, आगमश्च मित्रवत्।

'हरे+ए, 'विष्णो+ए, 'नै+अकः', 'पौ+अकः' इत्यादिषु प्रयोगेषु 'यथासंख्यमनुदेशः समानामिति' सूत्रसहकारेण 'एचोऽयवायावः' इति यथाक्रमानुसारः एकारस्य स्थाने 'अय्', ओकारस्य 'अव्', ऐकारस्य 'आय्', औकारस्य 'आव्' आदेशाः भवन्ति तदा हरये, विष्णवे, नायकः, पावक; इति प्रयोगाः सिद्धयन्ति।

गो+यूतिः' इति दशायां 'वान्तो यि प्रत्यये' इति सूत्रे 'अध्वपरिमाणे च' इति वार्तिकेनोकारस्य स्थाने अवादेशे उक्तं रूपं सिद्धम् गव्यूतिरिति।

'गव्यूतिः स्त्रीकोशयुगम्' इत्यमरः।

---

२०. संयोगान्त पद का लोप होता है।

२१. षष्ठी निर्दिष्ट विधीयमान जो कार्य वह अन्त्य अल् के स्थान में होता है। (संयोगान्त यकार के लोप का प्रतिषेध समझना चाहिए)

२२. एचों के क्रम से अय् अव् आय् आव् आदेश होते हैं।

२३. सम् सम्बन्धी विधि कार्य यथाक्रमानुसार होता है।

२४. यकार हो आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय यदि पर में हो तो ओ और औ को अव्, आव् आदेश होते हैं। (वा० गोशब्द को वान्त अवादेश होता है यूति शब्द परे रहते यदि मार्ग का परिमाण बताना हो तब)।

२५. अदेङ् गुणः १।१।२॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ।

२६. तपरस्तत्कालस्य १।१।७०॥

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।

२७. आद्गुणः ६।१।८७॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ।

२८. उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थाऽवर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ।

२९. उरण् रपरः १।१।५१॥

'ऋ' इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव

अदेङ् गुणेति—अ, ए, ओ एते गुणसंज्ञकाः भवन्ति ।

तपरस्तत्—समकालस्य इति समानकालिकस्यैव, यथा ह्रस्व उच्चार्यमाणो ह्रस्वस्यैव बोधको न तु दीर्घानामिति अर्थः ।

उपेन्द्रः—'उप+इन्द्रः' इति दशायां 'आद्गुणः' इति पूर्वपरयोरकारेकारयोः स्थाने एकारः भवति, तदा उपेन्द्रः निष्पद्यते ।

गंगा + उदकम्, गज + इन्द्रः, रमा + ईशः इत्यादयः ।

---

२५. ह्रस्व अ और (ए, ओ) ये दो गुणसंज्ञावाले हैं ।

२६. तकार पर में रहे जिसके या तकार से पर में जो रहे, वह समकाल का बोधक ही ।

२७. अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होता है ।

२८. उपदेश अवस्था में अनुनासिक अच् की इत्संज्ञा होती है । पाणिनि आदि से कहे गये वर्ण, उनकी प्रतिज्ञा से जाने जाते हैं । लण् सूत्र में स्थित अवर्ण के साथ उच्चरित रेफ 'र' और 'ल' दोनों का बोधक होता है ।

२९. ऋ इति त्रिंशतः—संज्ञा प्रकरण में उक्त जो तीस प्रकार के ऋकार

प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः ।

३०. लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ।

३१. पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धं स्यात् । हर इह । हरयिह । विष्ण इह । विष्णविह ।

३२. वृद्धिरादैच् १।१।१॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ।

कृष्णर्द्धिः—कृष्ण + ऋद्धिः इति स्थितौ पूर्वपरस्थानयोः आद्गुणः इति अकारऋकारयोः स्थाने अकार गुणे कृते 'उरण् रपरः' इत्यनेन रपरत्वे कृष्णर्द्धिः इति ।

तवल्कारः—'तव + ऌकार' पूर्वोक्तरीत्यानुसारः ।

हर इह, हरयिह—'हरे+इह' इत्यवस्थायाम् 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इति सहकारेण 'एचोऽयवायावः' इति सूत्रेणायादेशे 'लोपः शाकल्यस्य' इति यकारलोपे 'हर इह' इति स्थिते 'आद्गुणः' इति गुणे प्राप्ते 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इति यलोपस्याऽसिद्धत्वाद् गुणाभावे 'हर इह' इति । यलोपाभावपक्षे हरयिह इति च । अनेन प्रकारेण विष्ण इह विष्णविह इति ।

ऌकार के स्थान में जायमान जो अण् (आदेश) वह यथाक्रम रपर और लपर का ही होता है ।

३०. लोपः शाकल्यस्य—अवर्णपूर्वक पदान्त यकार वकार का विकल्प से लोप होता है अश् परे रहते ।

३१. पूर्वत्रा०—सपादसप्ताध्यायीस्थ सूत्रों की दृष्टि में त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादियों में भी पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध होता है ।

३२. वृद्धिरादैच्—आ ऐ औ को वृद्धि संज्ञा होती है ।

नोट—पाणिनि के व्याकरण शास्त्र में आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं ।

त्रिपादि = तीन पाद मात्र, (अष्टम अध्याय के)

सपादसप्ताध्यायी = सात अध्याय और तीन पाद सहित ।

३३. वृद्धिरेचि ६।१।८८॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

३४. एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९॥

अवर्णादिजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्? उपेतः। मा भवान्प्रेदिधत्। वा० अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी सेना। वा० प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः। वा०—ऋते च तृतीया समासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम्? परमर्त्तः। वा०—प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे। प्रार्णम्। वत्सतरार्णम् इत्यादि।

कृष्णैकत्वम्—कृष्ण + एकत्वम् 'आद्गुणः' इति प्राप्त गुणं बाधित्वा 'वृद्धिरेचि' इति सूत्रेण 'कृष्णैकत्वम्' इति सिद्धम्।

उपैति—उप + एति इत्यवस्थायां 'एत्येधत्यूठ्सु' इति आकारैकारयोः स्थाने ऐकारादेशे उपैति, उपैधति इति।

प्रौहः—'प्र + ऊहः' इति विग्रहे 'प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु' इति पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरेकादेशे कृते तत्सिद्धम्। अनेन प्रकारेण—प्र + ऊढः, प्र + ऊढिः, प्र + एषः, प्र + एष्यः इत्यादि बोध्याः।

---

३३. अवर्ण के बाद यदि एच् मिले तो दोनों के स्थान में 'वृद्धि' नामक एकादेश होता है।

३४. अवर्ण के बाद एजादि जो एति, एधति या उठ् शब्द पर में मिले तो दोनों के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

वा०—अक्ष शब्दावयव अवर्ण के बाद ऊहिणी शब्दावयव अच् परे हो तो दोनों के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश होता है।

वा०—प्र शब्द के अवर्ण से पर में ऊह, ऊढ, ऊढि, ए या एष्य सम्बन्धी यदि अच् रहे तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि नामक एकादेश होता है।

वा०—अवर्ण के बाद ऋत शब्द सम्बन्धी अच् रहे तब पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता हैं परन्तु तृतीया समास हो तब।

वा०—प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश शब्द के अवर्ण से पर में

३५. उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५९॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप-एते प्रादयः।

३६. भूवादयो धातवः १।३।१॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

३७. उपसर्गादृति धातौ ६।१।९१॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

३८. एङि पररूपम् ६।१।९४॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्। प्रेजते। उपोषति।

प्रार्णम्—'प्र + ऋणम्' इत्यवस्थायाम् 'आद्गुणः' इति गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे' इति वृद्धौ 'उरण्रपरः' इत्यनेन तस्य रपरत्वे 'प्रार्णम्' इति सिद्धम्।

प्रार्च्छति—'प्र + ऋच्छति' इत्यवस्थायाम् 'उपसर्गाः क्रियायोगे' इत्यनेन 'प्र' इत्यस्योपसर्गसंज्ञायाम् 'भूवादयोः' इत्यनेन 'ऋच्छति' इत्यस्य 'धातुसंज्ञायां च सत्यां' उपसर्गादृति धातौ' इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धौ 'उरण् रपरः' इति रपरत्वे च कृते 'प्रार्च्छति' इति।

प्रेजते—'प्र + एजते' इत्यवस्थायां 'उपसर्गाः क्रियायोगे' इत्यनेन 'प्र' इत्यस्योपसर्गसंज्ञायाम् 'एङि पररूपम्' इति पूर्वपरयोः स्थाने पररूपैकादेशे 'प्रेजते' इति।

जो ऋण शब्दावयव अच्, उनके स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

३५. 'प्र' आदि उपसर्ग क्रिया के योग में होता है।

३६. क्रियार्थक 'भू' आदि की धातु संज्ञा होती है।

३७. अवर्णान्त उपसर्ग के बाद एङादि धातु परे पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

३८. अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

३९. अचोन्त्यादि टि १।१।६४।।

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्। वा०—शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धु। कर्कन्धुः। मनीषा। आकृतिगणोऽयम्। मार्त्तण्डः।

४०. ओमाङोश्च ६।१।९५।।

ओमि आङि चाऽत्परे पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायों नमः, शिवएहि।

४१. अन्तादिवच्च ६।१।८५।।

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्याऽन्तवत्परस्यादिवत् स्यात् शिवेहि।

४२. अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१।।

शकन्धुः—'शक+अन्धुः' इत्यवस्थायाम् 'अकः सवर्णे दीर्घः' इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इति वार्तिकेन पररूपे कृते उक्तं रूपं सिद्धम्।

शिवेहि—'शिव+आ+इहि' इत्यवस्थायां 'धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्' इत्यन्तरङ्गत्वात् सवर्णदीर्घस्याऽसिद्धत्वेन पूर्वम् 'आ इह' इत्यत्र 'आद्गुणः' इत्यनेन गुणे 'शिव+एहि' इति स्थिते 'अन्तादिवच्च' इत्यनेन अन्तवद्भावमादाय 'ओमाङोश्च' इत्यनेन पररूपे 'शिवेहि' इति सिद्धम्।

---

३९. अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह हो जिसके आदि में उस समुदाय की 'टि' संज्ञा होती है।

वा०—शकन्ध्वादि गण में पठित शब्दों का भी पररूप कहना चाहिए। वह पररूप 'टि' का ही होता है।

४०. अवर्ण के बाद यदि ओम् या आङ् हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

४१. यह जो एकादेश है वह पूर्व पद के अन्त जैसा और पर पद के आदि जैसा होता है।

४२. अक् से सवर्णी अच् परे रहते पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है।

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः । होतॄकारः ।

४३. एङः पदान्तादति ६।१।१०९॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव । विष्णोऽव ।

४४. सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।११२॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः स्यात् पदान्ते । गो अग्रम् । गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् ? चित्रग्वग्रम् । पदान्ते किम् ? गोः ।

४५. अनेकाल् शित्सर्वस्य १।१।५५॥

अनेकाल् य आदेशः शिदादेशश्च स सर्वस्य षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने स्यात् । इति प्राप्ते ।

गवाऽग्रम्—'गो + अग्रम्' इत्यवस्थायां 'एचोऽयवायावः' इत्यनेन अवादेशः प्राप्तः तं प्रबाध्य 'सर्वत्र विभाषा गोः' इत्यनेन प्रकृतिभावः प्राप्तः तमपि परत्वात् प्रबाध्य 'अवङ् स्फोटायनस्य' इति सूत्रेण अग्रमित्येतद्घटकाऽकारे परे पदान्त-विद्यमानस्य एङन्तस्य 'गो' इत्यस्य अवङादेशः प्राप्तः, स च अवङादेशः कुत्र स्यादिति प्रश्ने अवङः अनेकाल्त्वात् 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' इत्यनेन सर्वादेशे प्राप्ते 'ङिच्च' इत्यनेन ङिदादेशस्य अनेकाल्त्वेऽपि अन्त्यादेश इति गोशब्दे गकारोत्तर-वर्तिनः ओकारस्य अवङादेशे ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते 'गव अग्रम्' इति जाते 'अकः सवर्णे दीर्घः' इत्यनेन सवर्णदीर्घे 'गवाग्रम्' इति । अवङादेशाभावपक्षे 'सर्वत्र विभाषा गोः' इति प्रकृतिभावे 'गो अग्रम्' इति । प्रकृतिभावपक्षे 'एङः पदा-न्तादति' इति पररूपे 'गोऽग्रम्' इति ।

---

४३. पदान्त एङ के बाद यदि पर में अकार हो तो पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है ।

४४. लोक या वेद में एङन्त गो शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है अत् ह्रस्व परे रहते पदान्त के विषय में ।

४५. अनेक अलों के और शित् के स्थान में जो आदेश वह सम्पूर्ण के स्थान में होता है ।

४६. ङिच्च १।१।५३॥

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ।

४७. अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३॥

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि । गवाग्रम् । गोऽग्रम् । पदान्ते किम् ? गवि ।

४८. इन्द्रे च ६।१।१२४॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ।

४९. दूराद्धूते च ८।२।८४॥

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ।

५०. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५॥

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति ।

५१. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हरी एतौ । विष्णु इमौ । गङ्गे अमू ।

५२. अदसो मात् १।१।१२॥

गवेन्द्रः—'गो+इन्द्रः' इत्यवस्थायाम् 'इन्द्रे च' इति अवङादेशे अनुबन्धलोपे 'आद्गुणः' इति गुणे 'गवेन्द्रः' इति ।

---

४६. ङकार इत्संज्ञक अनेकाल् भी सम्पूर्ण के स्थान में होता है ।

४७. अच् परे रहते पदान्त के विषय में एङन्त गो शब्द को अवङ् आदेश होता है ।

४८. गो शब्द को अवङ् आदेश होता है यदि इन्द्र शब्द पर में हो तब ।

४९. दूर से बुलाने वाले वाक्य के टि को प्लुत होता है विकल्प से ।

५०. अच् परे रहते प्लुत और प्रगृह्य को नित्य प्रकृतिभाव होता है ।

५१. ईदन्त, ऊदन्त और एदन्त जो द्विवचन उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है ।

५२. अदस् शब्द सम्बन्धी मकार से परे इत् (ईकार) ऊत् (ऊकार) भी प्रगृह्य संज्ञक हैं ।

नोट—दूराह्वाहने च गाने च रोदने च प्लुतो मताः ।

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। माक्तिम्? अमुकेऽत्र।

५३. चादयोऽसत्त्वे १।४।५७॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

५४. प्रादयः १।४।५८॥

एतेऽपि तथा।

५५. निपात एकाजनाङ् १।१।१४॥

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः। (वा०) (वाक्यस्मरणयोरङित्।) आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित्। इषद् उष्णम् ओष्णम्।

५६. ओत् १।१।१५॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः। अहो ईशाः।

अमी ईशाः—'अमी+ईशाः' इति दशायां सवर्णदीर्घं प्रबाध्य 'अदसो मात्' इति सूत्रेण अदश्शब्दसम्बन्धिमकारात्परस्य ईकारस्य प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृतिभावे 'अमी ईशाः' इति सिद्धम्।

अमुकेऽत्र—'अमुके+अत्र' इति दशायाम् अयादेशं प्रबाध्य 'एङः पदान्तादति' इत्यनेन पूर्वरूपे 'अमुकेऽत्र' इति।

वाक्यस्मरणयोरङित्—ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ चयः। एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् विष्णो। इति—'विष्णो+इति' इति स्थितौ 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे' इत्यनेन औकारस्य प्रगृह्यसंज्ञायाम् 'एचोऽयवायावः' इति अवादेशं बाधित्वा 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृतिभावे सिद्धं रूपं 'विष्णोइति' (विष्णविति' इति रूपद्वयम् प्रगृह्यसंज्ञा भावपक्षे वैकल्पिके वकारलोपे)।

---

५३. द्रव्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा होती है।

५४. द्रव्यभिन्न 'प्र' आदि की भी निपात संज्ञा होती है।

५५. आङ् को छोड़कर एक अच् रूप निपात प्रगृह्यसंज्ञक होता है। (वा०) वाक्य और स्मरण अर्थ में आ ङित् नहीं होता अन्यत्र ङित् होता है।

५६ ओदन्त निपात की भी प्रगृह्य संज्ञा होती है।

५७. संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६॥

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

५८. मय उञो वो वा ८।३।३३॥

मयः परस्य उञो वो वा अचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

५९. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७॥

पदान्ता इको ह्रस्वो वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्रयत्र। पदान्ता इति किम्—गौर्यौ।

६०. अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ।

न समासे। (वा०) वाप्यश्वः।

किम्वुक्तम्—'किमु उक्तम्' इत्यवस्थायां 'मय उञो वो वा' इति मकारात्परस्य उञ् उकारस्य वकारादेशे 'किम्वुक्तम्' इति। वकारभावपक्षे—'निपात एकाजनाङ्' इत्यनेन प्रगृह्यसंज्ञायां 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृतिभावे कृते 'किमु उक्तम्' इति। चक्रयत्र–'चक्री + अत्र' इति स्थितौ 'इको यणचि' इति प्राप्तं यणं बाधित्वा 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' इति वैकल्पिके ह्रस्वे कृते सिध्यति रूपं 'चक्रि अत्र' इति। ह्रस्वाऽभावे यणि 'चक्रयत्र' इति च निष्पन्नः भवति।

गौर्यौ—'गौरी + औ' इति स्थिते यणं प्रबाध्य ह्रस्वसमुच्चितप्रकृतिभावापत्तिः स्यादिति तन्निवारणाय 'पदान्ते'त्येतस्यानुवृत्तिरावश्यकीति।

---

५७. सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार विकल्प से प्रगृह्य संज्ञक होता है अवैदिक शब्द परे रहते।

५८. मय से परे उञ् को वकार होता है विकल्प से अच् परे रहते।

५९. पदान्त इक् को ह्रस्व होता है विकल्प से असवर्ण अच् परे रहते। ह्रस्वविधानसामर्थ्य से सन्धि-कार्य यण् नहीं होता।

६०. अच् से परे जो रेफ और हकार उनसे परे वर्तमान यर् को द्वित्व होता है विकल्प से (बा० समास में ह्रस्व और प्रकृतिभाव नहीं होता)।

६१. ऋत्यकः ६।१।१२८॥

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः। पदान्ताः किम्—आर्च्छत्।

॥ इत्यच्सन्धिप्रकरणम् ॥

ब्रह्म ऋषिः—अत्रापि ह्रस्वविधिसामर्थ्याद् 'आद् गुणः' इति गुणो न।

आर्च्छत्—'आडजादीनाम्' इति जातस्याडागमस्य धात्ववयवत्वेन पदान्तत्वाभाव इति भावः।

इति 'ललिता' टीकायामच्सन्धिप्रकरणम्।

---

६१. ह्रस्व ऋकार परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व होता है विकल्प से।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में अच्सन्धिप्रकरण समाप्त हुआ।

●

अथ हल्सन्धिप्रकरणम्

६२. स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकार-चवर्गौ स्तः। रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जयः।

६३. शात् ८।४।४४॥

शात् परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात्। विश्नः। प्रश्नः।

६४. ष्टुना ष्टुः ८।४।४१॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्। रामष्षष्ठः। रामष्टीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे।

६५. न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२॥

पदान्ताट्टवर्गात् परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्। षट्सन्तः। षट्ते।

रामश्शेते—'रामस् + चिनोति' इत्यत्र 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति सकारस्य स्थाने शकारे कृते 'रामश्चिनोति' इति सिद्धम्।

विश्नः—विश् + नः = विश्नः। प्रश् + नः = प्रश्नः। विच्छप्रच्छधातुभ्यां 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' इति नङ्प्रत्यये 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इति शत्वम्।

रामष्षष्ठः—रामस् + षष्ठः' इति स्थितौ 'ष्टुनाष्टुः' इति सूत्रेण षकारयोगे सकारस्य षकारादेशः सिध्यति रूपं 'रामष्षष्ठः'। रामस् + टीकते। पेष् + ता। तत् + टीका। चक्रिन् + ढौकसे।

---

६२. सकार और तवर्ग का यदि शकार और चवर्ग से योग रहे तो सकार के स्थान में शकार और तवर्ग के स्थान में चवर्ग होता है।

६३. शकार से परे तवर्ग को चुत्व नहीं होता है।

६४. सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योग में 'षकार टवर्ग होते हैं।

६५. पदान्त टवर्ग से परे नामभिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है।

पदान्तात् किम्—ईट्टे। टोः किम्–सर्पिष्टमम्।

(वा०) अनाम्-नवति-नगरीणामिति वाच्यम्। षण्णाम्। षण्णवति। षण्णगर्यः।

६६. तोः षि ८।४।४३॥

न ष्टुत्वम्। सन्षष्ठः।

६७ झलां जशोऽन्ते ८।२।३९॥

पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः।

६८. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्। एतन्मुरारिः। एतद्मुरारिः।

(वा०) प्रत्यये भाषायां नित्यम्। तन्मात्रम्। चिन्मयम्।

ईट्टे—'ईड्+ते' इत्यवस्थायां डकारस्य पदान्तत्वाभावेन ष्टुत्वनिषेधाभावे ष्टुत्वेन तकारस्य टकारे, चर्त्वेन डकारस्य टकारे कृते 'ईट्टे' इति सिद्धम्।

सर्पिष्टमम्—सर्पिष्+तम (म्), अत्र 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' इति विहितस्य षकारस्याऽसिद्धतया जश्त्वाऽसम्भवेन (पदान्ते) षकार एव श्रूयते, इति तद्-व्यावृत्यर्थः 'टोः' ग्रहणमावश्यम्, अन्यथा षकारस्याप्यनुवृत्तौ अत्र दोषः स्यात्।

'षड्+नाम्' 'षड्+नवतिः' 'षड्+नगर्य्यः' इत्येतेषु 'अनाम्नवतिनगरी-णामिति वाच्यम्' इति नियमसहकारेण 'ष्टुना ष्टुः' इति ष्टुत्वेन नकारस्य णकारे तेषु आद्ये 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति नित्यमनुनासिकत्वे, अन्त्ययोः यरोऽनुना-सिकेऽनुनासिको वेति विकल्पेनानुनासिके तेषां सिद्धिः।

एतन्मुरारिः—एतद्+मुरारिः इति स्थितौ 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' इति दकारस्य नकारे कृते एतन्मुरारिः सिध्यति।

---

६६. तवर्ग को षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं होता है।

६७. पदान्त झल् को जश् होता है।

६८. पदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते अनुनासिक विकल्प से होता है (वा०—लोक में प्रत्यय का अवयव अनुनासिक परे रहते पदान्त यर् को नित्य अनुनासिक होता है)।

६९. तोर्लि ८।४।६०॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः। तल्लयः। विद्वाँल्लिखति। तस्यानुनासिको लकारः।

७०. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात्।

७१. तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६७॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

७२. आदेः परस्य १।१।५४॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम्। इति सस्य थः।

७३. झरो झरि सवर्णे ८।४।६५॥

हलः परस्य झरो लोपो वा स्यात् सवर्णे झरि।

७४ खरि च ८।४।५५॥

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदो दस्य तः। उत्थानम्। उत्तम्भनम्।

तल्लयः—'तत्+लयः' इति दशायां 'तोर्लि' इति परसवर्णे कृते 'तल्लयः' इति।

विद्वाँल्लिखति—'विद्वान् लिखति' इत्यवस्थायां 'तोर्लि' इत्यनेन परसवर्णे कृते 'विद्वाँल्लिखति' इति सिद्धम्।

उत्थानम्—'उद्+स्थानम्' इति दशायाम् 'उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इति सूत्रेण 'तस्मादित्युत्तरस्ये'ति परिभाषया पूर्वसवर्णे प्राप्ते 'आदेः परस्ये'ति सूत्र-

---

६९. तवर्ग को लकार परे रहते परसवर्ण होता है। तल्लयः = तल्लीन, विलीन या उसका नाश। विद्वाँल्लिखति = विद्वान् लिखता है।

७० उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण आदेश होता है।

७१. पञ्चमी निर्देश से किये जानेवाला कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित पर का बोधक होता है।

७२. पर से विहित कार्य पर के आदि का होता है।

७३. हल् से परे झर् का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर् परे रहते।

७४. खर परे रहते झलों को चर् होते हैं।

७५. झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२॥

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः। नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्ग चतुर्थः। वाग्घरिः, वाग्हरिः।

७६. शश्छोऽटि ८।४।६३॥

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि। तद् शिव इत्यत्र श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि चे'ति जकारस्य चकारः। तच्छिवः, तच् शिवः।

(वा०) छत्वममीति वाच्यम्। तच्छ्लोकेन।

७७. मोऽनुस्वारः ८।३।२३॥

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे।

बलात् ('स्था' इत्यस्यादिभूतस्य सकारस्य स्थाने) अघोषमहाप्राणप्रयत्नसाम्यात् थकारे पूर्वसवर्णे कृते 'उद् थ थानम्' इति जाते 'झरो झरि सवर्णे' इति (दकारोत्तरवर्तिथकारस्य) विकल्पेन लोपे 'सरि च' इति चर्त्वे 'उत्थानम्' इति। लोपाभावपक्षे 'उत्थ्थानम्' इति। विकल्पपक्षे 'खरि चे'ति चर्त्वन्तु न, चर्त्वंप्रति थकारस्याऽसिद्धत्वात्।

वाग्घरिः—'वाक् + हरिः' इत्यत्र 'झयो होऽन्यतरस्याम्' इत्यनेन स्थानप्रयत्नयोस्तुल्यत्वात् हकारस्य स्थाने वैकल्पिके अकारे, 'झलां जशोऽन्ते' इति धकारस्य जश्त्वेन गकारे तत्सिद्धम्। एवं चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्गेभ्यः-परस्य हकारस्य झकारढकारधकारभकाराः भवन्ति। उदाहरणानि—अज्झीनम्, षड्ढलानि, तद्धविः, गुब्भवति इति।

तच्छिवः—'तद् + शिव' इति स्थितौ, स्तोः श्चुनाश्चुः इति सूत्रेण दकारस्य जकारे 'खरि च' इति जकारस्य चकारे 'तच् शिवः' इति जाते 'शश्छोटि' इति सूत्रेण शकारस्य छकारादेशे 'तच्छिवः' इति रूपं सिध्यति। चत्वाभावपक्षे 'तच् + शिवः' इति। तद् + श्लोकेन = तच्छलोकेन।

---

७५. झञ् से परे हकार को पूर्वसवर्ण होता है विकल्प से।

७६. पदान्त झय् से परे श को छ होता है अट् परे रहते विकल्प से।

७७. मकारान्त पद को अनुस्वार होता है हल् परे रहते।

७८. नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४॥

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः। यशांसि। आक्रंस्यते। झलि किम्? मन्यसे।

७९. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८॥

स्पष्टम्। (अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णः स्यात्।) शान्तः।

८०. वा पदान्तस्य ८।४।५९॥

पदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात्। त्वङ्करोषि। त्वं करोषि।

८१. मो राजि समः क्वौ ८।३।२५॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

८२. हे मपरे वा ८।३।२६॥

मपरे हकारे मस्य मो वा। किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति।

(वा०) यवलपरे यवला वा। किँय्ह्यः, किंह्यः। किँव्ह्वलयति। किंह्वलयति। किँल् ह्लादयति, किंह्लादयति।

यशांसि—यशान्+सि इति स्थितौ 'नश्चापदान्तस्य झलि' इति सूत्रेण झलप्रत्याहारघटिते सकारे परतः अपदान्तस्य नकारस्यानुस्वारे कृते सिद्धं रूपं यशांसि। आक्रंस्यते—आक्रम्+स्यते।

त्वङ्करोषि—त्वम्+करोषि इत्यत्र 'मोऽनुस्वारः' त्वं करोषि, पाक्षिकपरसवर्णः—त्वङ्करोषि। सम्राट्—सम्+राट्, अज्झीनं परेण संयोज्यम्।

---

७८. अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है झल परे रहते।

७९. अनुस्वार को यय् परे रहते परसवर्ण होता है।

८०. पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहते विकल्प से परसवर्ण होता है।

८१. क्विबन्त सज् धातु पर में हो तो सम् के मकार को मकार ही होता है (परन्तु अनुस्वार नहीं) सम्राट् = चक्रवर्ती राजा।

८२. मपरक हकार परे रहते म् को म् विकल्प से होता है (य व ल परक हकार परे रहते मकार को क्रम से य व ल होते हैं विकल्प से)।

८३. नपरे नः ८।३।२७॥

नपरे हकारे परे मस्य नो वा। किम्ह्नुतः, किंह्नुतः।

८४. आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६॥

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः। षट्त्सन्तः। षट्सन्तः।

८५. ङ्णोः कुक्टुक् शरि ८।३।२८॥

ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि।

(वा०) चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्। प्राङ्ख्षष्ठः प्राङ्क्षष्ठः। प्राङ्षष्ठः। सुगण्ठ्षष्ठः। सुगण्ट्षष्ठः। सुगण्षष्ठः।

८६. डः सि धुट् ८।३।२९॥

डात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात्। षट्त्सन्तः। षट्सन्तः।

८७. नश्च ८।३।३०॥

षट्त्सन्तः—'षड् + सन्तः' इत्यत्र 'डःसि धुट्' इति धुडागमे 'षड् + ध् + सन्तः' इति स्थिते पूर्वधकारस्य चर्त्वेन तकारे कृते, तस्मिन्परे डकारस्य पुनश्चर्त्वेन टकारे 'षट्त्सन्तः' इति सिद्धम्।

सुगण्ठ्षष्ठः—'सुगण् + षष्ठः' इत्यवस्थायां 'ङ्णोः कुक्टुक शरि' इति णकारस्य टुगागमे 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' इति वार्तिकेन टकारस्य ठकारे 'सुगण्ठ्षष्ठः' इति। द्वितीयाक्षराभावे 'सुगण्ट्षष्ठः' इति, टुगागमाभावे सुगण्षष्ठः' इति सिद्धम्।

---

८३. नपरक हकार परे रहते 'म्' को 'म्' होता है विकल्प से।

८४. टित् कित् जिसको कहे जायें क्रम से उसके आदि और अन्त अवयव होते हैं, अर्थात् टित् आदि और कित् अन्त।

८५. ङकार णकार को कुक् और टुक् का आगम होता है, शर् परे रहते विकल्प से।

८६. डकार से परे जो सकार उसे धुट् का आगम होता है विकल्प से।

८७. नकारान्त पद से परे जो सकार उसे धुट् का आगम होता है विकल्प से। सन्त्सः = वह पुरुष।

नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा स्यात् । सन्त्सः, सन्सः ।

८८. शि तुक् ८।३।३१॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा स्यात् । सञ्छम्भुः । सञ्च्छम्भुः । सञ्च्शम्भुः । सञ्शम्भुः ।

८९. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८।३।३२॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याऽचो नित्यं ङमु डागमः स्यात् । प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः ।

९०. समः सुटि ८।३।५॥

समो रुः स्यात् सुटि ।

९१. अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८।३।२॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् ।

९२. अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८।३।४॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ।

सन्त्सः = सन् + सः ।

सञ्च्छम्भुः = सन् + शम्भुः, इत्यत्र नस्य विकल्पेन नुडागमे सन्त् + शम्भुः, 'शश्छोटि' इति शस्य, वा छत्वे सन्त् + छम्भुः, 'स्तोश्चुनाश्चु' इति श्चुत्वेन तस्य चः 'न'—स्य 'ञः' सञ्छम्भुः । 'झरो झरि सवर्णे' इति वा चलोपे 'सञ्छम्भुः । लोपाभावे सञ्च्छम्भुः । छत्वाभावे तुकि च सति सञ्च्शम्भुः, तुगभावे सञ्शम्भुः । इति ।

ञछौ ञचछा ञचशा ञशाविति रूपचतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात् ॥ इति ।

---

८८. शकार परे रहते पदान्त नकार को तुक् का आगम विकल्प से होता है ।

८९. ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त पद से परे अच् को प्रायः ङमुट् का आगम होता है ।

९०. सम के मकार को रु होता है सुट् परे ।

९१. इस रुप्रकरण में रु से पूर्व जो अच् उसको अनुनासिक होता है विकल्प से ।

९२. अनुनासिक पक्ष को छोड़कर रु से पूर्ववर्त्ती अच् परे (उपर) अनु-

९३. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

(वा०) संपुंकानां सो वक्तव्यः। सँस्कर्ता, संस्कर्ता।

९४. पुमः खय्यम्परे ८।३।६॥

अम्परे खयि पुमो रुः। पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः।

९५. नश्छव्यप्रशान् ८।३।७॥

अम्परे छविनान्तस्य पदस्य रुः स्यान्न तु प्रशान् शब्दस्य।

९६. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४॥

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व। अप्रशान् किम्? प्रशान् तनोति। पदान्तस्येति किम्? हन्ति।

संस्कर्ता, संस्कर्ता—('सम + कर्ता') 'सम्परिभ्यां करोतु भूषणे' इति सूत्रेण सुटि अनुबन्ध लोपे) सम् + स्कर्ता इति दशायां 'समः सुटि' इति सूत्रेण समो मस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे 'स र् स्कर्ता' इति स्थिते 'अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इति रोः पूर्वमनुनासिके 'सर स्कर्ता' इति दशायां 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इत्यनेन रेफस्य विसर्गे कृते 'विसर्जनीयस्य सः' इति विसर्जनीयस्य सत्वे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'वा शरि' इति विसर्जनीयस्य विसर्जनीये प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः 'इति वार्तिकेन विसर्गस्य सत्वे 'संस्कर्त्ता' इति। अनुनासिकाभावपक्षे तु 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' इत्यनेन अनुस्वारे कृते संस्कर्ता इति।

पुँस्कोकिलः—'पुम् + कोकिलः' इति स्थिते 'पुमः खय्यम्परे' इति सूत्रेण मस्य रुत्वे 'अत्रानुनासिकः……' इति अनुनासिके, 'पुँस्कोकिलः' इति स्थिते रेफस्य विसर्गः 'सम्पुकानां सो वक्तव्यः' इति विसर्गस्य सत्वे सिध्यति रूपं 'पुँस्को किलः' इति।

स्वार का आगम होता है।

९३. पदान्त रेफ को विसर्ग होता है खर् परे रहते।

९४. अम् परक खय् परे रहते पुम् के मकार के रु होता है।

९५. प्रशान् को छोड़कर अम्परक छव् परे रहते नान्त पद को रु होता है।

९६. खर् परे रहते विसर्ग को स होता है।

९७. नॄन् पे ८।३।१०॥

नॄनित्यस्य रुः स्याद्वा पकारे परे।

९८. कुप्वोः ≍क≍पौ च ८।३।३७॥

कवर्गे पवर्गे च परे विसर्गस्य ≍ क ≍ पौ स्तः। चाद्विसर्गः। नॄँ ≍ पाहि। नॄँः पाहि। नॄं ≍ पाहि। नॄंः पाहि। नॄन् पाहि।

९९. तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।२॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमाम्रेडितं स्यात्।

१००. कानाम्रेडिते ८।३।१२॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते। काँस्कान्।

नॄन् पाहि—'नॄन् पाहि' इत्यवस्थायां 'नॄन् पे' इति नॄनो नस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इति अनुनासिके 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे कृते 'विसर्जनीयस्य सः' इति अनेन विसर्गस्य सत्वे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' 'इत्युपध्मानीये कृते 'नॄँ ≍ पाहि, इति। अनुनासिकाभावपक्षे 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' इत्यनेन अनुस्वारे 'नॄं ≍ पाहि इति। उपध्मानीयाभावपक्षे—रुत्वानुनासिकविसर्गेषु कृतेषु 'नॄँः पाहि' इति। अनुनासिकाभावपक्षे अनुस्वारे कृते 'नॄंः पाहि' इति, रुत्वाभावपक्षे तु 'नॄन् पाहि' इति पञ्चरूपाणि भवन्ति।

काँस्कान्—'कान् कान्, इति दशायां 'तस्य परमाम्रेडितम्, इति अनेन परस्य 'कान्' इत्वस्याम्रेडितसंज्ञायां 'कानाम्रेडिते च।

इत्यनेनाम्रेडितसंज्ञके परे पूर्वस्य कान् इत्यस्य नकारस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इति अनेन अनुनासिके 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'

---

९७. 'नॄन्' इत पद को रु विकल्प से हो पकार परे होने पर। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् नकार ही के स्थान में रु आदेश होगा।

९८. कवर्ग और पवर्ग परे होने पर विसर्गों को क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय भी होते हैं।

९९. जो दो बार कहा गया हो उसके पर भाग की आम्रेडित संज्ञा हो।

१००. कान् शब्द के नकार के स्थान में रु आदेश हो आम्रेडित परे होने पर।

१०१. छे च ६।१।७३॥

ह्रस्वस्य छे परे तुगागमः स्यात् । शिवच्छाया ।

१०२. पदान्ताद्वा ६।१।७६॥

दीर्घात् पदान्ताच्छे परे तुग् वा स्यात् ।लक्ष्मीच्छाया । लक्ष्मीछाया ।

॥ इति हल्सन्धिप्रकणरम् ॥

इत्यनेन रेफस्य विसर्गे 'सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः' इत्तनेन विसर्गस्य सत्वे 'काँस्कान्' इति । अनुनासिकाभावपक्षे तु 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारे कांस्कान्' इति ।

शिवच्छाया—'शिव छाया' इति दशायां 'छे च' इति वकारोत्तरवर्त्वकारस्य तुकि अनुबन्धलोपे 'शिव त् छाया' इति जाते 'झलां जशोऽन्ते, इति तस्य जश्त्वेन दकारे 'स्तोः श्चुना श्चुः इत्यनेन दस्य श्चुत्वेन जकारे 'खरि च' इति जस्य चर्त्वे 'शिवच्छाया' इति ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां हल्सन्धिप्रकरणम् ॥

---

१०१. ह्रस्व को छकार परे होने पर तुक् का आगम हो ।

१०२. पदान्त दीर्घ को छकार परे रहते तुक् का आगम विकल्प से हो ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में हल्सन्धिप्रकरण समाप्त हुआ ।

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

१०३ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४॥

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। विष्णुस्त्राता।

१०४. वा शरि ८।३।३६॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात्। हरिः शेते। हरिश्शेते।

१०५. ससजुषो रुः ८।२।६६॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

१०६. अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।११३॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः।

१०७. हशि च ६।१।११४॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि। शिवो वन्द्यः।

१०८ भो-भगो-अघो अ-पूर्वस्य योऽशि ८।३।१७॥

शिवोऽर्च्यः—'शिवस् + अर्च्यः, इति दशायां 'ससजुषो रुः', इति सस्य रुत्वे 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इति रोरुत्वे 'शिव उ अर्च्यः' इति जाते 'आद्गुणः' इति गुणे 'एङः पदान्तादति'। इति पूर्वरूपे 'शिवोऽर्च्यः' इति सिद्धम्।

शिवो वन्द्यः—'शिवस् + वन्द्यः' इति स्थितौ 'ससजुषो रुः' इति रुत्वे 'हशि च' इति उत्वे वकारगताकारेण सहोकारस्य 'आद्गुणः' इति गुणे ओकारे सिध्यति रूपं शिवो वन्द्यः इति।

---

१०३. खर् पर में रहे तो बिसर्ग को स होता है।

१०४. शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग ही रहता है विकल्प से।

१०५. पदान्त सकार और सजुष् शब्द के षकार को रु होता है।

१०६. अप्लुत् अत् से परे रु को उ होता है अप्लुत अत् परे रहते।

१०७. अप्लुत अत् से परे रु को उ होता है हश् परे रहते।

१०८. अश् पर में हो तो, भोपूर्वक भगोपूर्वक अघोपूर्वक और अपूर्वक जो

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः तेषां रोर्यत्वे कृते ।

१०९. हलि सर्वेषाम् ८।३।२२॥

भो भगो अघो अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ।

११०. रोऽसुपि ८।२।६९॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ।

१११. रो रि ८।३।१४॥

रेफस्य रेफे परे लोपः ।

११२. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११॥

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । **अणः किम्** ? तृढः । वृढः । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि च इति उत्वे, रोरीति लोपे च प्राप्ते ।

११३. विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२॥

देवा इह—'देवास् + इह' इति दशायां 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे 'भोभगो' इत्यनेन रोर्यादेशे 'लोपः शाकल्यस्य' इति यलोपे 'देवा इह' इति' वैकल्पिक लोपपक्षे तु देवायिह इति ।

शम्भू राजते—'शम्भूस् + राजते, इति स्थिते 'ससजुषो रुः' इति रुत्वे 'रोरि' इति रलोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति दीर्घे' 'शम्भू राजते इति ।'

रु (र) को 'य' आदेश होता है ।

१०९. हल् परे रहते भो, भगो, अघो, अपूर्वक 'य' का लोप होता है ।

११०. सुप् परे रहते अहन् के नकार को रेफादेश दीर्घ होता है ।

१११. रेफ परे रहते रेफ का लोप होता है ।

११२. लोपनिमित्तक ढकार और रेफ परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

११३. तुल्यबलविरोध में पर कार्य होता है ।

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात्। इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्राऽसिद्धमिति 'रोरी'त्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव। मनोरथः।

११४. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्? एषको रुद्रः। अनञ्समासे किम्? असः शिवः। हलि किम्? एषोऽत्र।

११५. सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् ६।१।१३४॥

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत। सोमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

॥ इति विसर्गसन्धिप्रकरणम् ॥

मनोरथः—'मनस् + रथः', इत्यवस्थायां 'ससजुषो रुः' इति सस्य रुत्वे कृते 'हशि च' इत्यनेना रोरुत्वे प्राप्नोति, 'रो रि' इति रेफस्य लोपः प्राप्नोति। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इत्यनेन परत्वात् 'रो रि' इति लोप एव प्राप्नोति किन्तु 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति दृष्टया लोपस्यासित्वेनोत्वे गुणे च कृते 'मनोरथः' इति सिद्धयति।

शम्भुः—'सस् शम्भूः' इति अवस्थायां 'एतत्तदोः 'सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि' इति सूत्रेण सुलोपे 'स शम्भुः' इति।

सैष दाशरथिः—'सम् + एषः' इति स्थितौ 'सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्' इति सलोपे वृद्धौ सत्यां सैष दाशरथिरिति।

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः॥

॥ इति 'ललिता' टीकायां विसर्गसन्धिप्रकरणम् ॥

---

११४. ककार रहित एतत् और तत् शब्द सम्बन्धी सु का लोप होता है। हल परे रहते, नञ् समास को छोड़कर।

११५. तत् शब्द सम्बन्धी सु का लोप होता है अच् परे रहते, यदि लोप होने पर ही पाद-पूर्ति होती हो।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में विसर्गसन्धिप्रकरण समाप्त हुआ।

अथ षड्लिङ्गेषु अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम्

११६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

११७. कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः।

११८. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ४।१।२॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः। सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी।

अर्थोऽस्यास्तीति अर्थवत्, तेन धनं वनमित्यादौ प्रतिवर्णं संज्ञान। सत्यां च तस्यां स्वादयः, 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः इति लोपेऽपि पदसंज्ञायां जश्त्वन-लोपादयो दुर्वाराः एतत्सूत्रं सुभाषितस्यैतस्योत्तरम्—

तत्र प्रश्नः—विद्वान् कीदृग्वचो ब्रूते ? को रोगी ? कश्च नास्तिकः।
कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति ? सूत्रं तत्पाणिनेर्वद॥

उत्तर—(१) अर्थवत् = अर्थयुक्तः (२) अधातुः = निर्बलः, (३) अप्रत्ययः= विश्वास रहितः, (४) प्रातिपदिकम् = प्रतिपद् तिथौ चन्द्रं न पश्यन्ति।

कृत्तद्धितेति—'यत्रार्थवति संघाते पूर्वो भागस्तथोत्तरः।
स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हः समासस्यैव तस्य चेत्॥' इति।

---

११६. धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

११७ कृदन्त, तद्धितान्त और समास की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

११८. ङ्यन्त (ङी अर्थात् ङीप् या ङीष् आदि प्रत्यय अन्त में हों जिसके) और प्रातिपदिक से स्वादि (सु औ जस्) प्रत्यय होते हैं।

११९. ङ्याप् प्रातिपदिकात् ४।१।१॥

१२०. प्रत्ययः ३।१।१॥

१२१. परश्च ३।१।२॥

इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

१२२. सुपः १।४।१०३॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचन, द्विवचन, बहुवचनसंज्ञानि स्युः।

१२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः।

१२४. विरामोऽवसानम् १।४।११०॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ। रामः।

१२५. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४॥

रामः—रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः। (रम्+घञ) 'रामशब्दात्' प्रातिपदिकत्वात् प्रथमैकवचने 'सु' प्रत्यये अनुबन्धलोपे 'राम+स्' इति स्थितौ सस्य रुत्वे 'ससजुषो रुः' इति सूत्रेण रेफस्य 'खरवसानयोः' इति विसर्गे इति सिध्यति रूपं रामः।

'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥ इति श्रुतिः॥

---

११९. १२०. १२१. पाँचवें अध्याय की समाप्ति तक इन तीनों सूत्रों का अधिकार रहता है, ङ्यन्त, आबन्त ओर प्रातिपदिक से परे 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

१२२. सुप् के जो तीन-तीन वचन हैं वे क्रम से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञक होते हैं।

१२३. द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और एकत्व की विवक्षा में एकबचन होते हैं।

१२४. वर्णों के अभाव की अवसान संज्ञा होती है।

१२५. एक विभक्ति में देखे गये रूपों में से एक शेष रह जाता है (अन्य

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

१२६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् इति प्राप्ते।

१२७. नादिचि ६।१।१०४॥

आदिचि न पूर्वसवर्ण दीर्घः। वृद्धिरेचि। रामौ।

१२८. बहुषु बहुवचनम् १।४।२१॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

१२९. चुटू १।३।७॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः।

१३०. विभक्तिश्च १।४।१०४॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

१३१. न विभक्तौ तुस्माः १।३।४॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतो न स्युः। इति नेत्वम्। रामाः।

रामाः—'राम' शब्दात् प्रातिपदिकत्वात् 'जस्' विभक्तौ 'चुटू' इत्यनेन जकारस्येत्संज्ञायां 'तस्य लोपः' इति लोपे 'राम + अस्' इति, सकारस्यापि हलन्त्यमिति प्राप्तेत् संज्ञायां 'न विभक्तौ तुस्माः' इतीसंज्ञायाः निषेधे 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति पूर्वसवर्णदीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते सिद्धम् रूपं 'रामाः' इति।

का लोप होता है)

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेल्पे संख्यायाश्च प्रयुज्यते॥

१२६. अक् से प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अच् पर में रहे तो पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता हैं।

१२७. अवर्ण से परे रहते पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता है।

१२८. बहुतों की विवक्षा में बहुवचन होता है।

१२९. प्रत्यय के आदि में रहने वाले चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

१३०. सुप् और तिङ् की विभक्ति संज्ञा होती है।

१३१. विभक्ति के तवर्ग, सकार, मकार की इत्संज्ञा नहीं होती।

१३२. एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ।

१३३. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन् परेऽङ्गसंज्ञं स्यात् ।

१३४. एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६९॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाऽङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम । हे रामौ । हे रामाः ।

१३५. अमि पूर्वः ६।१।१०७॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ।

१३६. लशक्वतद्धिते १।३।८॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ।

१३७. तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३॥

हे राम—कारकपदेन सह सम्बोधनस्य प्रयोगः भवति प्रयोगोऽपि पूर्वमेव भवति, यथा—'हे राम' सम्बोधने 'हे, 'अयि, है, रे, धिक् इत्यादि सम्बोधन-शब्दानां प्रयोगाः सन्ति, क्वचिद्–हे शब्दं विनापि प्रयोगः, क्वचिद् उभयम् अपि शुद्धम् । यथा—हे रामः ! अत्रागच्छ, राम ! अत्रागच्छ ।

---

१३२. सम्बोधन में प्रथमा के एकवचन (सु) की सम्बुद्धि संज्ञा होती है ।

१३३. जिससे जो प्रत्यय किया जाता है तदादि जो शब्दस्वरूप उसका अङ्ग नाम होता है बाद में प्रत्यय रहने पर ।

१३४. एङन्त, ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सम्बुद्धि का अवयव 'हल्' का लोप होता है ।

१३५. अक् से अम् सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्वरूप एकादेश होता है ।

१३६. तद्धित को छोड़कर प्रत्यय के आदि में रहनेवाला ल, श और कवर्ग की इत्संज्ञा होती है ।

१३७. पूर्वसवर्णदीर्घ से परे शस् के सकार को नकार आदेश होता है ।

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ।

१३८. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२॥

अट् कवर्गपवर्गआङ्नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे । इति प्राप्ते ।

१३९. पदान्तस्य ८।४।३७॥

पदान्तस्य नस्य णत्वं न स्यात् । रामान् ।

१४०. टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२॥

अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः । णत्वम् । रामेण ।

१४१. सुपि च ७।३।१०२॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ।

१४२. अतो भिस् ऐस् ७।१।१३॥

अकारान्तादङ्गाद्भिस् ऐस् स्यात् । अनेकाल्शित्सर्वस्य । रामैः ।

रामान्—रामशब्दाद् द्वितीयाबहुवचने 'शसि, 'लशक्वतद्धिते' इति शस्येत्संज्ञायां लोपे कृते 'राम अस्,' इति स्थिते 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः', इति पूर्वसवर्णदीर्घे 'रामस्', इति जाते 'तस्माच्छसो नः पुंसि' इति सस्य नत्वे कृते 'अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि', इति णत्वे प्राप्ते 'पदान्तस्य', इति तन्निषेधे 'रामान्, इति ।

रामेण—रामशब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'टाङसिङसामिनात्स्याः', इति टास्थाने इनादेशे 'राम इन' इति स्थिते 'आद्गुणः' इति गुणे 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि', इति नस्य णत्वे 'रामेण' इति सिद्धम् ।

---

१३८. अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका व्यवधान रहने पर भी रेफ और षकार के बाद न को ण होता है समान पद में ।

१३९. पदान्त नकार को णकार नहीं होता है ।

१४०. अदन्ताङ्ग से परे टा, ङसि और ङस् के स्थान में क्रमशः इन, आत्, स्य आदेश होते हैं ।

१४१. अदन्त अंग को दीर्घ होता है यञादि सुप् परे रहते ।

१४२. अदन्त अङ्ग से परे भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है ।

१४३. ङेर्यः ७।१।१३॥

अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ।

१४४. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५६॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ।

१४५. बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः । रामेभ्यः । सुपि किम्—पचध्वम् ।

१४६. वाऽवसाने ८।४।५६॥

अवसाने झलां चरो वा । रामात् । रामाद् । रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ।

१४७. ओसि च ७।३।१०४॥

ओसि परेऽतोऽङ्गस्यैकारः स्यात् । रामयोः ।

रामाय—रामशब्दाच्चतुर्थ्येकवचने 'ङे' विभक्तौ 'ङेर्यः' इति 'ङेर्यादेशे, 'राम य' इति दशायां 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' इति स्थानिवद्भावेन सुप्त्वमादाय 'सुपि च' इति मकारोत्तरवर्तिनोऽकारस्य दीर्घे 'रामाय' इति सिद्धम् ।

रामस्य—रामशब्दात् षष्ठ्येकवचनविवक्षायां ङसि 'टाङसिङसामिनात्स्याः', इति ङसः स्यादेशे 'रामस्य' इति ।

---

१४३. अदन्त अङ्ग से परे 'ङे' के स्थान में य आदेश होता है ।

१४४. आदेश स्थानी के समान होता है किन्तु स्थानी सम्बन्धी अल्, उसको निमित्त मानकर कोई विधि करनी हो तो नहीं ।

१४५. झलादि बहुवचन सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है ।

१४६. पद के अन्त में (अवसान) झल् के स्थान में चर् होता है विकल्प से ।

१४७. अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है ओस् परे रहते ।

१४८. ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः स्यात् ।

१४९. नामि ६।४।३॥

नामि परेऽजन्तादङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाणाम् । रामे । रामयोः । सुपि एत्वे कृते ।

१५०. आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९॥

इण्कवर्गाभ्यां परस्य पदान्तस्याऽऽदेशः प्रत्ययावयवश्च यः सकारस्तस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः ।

रामाणाम्—रामशब्दात् षष्ठीबहुवचनविवक्षायाम् आमि विभक्तौ 'राम आम्' इति स्थिते 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि उकारटकारयोरित्संज्ञायां लोपे च विहिते 'रामनाम्' इति जाते 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति नस्य णत्वे 'रामाणाम्' इति सिद्धम् ।

रामशब्दस्य सप्तसु विभक्तिषु प्रयोगाः—

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम ! मामुद्धर ॥

रामशब्दस्य सप्तसु विभक्तिषु निम्नोक्त रूपं भवति—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्

---

१४८. ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् का आगम होता है ।

१४९. नाम परे रहते अजन्त अंग को दीर्घ होता है ।

१५०. इण् कवर्ग से परे अपदान्त आदेश रूप और प्रत्ययावयव सकार को षकार आदेश होता है ।

१५१. सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७॥

सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः। सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम। पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्।

१५२. जसः शी ७।१।१७॥

अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। सर्वे।

१५३. सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४॥

अतः सर्वनाम्नो ङे इत्यस्य स्मै स्यात्। सर्वस्मै।

१५४. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७।१।१५॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्-रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

सर्वे—विहितसर्वनाम-संज्ञक-सर्व शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन जसि, 'जसः शी' इति जसः स्थाने 'शी' आदेशे 'लशक्वतद्धिते' इति शकारस्येत्संज्ञायां 'तस्यलोपः,

---

१५१. सर्वादि गण में पठित शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है।

१५२. अदन्त सर्वनाम के परे जस् के स्थान में शी आदेश हो। अनेकाल्त्व होने के कारण सम्पूर्ण जस् के स्थान में शी आदेश होता है।

१५३. अकारान्त सर्वनाम से परे ङे को 'स्मै' आदेश होता है।

१५४. अदन्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि को क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं।

१५५. आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२॥

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्याऽऽमः सुडागमः स्यात्। एत्व-षत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः।

उभशब्दो द्विवचनान्तः। उभौ उभौ। उभाभ्याम् ३। उभयोः २। तस्येह पाठोऽकजर्थः। उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। डतर-डतमौ

इति लोपे 'आद्गुणः, इति गुणे 'सर्वे' इति सिद्धम्।

सर्वेषाम्—सर्वशब्दात् षष्ठीबहुवचने 'सर्व आम्' इति स्थितौ 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इति सुडागमे 'सर्वसाम्, इति जाते 'बहुवचने झल्येत्', इति एत्वे आदेश-प्रत्यययोः इत्यनेन षत्वे सिध्यति रूपं 'सर्वेषाम्' इति।

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः, उभयशब्दस्य द्विवचनं न भवति। डतर-डतम प्रत्ययान्ताः कतर कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतर, एकतम आदि शब्दाः सर्वनामसंज्ञका इति भावः।

---

१५५. अवर्णान्त अङ्ग से परे सर्वनाम से किये गये आम् को सुट् का आगम होता है।

उभ शब्द नित्य दिबचनान्त होता है। उभय शब्द का द्विवचन नहीं है। डतर और डतम प्रत्यय है। प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होता है। (इसका तात्पर्य की तत्प्रत्ययान्त शब्द लिया जाता है।) नेम का अर्थ है आधा।

प्रत्ययौ। प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ताः ग्राह्या। नेम इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु न, यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इति ज्ञापकात्।

१५६. पूर्वापरावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात् सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे पूर्वाः। असंज्ञायां किम्-उत्तराः कुरवः। **स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था**। व्यवस्थायां किम् ?—दक्षिणा गाथकाः कुशला इत्यर्थः।

१५७. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्।

'समः'—समशब्दः तुल्यपर्यायश्च, किन्त्वत्र (सर्वादिगणे) सर्वपर्यायस्यैव ग्रहणमन्यथा यथा संख्यमनुदेशः समानामिति सूत्रे समानामित्यस्य स्थाने समेषामिति स्यात्।

स्व शब्दस्य चत्वारोऽर्थाः—(क) आत्मा (ख) आत्मीय, (ग) ज्ञाति = (जाति), (घ) धनरूपाः तत्रात्मात्मीयवाचिनः सर्वनामसंज्ञा, न तु ज्ञातिधनवाचिनः। उपसंव्यानम् = परिधानीयम् = (वस्त्रादिकम्)।

सर्वार्थवाची सम शब्द की सर्वनाम संज्ञा होती है। तुल्यार्थवाची का नहीं। यदि तुल्यार्थ का होने लगे तो 'यथासंख्यमनुदेशः' सूत्र से 'समानाम्' के स्थान में 'समेषाम्' होना चाहिए था।

१५६. व्यवस्था और असंज्ञा अर्थ में 'पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर शब्दों की सर्वत्र गण सूत्र से प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस् पर में हो तो विकल्प से होती है।

पूर्वः—पहिला। परः—अन्य। अवरः—निकृष्ट। दक्षिण, उत्तर दिशा का नाम। अपरः = दूसरा। उत्तराः कुरवः—उत्तर कुरु नाम देश।

१५७. ज्ञाति धन से अन्य आत्मा:आत्मीय अर्थ में स्व शब्द को गणसूत्र से नित्य प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस् परे विकल्प से होती है।

स्वे, स्वाः। आत्मीया आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु—स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा।

१५८. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १।१।३६॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्। अन्तरे अन्तरा वा गृहाः। बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः। परिधानीया इत्यर्थः।

१५९. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्वस्मिन् पूर्वे। एवं परादीनाम्। शेषं सर्ववत्।

१६०. प्रथम-चरम-तयाल्पार्धकतिपय-नेमाश्च १।१।३३॥

एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः प्रथमे, प्रथमाः। तयः प्रत्ययः द्वितये द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे, नेमाः. शेषं सर्ववत्। (तीयस्य ङित्सु वा) द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जरः।

पूर्वस्मात्—पूर्व शब्दात् ङसि 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति ङसेः स्थाने स्मादित्यादेशे जशत्वे चर्त्वे 'पूर्वस्मात् इति' चर्त्वाभावपक्षे पूर्वस्मादिति। स्मदादेशाभावपक्षे तु पूर्वशब्दात् ङसि 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इति ङसेः स्थाने आदादेशे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे जश्त्वे चर्त्वे च कृते 'पूर्वात्' इति। चर्त्वाभावपक्षे पूर्वादिति। तेन तदन्ताः = (तयप्प्रत्ययान्ताः) = द्वितय-द्वय-त्रितय त्रय-चतुष्टय-पञ्चतय-षट्तय सप्ततय-अष्टतय नवतय-दशतयादयो ग्राह्याः, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति नियमात् केवल प्रत्ययस्य सर्वनामत्वे प्रयोजनाभावात्।

---

१५८. बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द की गणसूत्र से प्राप्त नित्य सर्वनाम संज्ञा जस् परे रहते विकल्प से होता है।

१५९. पूर्वादि पठित शब्दों से परे ङसि और ङि को स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं।

१६०. प्रथम, चरम, तयप्रत्ययान्त और अल्प, अर्ध, कतिपय नेम की जस् परे रहते सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

१६१. जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१॥
अजादौ विभक्तौ।

(वा०) पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च।

(वा०) निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति।

(वा०) एकदेशविकृतमनन्यमवत्। इति जरशब्दस्य जरस्—निर्जरसौ निर्जरसः इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। विश्वपाः।

तीयस्य ङित्सु—तीयप्रत्ययान्तस्य ङित्सु ङिद् वचनेषु (ङे, ङसि-ङस्-ङि इत्येतेषु)।

जराया = निर्गतो जराया इति निर्जरः = देवः।

निर्जरसौ = निर्गतः जराया इति विग्रहात्मक (जराविशिष्ट) निर्जर शब्दस्य प्रातिपदिकत्वेन 'औ' विभक्तौ 'जराया जरसन्यतरस्याम्' इति जरसादेशेन तत्सिद्धिः। पक्षे निर्जरौ' इति रूपम्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जराः
द्वितीया	निर्जरसम्, निर्जरम्	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जरान्
तृतीया	निर्जरसा, निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
चतुर्थी	निर्जरसे, निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
पञ्चमी	निर्जरसः, निर्जरात्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरसः, निर्जरस्य	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरसाम्, निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि, निर्जरे	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर	हे निर्जरौ, हे निर्जरसौ	हे निर्जराः, हे निर्जरसः

---

१६१. अजादि विभक्ति परे रहते जरा शब्द को जरस् आदेश होता है।

१. (वा०)—पदाधिकार और अंगाधिकार में जो कार्य जिसको कहे गये हैं उसको और वह शब्द जिसके अन्त में हो उसको दोनों को होते हैं।

२. (वा०)—बताए गये मात्र को आदेश होता है।

३. (वा०)—एक देश में विकार होने पर वह अन्य नहीं हो जाता है।

१६२. दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः । वृद्धिः–विश्वपौ । विश्वपाः । हे विश्वपाः । विश्वपाम् । विश्वपौ ।

१६३. सुडनपुंसकस्य १।१।४३॥

स्वादि पञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीवस्य ।

१६४. स्वादिष्व सर्वनामस्थाने १।४।१७॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात् ।

१६५. यचि भम् १।४।१८॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्व भसंज्ञं स्यात् ।

१६६ आकडारादेका संज्ञा १।४।१॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च ।

१६७. आतो धातोः ३।४।१०४॥

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । अलोऽन्त्यस्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शङ्खध्मादयः । धातोः

विश्वपः—विश्वपा शब्दात् 'शस्' विभक्तौ (विश्वं पाति इति विश्वपा)

---

१६२. दीर्घ से जस् और इथ् परे रहने पर पूर्वसबर्णदीर्घ आदेश नहीं होता ।

१६३. नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर स्वादि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ।

१६४, सु से लेकर कप् प्रत्यय पर्यन्त सर्वनामस्थान से भिन्न प्रत्यय परे रहते पूर्व की पद संज्ञा होती हैं ।

१६५ सु से लेकर कप् प्रत्यय तक सर्वनाम स्थान से भिन्न यकारादि तथा अजादि प्रत्यय परे रहते पूर्व की भ संज्ञा होती है ।

१६६. 'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहले एक की एक ही संज्ञा होती हैं । जो पर और अनवकाश हो ।

१६७. अकारान्त जो धातु तदन्त भसंज्ञक अंग का लोप होता है ।

किम्—हाहान् । हाहै । हाहाः २ हाहौ २ हाहाम् । हाहे । हरिः । हरी ।

१६८. जसि च ७।३।१०९।।

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः । हरयः ।

१६९ ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८।।

ह्रस्वस्य गुणः स्यात्सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ।

१७०. शेषो घ्यसखि १।४।७।।

'शेष' इति स्पष्टार्थम् । अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् ।

१७१. आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०।।

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः ।

१७२. घेर्ङिति ७।३।१११।।

'लशक्वतद्धिते' इति शसः शकारस्येत्संज्ञायां लोपे कृते 'विश्वपा अस्' इति स्थिते 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति प्राप्तपदसंज्ञायां 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां च प्राप्तायां 'आकडारादेका संज्ञा' इति सूत्रसहकारेण एकैव संज्ञा भवति इति नियमात् परत्वादनवकाशत्वाभ्यां 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'अलोऽन्त्यस्य' इति सहकारेण—'आतो धातो.' इति आकारलोपो, सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते तत्सिद्धम् ।

एकवचन	द्वि० व०	बहु०	एकवचन	द्वि०	बहु०
विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः

---

१६८. ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है जस् परे रहते ।

१६९. ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है सम्बुद्धि परे रहते ।

१७०. ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों को घि संज्ञा होती है सखि शब्द को छोड़कर ।

१७१. स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर घि संज्ञक से परे आङ् को ना होता है ।

१७२. ङित् सुप् पर में हो तो घि संज्ञक शब्द को गुण होता है ।

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः स्यात्। हरये। हरिभ्याम्। हरिभ्यः।

१७३. ङसिङसोश्च ६।१।११०॥

एङः ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेः। हरेः हर्योः। हरीणाम्।

१७४. अच्च घेः ७।३।११९॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् स्यात्, घेरन्तादेशश्चाऽकारः। हरौ। हरिषु। एवं कव्यादयः।

१७५. अनङ् सौ ७।१।९३॥

सख्युरङ्गस्याऽनङादेशः स्यादसम्बुद्धौ सौ।

हे हरे—प्रातिपदिकहरिशब्दस्य सम्बुद्धि एकवचने—सौ विभक्तौ 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इति सम्बुद्धि संज्ञायां 'हे' इत्यस्य प्राक्प्रयोगः। 'ह्रस्वस्य गुणः' इति इकारस्य गुणे एङ्ह्रस्वात्संबुद्धे' इति सस्य लोपे तत्सिद्धम्।

हरिणा—हरिशब्दात् तृतीयैकवचने टाविभक्तौ 'शेषो घ्यसखि' इत्यनेन घिसंज्ञायाम् 'आङो नास्त्रियाम्' इत्यनेन 'टा' इत्यस्य नादेशे नस्य णादेशे सिध्यति रूपं 'हरिणा' इति।

हरेः—हरिशब्दात् पंचम्येकवचने च अनुबन्धलोपे सति 'हरि अस्' इति स्थिते 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायां घेर्ङिति' इति गुणे 'ङसिङसोश्च' इति पूर्वरूपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'हरेः' इति।

	एकव०	द्वि०	बहु०
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

---

१७३. एङ् से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे रहते पूर्वरूप एकादेश होता है।

१७४. इकार उकार से परे ङि को औत् और इ को अ आदेश होता है।

१७५. सम्बुद्धि से भिन्न सु विभक्ति पर में रहे तो अङ्ग संज्ञक सखि शब्द को 'अनङ्' आदेश होता है।

१७६. अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १।१।६५॥

अन्त्यादल: पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञ: स्यात्।

१७७. सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ६।४।८॥

नान्तस्योपधाया दीर्घ: स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

१७८. अपृक्त एकाल्प्रत्यय: १।२।४१॥

एकाल्प्रत्ययो य: सोऽपृक्तसंज्ञ: स्यात्।

१७९. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ६।१।६८॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते।

१८०. नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत् पदं तदन्तस्य लोप: स्यात्। सखा।

१८१. सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२॥

सखा—सखि शब्दात् सौ विभक्तौ अनुबन्ध लोपे 'सखि स्' इति स्थिते 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' इति अङ्गसंज्ञायाम् 'अनङ् सौ' इति 'ङिच्चे'ति सूत्रबलात् सखिशब्दघटकखकारोत्तरवर्तिन: इकारस्यानङि अनुबन्धलोपे 'सखन् स' इति दशायाम् 'अलोन्त्यात्पूर्व उपधा' इति उपधा संज्ञायां 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति नान्तस्य पदस्योपधाया: दीर्घे 'अपृक्त एकालप्रत्यय:' इति तस्य अपृक्तसंज्ञायाम् 'हल्ङ्याब्भ्य:—' इति सस्य लोपे 'नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे 'सखा' इति।

---

१७६. अन्त्य अल् से अव्यवहित पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

१७७. नान्त की उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान परे रहते।

१७८. एक अल् वाले प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है।

१७९. हलन्त से परे सु, ति, सि के अपृक्त हल् का लोप होता है। और दीर्घ ङी, आप से सु के अपृक्त हल् का लोप होता है।

१८०. प्रातिपदिक संज्ञक पद के अन्तिम नकार का लोप होता है।

१८१. अङ्गसंज्ञक सखि शब्द से परे सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान णिद्वत् (णित् के समान) होता है।

सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात्।

१८२. अचो ञ्णिति ७।२।११५॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च परे। सखायौ सखायः। हे सखे। सखायाम्। सखायौ। सखीन्। सख्या। सख्ये।

१८३. ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः।

१८४. औत् ७।३।११८॥

इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत्स्यात्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

१८५. पतिः समास एव १।४।८॥

पतिशब्दः समास एव घिसंज्ञः स्यात्। पत्ये। पत्युः। पत्यौ। शेषं हरिवत्। समासे तु भूपतये। कति शब्दो बहुवचनान्तः।

सख्या—सखि शब्दात् टाविभक्तौ अनुबन्धलोपे 'सखि आ' इति स्थिते असखीति पर्युदासाद् घिसंज्ञाऽभावे नादेशाभावात् 'इको यणचि' इति यणि 'सख्या' इति।

सख्युः—सखिशब्दस्य पञ्चम्येकवचने षष्ठ्येकवचने च ('ङसि-ङस्') विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'सखि अस्' इति दशायाम् 'इको यणचि' इति यणि 'ख्यत्यात्परस्य' इति असोऽकारस्य उत्वे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'सख्युः' इति।

सख्यौ—सखि शब्दात् सप्तम्येकबचनविवक्षायाम् 'शेषो घ्यसखि' इति सूत्रेऽसखीयुक्तत्वात् घित्वाभावेन 'अच्च घेः' इत्यस्याप्रवृत्त्या 'औत' इति ङेरौत्त्वे 'इको यणचि' इति यणि 'सख्यौ' इति।

---

१८२. अजन्त अङ्ग की वृद्धि होती ञित् णित् प्रत्यय परे रहते।

१८३. यण् होने पर ह्रस्व खि ति और दीर्घ खी ती से परे ङसि ङस् के अकार को उकार आदेश होता है।

१८४. इकार उकार से परे ङि को औत् (औकार) आदेश होता है।

१८५. पति शब्द की समास में घि संज्ञा होती है।

१८६. बहु-गण-वतु-डति संख्या १।१।२३॥

[एते संख्यासंज्ञाः स्युः]

१८७. डति च १।१।२५॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात्।

१८८. षड्भ्यो लुक् ७।१।२२॥

षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात्।

१८९. प्रत्ययस्य लुक्-श्लु-लुपः १।१।६१॥

लुक्-श्लु-लुप्-शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्संज्ञं स्यात्।

१९०. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२॥

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात्। इति जसि चेति गुणे प्राप्ते।

१९१. न लुमताऽङ्गस्य १।१।६३॥

लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात्। कति २ कतिभिः। कतिभ्यः २। कतीनाम्। कतिषु। युष्मदस्मद्—षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः त्रिशब्दो नित्यं वहुवचनान्तः। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २।

कति—बहुत्वविशिष्टवाचकात् कतिशब्दात् प्रथमाबहुवचने द्वितीयाबहुवचने च जसि शसि च विभक्तौ 'बहुगणवतु डति संख्या' इति डत्यन्तत्वात् कतिशब्दस्य संख्यासंज्ञायां 'डति च' इति षट्संज्ञायां 'षडेभ्यो लुक्' इति जश्शसोर्लुकि, जसि "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इति प्रत्ययलक्षणेन 'जसि च' इति कतिशब्दस्येकारस्य गुणे प्राप्ते 'न लुमताङ्गस्य' इति जङ्गकार्यस्य गुणस्य निषेधे 'कति' इति।

---

१८६. बहु शब्द गण शब्द वतुप्रत्ययान्त और डति प्रत्ययान्त की संख्या संज्ञ होती है।

१८७. डति प्रत्ययान्त संख्यावाचक शब्द की षट्संज्ञा होती है।

१८८. षट्संज्ञक से पर जस्-शस् का लुक् (अथर्शन) हो।

१८९. लुक् श्लु, लुप् इन शब्दों से किया गया जो प्रत्यय का अदर्शन. उसकी क्रम से लुक्, श्लु. लुप् संज्ञा होतो है।

१९०. प्रत्यय के लोप होने पर भी तदाश्रित कार्य होता है।

१९१. जहाँ लुमान् (लुक्, श्लु, लुप्) शब्दों द्वारा लोप हुआ रहता है वहाँ तन्निमित्तक अङ्गकार्य नहीं होता है।

१९२. त्रेस्त्रयः ७।१।५३॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि । प्रियत्रयाणाम् ।

१९३. त्यदादीनामः ७।२।१२२॥

एषामकारोऽन्तादेशः स्याद्विभक्तौ ।

(वा०) द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः । द्वौ २ । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् द्वयोः । द्वयोः । पाति लोकमिति पपीः—सूर्यः ।

१९४ दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः । पप्यौ । पप्यौ । पप्यः । हे पपीः । पपीम् । पपीन् । पप्या । पपीभ्याम् । पपीभ्याम् । पपीभ्याम् । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः २ । पप्यः २ । पप्योः । दीर्घत्वान्न नुट् । पप्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । पपी । पप्योः । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः । बह्वयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ।

१९५. यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः ।

वा०—प्रथमलिङ्गग्रहणं च । पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ।

त्रयाणाम्—त्रिशब्दादामि 'त्रेस्त्रयः' इति त्रिशब्दस्य त्रयादेशे कृते 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति णत्वे 'त्रयाणाम्' इति ।

गौणत्वेऽपि प्रियत्राणायाम्—अत्र 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इति न्यायात् त्रिशब्दस्यान्यपदार्थे विशेषणत्वेन गौणत्वात् 'त्रेस्त्रयः' इति त्रयादेशो न स्यादिति तु नाशंक्यः गौणमुख्यन्यायस्य पदकार्यविषयत्वात् ।

---

१९२. आम् परे रहते 'त्रि' शब्द को त्रय आदेश होता है ।

१९३. विभक्ति परे रहते त्यदादियों को अकार अन्तादेश होता है ।

१९४. दीर्घ से जस् और इच् पर में हो तो पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है ।

१९५. नित्य स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों की नदी संज्ञा होती है ।

१९६. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७॥

अम्बार्थानां नद्यन्तानाञ्च ह्रस्वः स्यात्सम्बुद्धौ। हे बहुश्रेयसि।

१९७. (अ) आण्नद्याः ७।३।११२॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः स्यात्।

(ब) आटश्च ६।१।९०॥

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः। बहुश्रेयस्याः। बहुश्रेयसीनाम्।

१९८. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम्। बहुश्रेयस्याम्। शेषं पपीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। अतिलक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत्। प्रधीः।

१९९. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७॥

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोः भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते।

बहुश्रेयस्याः—बहुश्रेयसीशब्दात् पञ्चम्येकवचने 'ङसि' अनुबन्धलोपे 'बहुश्रेयसी अस्' इति स्थिते 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' इति नदीसंज्ञायाम् 'आण्नद्याः' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'बहुश्रेयसी आस्' इति दशायाम् 'इकोयणचि' इति यणि अनुबन्धलोपे सकारस्य सत्वे विसर्गे 'बहुश्रेयस्याः' इति।

बहुश्रेयस्याम्—बहुश्रेयसीशब्दात् सप्तम्येकवचने ङि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'प्रथमलिङ्गग्रहणं च' इति नदी संज्ञायां 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' इति ङेरामि कृते स्थानिवद्भावेन ङित्वमादाय 'आण्नद्याः' इत्यादि अनुबन्ध लोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'इको यणचि' इति यणि 'बहुश्रेयस्याम्' इति।

---

१९६. अम्बार्थक और नदीसंज्ञक को ह्रस्व होता है सम्बुद्धि परे रहते।

१९७ (अ) नद्यन्त से परे ङिद्वचनों को आट् का आगम होता है।

१९७ (ब) आट् से अच् परे रहते वृद्धि एकादेश होता है।

१९८. नद्यन्त आबन्त और नी शब्द से परे ङि को आम् आदेश होता है।

१९९. श्नु प्रत्ययान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त जो धातु और 'भ्रू' अङ्ग को इयङ् उवङ् आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते।

२००. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२॥

धात्वबयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणाजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यम्। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवं ग्रामणीः। ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्—नीः नियौ नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्। नियम्। नियः। ङेराम्, नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्—सुश्रियौ। यवक्रियौ।

२०१ गतिश्च १।४।६०॥

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः।

(वा०)—गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते)। शुद्धधियौ।

२०२. न भूसुधियोः ६।४।८५॥

एतयोरचि सुपि यण्न स्यात्। सुधियौ। सुधियः इत्यादि। सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतीः। सुख्यौ। सुख्यौ। सुत्यौ। सुत्यौ। सुख्युः। सुख्युः। सुत्युः। सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः।

न सुलोप इति—

अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धी-ह्री-श्रीणामुणादिषु।
सप्तानामपि शब्दानां सोर्लोपो न कदाचन॥

प्रध्यम्—प्रधीशब्दाद् द्वितीयैकवचने अमि 'प्रधी अम्' इति स्थिते 'अमिपूर्वः' इति पूर्वरूपं प्रबाध्य 'अचिश्नु धातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' इति इयङि प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' इति यणि 'प्रध्यम् इति।

गतिकारकपूर्वपदस्यैव यण् इति भावः, तेन शुद्धाधीर्यस्य, स शुद्धधीः, शुद्धधियौ, शुद्धधियः। इत्यादौ 'शुद्ध शब्दस्य'। गतिकारकत्वाभावान्न यण् किन्तु इयङ्। उपसर्गाणामेव गति संज्ञा।

---

२००. धातु का अवयव संयोग से पूर्व में न हो ऐसा जो इवर्ण, तदन्त अनेकाच् अङ्ग को यण् आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते।

२०१. प्रादियों की क्रिया के योग में गति संज्ञा होती है।

(वा०)—गतिकारक से इतर पद हो तो यण् नहीं होता है।

२०२. भू और सुधी को यण् नहीं होता अजादि सुप् प्रत्यय परे रहते।

२०३. तृज्वत्क्रोष्टुः ७।१।९५॥

क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। क्रोष्टु-शब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः।

२०४. ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः ७।३।११०॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणः स्यात्। ङौ सर्वनामस्थाने च परे। इति प्राप्ते।

२०५. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७।१।७४॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ।

२०६. अप्तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षत्तृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तॄणाम् ६।४।११॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टॄन्।

(एवमेव यवक्री, शुद्धधी, धान्यक्री, सुधी, लब्धधी—आदि शब्दानामपि रूपाणि बोध्यानि। सुखी, सुती आदि शब्दाः उक्तादन्याः प्रधीवत् ज्ञेयाः। शम्भु-भानु, विष्णु, मनु आदि-शब्दास्तत्सदृशाश्च हरिशब्दवत्—ज्ञेयाः।)

क्रोष्टा—क्रोष्टुशब्दात् सौ अनुबन्धलोपे 'तृज्वत् क्रोष्टुः' इति तृज्वद्भावे 'क्रोष्टृ स्' इति दशायाम् 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' इति गुणे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च' इत्यनङि अनुबन्धलोपे 'अप्तृन् तृ च—' इति उपधादीर्घे हल्ङ्याभ्यः इति सुलोपे 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति न लोपे 'क्रोष्टा' इति।

---

२०३. क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

२०४. ङि और सर्वनाम स्थान परे ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है।

२०५. सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते ऋदन्त और उशनस् आदि को अनङ् आदेश होता है।

२०६. सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम स्थान परे अप् आदियों की उपधा को दीर्घ होता है।

२०७. विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९१॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । क्रोष्ट्रे ।

२०८. ऋत उत् ६।१।१११॥

ऋतो ङसिङसोरत उदेकादेशः । रपरः ।

२०९. रात् सस्य ८।२।२४॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रेफस्य विसर्गः । क्रोष्टुः । क्रोष्टोः ।

(वा०)—नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन । क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहूः । हूह्वौ । हूह्वः । हूहून् इत्यादि । अतिचमू शब्दे तु नदीकार्यं विशेषः । हे अतिचमु ! अतिचम्वै । अतिचमूनाम् । खलपूः ।

२१०. ओः सुपि ६।४।८३॥

क्रोष्टुः—क्रोष्टुशब्दात् पञ्चम्येकवचने ङसि अनुबन्धलोपे 'क्रोष्टु अस्' इति स्थिते 'विभाषा तृतीयादिष्वचि इति तृज्वद्भावे 'क्रोष्टृ अस्' इति जाते 'ऋत उत्' इति उत्वे रपरत्वे च कृते 'क्रोष्टुर्स्' इति स्थिते 'रात्सस्य' इति सलोपे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे 'क्रोष्टुः' इति । तृज्वद्भावाऽभावपक्षे 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायां 'घेर्ङिति' इति गुणे 'ङसिङसोश्च' इति पूर्वरूपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'क्रोष्टुः' इति सिद्धम् ।

---

२०७. अजादि तृतीयादि विभक्ति परे रहते, क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव होता है विकल्प ।

२०८. ऋदन्त अङ्ग से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे रहते पूर्व पर के स्थान में उकार आदेश होता है ।

२०९. रेफ से परे संयोगान्त लोप केवल स का ही होता है अन्य का नहीं !

(वा०)—नुम्, अच् परे रहते रभाव और तृज्वद्भाव इनकी अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से नुट् ही होता है ।

२१०. धातु के अवयवों का संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो 'उवर्ण,

धात्ववयव-संयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः।

२११. वर्षाभ्वश्च ६।४।८४॥

अस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः।

(वा०)—दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः। दृन्भ्वौ। एवं करभूः। धाता। हे धातः। धातारौ। धातारः।

(वा०)—ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। धातृणाम्। एवं नप्त्रादयः। नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न। पिता। पितरौ। पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत् एवं जामात्रादयः। ना। नरौ।

स्वभुवौः—'स्वभू' शब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'इको यणचि इति प्राप्तं यणं बाधित्वा 'अचि श्नु धातु.......' इति उवङ् प्राप्नोति, तच्च 'ओः सुपि' इति यण् बाधते तत्रापि 'न भूसुधियोः' इति निषेधति, पुनश्च 'अचि श्नु इति। उवङि कृते सिद्ध्यति रूपं 'स्वभुवौ' इति।

पितरौ—पितृशब्दात् प्रथमाद्विवचने औविभक्तौ 'ङि सर्वनामस्थानयोः' इति गुणे रपरत्वे च कृते 'पितरौ' इति अत्र व्युत्पत्तिपक्षे नप्त्रादिग्रहणस्य नियमार्थत्वात् 'अप्तृन्नि'ति दीर्घो न। अव्युत्पत्तिपक्षे तो अप्तृन्तृजादिष्वनन्तर्भावात् दीर्घशङ्कैव नोदेतेति।

पितरि—पितृशब्दात् सप्तम्येकवचने 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः इति गुणे रत्वे च कृते 'पितरि' इति।

तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग उसको यण् होता है अजादि सुप् परे रहते।

२११. वर्षाभू शब्द के अवयव उवर्ण के स्थान में यण् होता है अजादि सुप् परे रहते।

(वा०)—(१) दृन्करपुनः पूर्वक भू के उवर्ण को यण् होता है अजादि सुप् परे रहते।

(२) ऋवर्ण से परे भी 'न' का 'ण' होता है।

२१२. नृ च ।६।४।६॥

'नृ' इत्येतस्य नामि वा दीर्घः स्यात् । नृणाम् । नृणाम् ।

२१३. गोतो णित् ७।१।९०॥

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् । गौः । गावौ । गावः ।

२१४. औतोऽम् शसोः ६।१।९३॥

ओतोऽम् शसोरचि अकार एकादेशः । गाम् । गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः२ इत्यादि ।

नृणाम्—नृशब्दात् षष्ठ्येकवचने आमि 'ह्रस्व नद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नृ नाम्' इति स्थिते 'नामि' इति दीर्घे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'नृ च' इत्यनेन विभाषया दीर्घे' ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति णत्वे 'नृणाम्' इति दीर्घाभावपक्षे 'नृणाम्' इति । अत्र नामीत्यनेन दीर्घस्तु न, सकृद्गतौ यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति सिद्धान्तात् ।

औतोऽम्शसोः—'आ-ओतः, अम्–शसोः' इति पदत्रिभागः । ओकारादम्शसोरचि आकार एकादेशः स्यादिति सूत्रार्थः । उदाहरणन्तु 'गाम्' इति ।

गाम्—गोशब्दाद् द्वितीयैकवचने अमि 'गो अम्' इति स्थिते । औतोऽम्शसोः' इति गोशब्दस्यौकारस्य आकारैकादेशे पूर्वरूपे 'गाम्' इति ।

गाः—गोशब्दाच्छसि अनुबन्धलोपे 'औतोम् शसोः' गइत्याकारैकादेशे सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'गोः' इति ।

रै शब्दोऽयं धनवाची ।

इति 'ललिता' टीकायाम् अजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम्

---

२१२. नृ को दीर्घ होता है विकल्प करके नाम् परे रहते ।

२१३. ओकार से विहित सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है ।

२१४. ओकार से अम् शस् सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में अकार एकादेश होता है ।

नोट—गोशब्दः उभयलिङ्गः, उच्चारणं समानमेव ।

२१५. रायो हलि ७।२।८५।।

रैशब्दस्याकारोऽन्तादेशः स्याद्धलि विभक्तौ । राः । रायौ । रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः । ग्लौभ्यामित्यादि ।

॥ इत्यजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ॥

---

२१५. रै शब्द को आकार अन्तादेश होता है हलादि विभक्ति परे रहते ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण
समाप्त हुआ ।

। अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

रमा ।

२१६. औङ आपः ७।१।१८॥

आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः ।

२१७. सम्बुद्धौ च ७।३।१०६॥

आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः । हे रमे । हे रमे । हे रमाः । रमाम् । रमे । रमाः ।

२१८. आङि चाऽऽपः ७।३।१०५ ॥

आङि ओसि च परे आबन्तस्याऽङ्गस्य एकारः स्यात् । रमया । रमाभ्याम् । रमाभिः ।

२१९. याडापः ७।३।११३॥

आपो ङितो याट् । वृद्धिः । रमायै । रमाभ्याम् । रमाभ्यः । रमायाः । रमायाः । रमयोः । रमयोः । रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गाऽम्बिकादयः ।

रमते इति रमा 'रम्' धातोः पचाद्यचि 'टाप्' अनुलोपे, हल्ङ्याादिना सोर्लोपे तत्सिद्धम् ।

रमायाः—रमा शब्दात् ङसौ ङसि विभक्तौ 'रमा अस्' इति स्थिते 'याडापः' इति याटि अनुबन्ध लोपे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'रमायाः' इति ।

---

२१६. आबन्त अङ्ग से परे जौ औ उसको शी आदेश होता है ।

२१७. सम्बुद्धि परे रहते आबन्त अङ्ग के आकार को एकार होता है ।

२१८. आबन्त अङ्ग के आकार को एकार होता है अङ् (य) या ओस् विभक्ति पर में रहे तब ।

२१९. आबन्त अङ्ग से परे ङिद्वचन को याट् का आगम होता है ।

२२०. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।११४॥

आबन्तात्सर्वनाम्नः परस्य ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः सर्वस्यै। सर्वस्याः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। एवं विश्वादय आबन्ताः।

२२१. विभाषा दिक् समासे बहुव्रीहौ १।१।२८॥

अत्र सर्वनामता वा स्यात्। उत्तरपूर्वस्यै। उत्तरपूर्वायै। तीयस्येति वा सर्वनामसंज्ञा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै एवं तृतीया। अम्बार्थेति ह्रस्वः। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ल! जरा। जरसौ। जरे इत्यादि। पक्षे रमावत्। गोपा विश्वपावत्।

२२२. ङिति ह्रस्वश्च १।४।६॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्याः। मत्याः। मतेः। मतेः।

२२३. इदुद्भ्याम् ७।३।११७॥

नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां परस्य ङेराम् स्यात्। मत्याम्, मतौ। शेषं

सर्वस्यै—सर्वाशब्दात् ङे विभक्तौ 'सर्वा ए' इति जाते 'याडापः' इति याटि प्राप्ते तं बाधित्वा 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याटि आबन्तस्य ह्रस्वे च कृते 'अनुबन्धलोपे 'सर्वस्या ए' इति स्थिते 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'सर्वस्यै' इति।

सर्वे अकारान्तशब्दाः प्रायः रमावत भवन्ति।

मत्याम्—मतीत्यस्य प्रातिपदिकत्वेन ङौ, अनुबन्ध लोपे च कृते 'ङिति ह्रस्वश्च' इति नदीसंज्ञायाम् 'इदुद्भ्याम्—' इति ङेरामि कृते 'इको यणचि' इति यणादेशे तत्सिद्धम्। नदीसंज्ञाऽभावे 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायाम् 'अच्च घेः इति ङेरौत्वे घेरकारादेशे च कृते 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ मतौ' इति।

---

२२०. आबन्त सर्वनाम से परे ङिद्वचन को स्याट् का आगम होता है और आप को ह्रस्व होता है।

२२१. दिक् समास बहुव्रीहि की सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है।

२२२. ङिद्वचन परे रहते इयङ् उवङ् स्थानी स्त्री शब्द से भिन्न नित्य स्त्रीलिंगवाची इकार उकार तथा ह्रस्व इवर्ण उवर्ण की नदीसंज्ञा विकल्प से होती है।

२२३. नदी संज्ञक इकार उकार से परे ङि को आम् होता है।

हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ।

२२४. त्रि-चतुरोः स्त्रियां तिसृ-चतसृ ७।२।९९॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतावादेशौ स्तौ विभक्तौ ।

२२५. अचि र ऋतः ७।२।१००॥

'तिसृ' 'चतसृ' एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः। तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृभ्यः । आमि नुट् ।

२२६. न तिसृचतसृ ६।४।४॥

एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वे । द्वे । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि । गौर्यै-इत्यादि । एवं नद्यादयः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्या-

---

तिस्रः—त्रिशब्दाज्जसि अनुबन्धलोपे 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' इति त्रिशब्दस्थाने 'तिसृ' इत्यादेशे 'तिसृ अस्' इति स्थिते 'ऋतो ङी'ति गुणे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'प्रथमयोः' इति पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते तमपि प्रबाध्य 'अचि र ऋतः' इति ऋकारस्य रेफादेशे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'तिस्रः' इति । एवं शसि विभक्तावपि तिस्रादेशे सति 'प्रथमयोः' इति पूर्वसवर्णदीर्घं बाधित्वा रेफादेशे सकारस्य रुत्वे विसर्गे तिस्रः इति ।

तिसृणाम्—त्रिशब्दस्य षष्ठीबहुवचने 'त्रि आम्' इति स्थिते 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' इति त्रिशब्दस्य स्थाने 'तिसृ' इत्यादेशे 'तिसृ आम्' इति जाते 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' बलात् 'अचि र ऋतः' इति प्राप्तं रेफादेशं बाधित्वा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'तिसृनाम्' इति स्थिते 'नामि' इति दीर्घे प्राप्ते 'न तिसृ चतसृ' इति निषेधे 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति णत्वे 'तिसृणाम्' इति ।

---

२२४. त्रि और चतुर् शब्द को स्त्रीलिङ्ग में तिसृ और चतसृ आदेश होता हैं ।

२२५. तिसृ चतसृ शब्द के ऋ को र होता है अच् परे रहते ।

२२६. तिसृ चतसृ शब्द को नाम् के परे दीर्घ नहीं होता है ।

दयः। स्त्री। हे स्त्रि।

२२७. स्त्रियाः ६।४।७९॥

स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ। स्त्रियः।

२२८. वाऽम् शसोः ६।४।८०॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्। स्त्रियम्। स्त्रीम्। स्त्रियः स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः। स्त्रियाः। परत्वान्नुट। स्त्रीणाम्। स्त्रियाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ श्रियः।

२२९. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री। हे श्रीः। श्रियै, श्रिये। श्रियाः, श्रियः।

स्त्रियम्——स्त्रीशब्दाद् द्वितीयैकवचने अमि 'स्त्री अम्' इति स्थिते 'वाऽम्-शसोः' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'स्त्रियाम्' इति। इयङभावे 'अमि पूर्वः' इति पूर्वरूपे 'स्त्रीम्' इति।

स्त्रियै—स्त्रीशब्दाच्चतुर्थ्येकवचने ङे विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' इति नदीसंज्ञायाम् आण्नद्याः' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'स्त्रियाः' इति। इयङादेशे अनुबन्धलोपे 'स्त्रियै' इति।

श्रियै——श्रीशब्दात् ङेविभक्तौ अनुबन्धलोपे 'यूस्त्र्याख्यौ नदी' इति नदीसंज्ञायां प्राप्तायां 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' इति निषेधे कृते 'ङिति ह्रस्वश्च' इति विकल्पेन नदीसंज्ञायाम् 'आण्नद्याः' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'अचि श्नुधातु' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'श्रियै' इति। नदीत्वाऽभावे इयङि 'श्रिये' इति।

---

२२७. स्त्री शब्द को इयङ् आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते।

२२८. स्त्री शब्द को इयङ् विकल्प से होता है, अम् और शस् में।

२२९. इयङ्, उवङ् के स्थानी नित्य स्त्रीलिंग ईकार ऊकार की नदी संज्ञा नहीं होती हैं, स्त्री शब्द को छोड़कर (अर्थात् स्त्री शब्द की तो नदी संज्ञा होती ही है)

२३०. वाऽऽमि १।४।५।।

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। भ्रुवि, भ्रुवाम्। धेनुर्मतिवत्।

२३१. स्त्रियाञ्च ७।१।९६।।

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते।

२३२. ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५।।

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात्। क्रोष्ट्री। गौरीवत्। भ्रू श्रीवत्। स्वयंभूः—पुंवत्।

श्रीणाम्—श्रीशब्दात् आमि 'श्री आम्' इति स्थिते 'वामि' इति नदीसंज्ञायां 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नद्यन्तत्वान्नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति णत्वे 'श्रीणाम्' इति। नदीत्वाभावे 'अचिश्नुधातु०'—इति इयङि 'श्रियाम' इति।

भ्रुवाम्—भ्रूशब्दात् सप्तम्येकवचने ङौ विभक्तौ 'ङिति ह्रस्वश्च' इति नदी संज्ञायां प्राप्तायां 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' इति निषेधे कृते 'वामि' इति विकल्पेन नदी संज्ञायां 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' इति ङेरामि 'आण्नद्याः' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'अचि श्नुधातुभ्रुवामित्युवङि'भ्रुवि' इति।

क्रोष्ट्री—क्रोष्टुशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'स्त्रियां च' इति तृज्वद्भावे 'क्रोष्टृ' इति जाते ''ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ऋदन्तत्वात् ङीपि' क्रोष्टृ ई' इति स्थिते यणि 'क्रोष्ट्री' शब्दो निष्पन्नः, तस्मात् सौ 'हल्ङ्याभ्यो' इति सुलोपे 'क्रोष्ट्री' इति।

इति 'ललिता' टीकायाम् अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्।

---

२३०. इयङ् उवङ् स्थानी, नित्यस्त्रीलिंग ईकार की नदी संज्ञा होती है विकल्प से आम् परे रहते, स्त्री को छोड़कर।

२३१. स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्द तृजन्त के समान रूप को प्राप्त करता है।

२३२. ऋदन्त और नान्तों से ङीप् होता है स्त्रीलिङ्ग में।

२३३. न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१०॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥

स्वसा। स्वसारौ। माता-पितृवत्। शसि मातृः। द्यौर्गोवत्। राः—पुंवत्। नौर्ग्लौवत्।

॥ इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः॥

---

२३३. षट्संज्ञक एवं स्वस्रादि शब्दों से ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होते हैं।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण
समाप्त हुआ।

●

नोट—अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धी-ह्री-श्रीमामुणादिषु।
सप्त-स्त्रीलिङ्ग-शब्दानां न सुलोपः कदाचन॥

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

२३४. अतोऽम् ७।१।२४।।

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम् स्यात् । अमि पूर्वः । ज्ञानम् । एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः । हे ज्ञान ।

२३५. नपुंसकाच्च ७।१।१९।।

क्लीबात्परस्यौङः शी स्यात् । भसंज्ञायाम् ।

२३६. यस्येति च ६।४।१४८।।

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः स्यात् । इत्यल्लोपे प्राप्ते औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः । ज्ञाने ।

२३७. जश्शसोः शिः ७।१।२०।।

क्लीबादनयोः शिः स्यात् ।

२३८. शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२।।

'शि' इत्येतदुक्त—[सर्वनामस्थान] संज्ञं स्यात् ।

२३९. नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२।।

झलन्तस्याऽजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ।

अतो—'अतोऽम्' सूत्रस्य प्रयोजनमिति 'स्वमोर्नपुंसकात्' प्राप्त लुक् बाधनार्थम् ।

---

२३४. अदन्त नपुंसक अंग से परे जो 'सु' और 'अम्' उसको 'अम्' आदेश हो।

२३५. नपुंसक अङ्ग से परे औङ को शी आदेश होता है ।

२३६. इकार तथा तद्धित परे रहते भसंज्ञक ईवर्ण का लोप होता है ।

२३७. क्लीब अङ्ग से परे 'जस्, शस्,' को शि होता है ।

२३८. सर्वनामस्थान संज्ञक 'शि' होता है ।

२३९. झलन्त एवं अजन्त अङ्ग को 'नुम्' का आगम होता हैं । सर्वनाम स्थान पर में रहे तब ।

२४०. मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७॥

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् । उपधा-दीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् एवं धनवनफलादयः ।

२४१. अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरड्डादेशः स्यात् ।

२४२. टेः ६।४।१४३॥

डिति भस्य टेर्लोपः स्यात् । कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्य-तमस्य त्वन्यतममित्येव । एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः । एकतरम् ।

ज्ञानानि—ज्ञानशब्दात् जसि शसि च विभक्तौ 'जश्शसोशिः' इति जश्शसोः स्थाने श्यादेशे 'ज्ञान इ' इति दशायां 'शि सर्वनामस्थानम्' इति 'शि' इत्यस्य सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'नपुंसकस्य झलचः' इति 'मिदचोन्त्यात्परः' इति सूत्रसहका-रात् अन्त्याज् रूपस्य नस्यान्त्यावयवीभूते नुमि अनुबन्धलोपे 'ज्ञानन् इ' इत्यव-स्थायां 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति उपधादीर्घे 'ज्ञानानि' इति ।

ज्ञानवत् धन-वन-फल-पुष्प-मुख-वचन आदयः शब्दाः ज्ञेयाः ।

'कतरत्-द्'—कतरशब्दात् सौ 'कतर सु' इत्यवस्थायाम् 'अतोऽम्' इति सूत्रं प्रबाध्य 'अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः इत्यनेन 'सु' इत्यस्य स्थाने अदडि अनु-बन्धलोपे 'कतर अद्' इत्यवस्थायां क्लीबे 'शि' इत्यस्यैव सर्वनामसंज्ञाविहितत्वाद् असर्वनामस्थानिके 'आदेपरे कतर' इत्यस्य भसंज्ञायाम् 'टेः' इति टि संज्ञकस्य रेफोत्तरवर्त्य कारस्य लोपे 'कतरद्' इति भूते 'वाऽवसाने' इति दस्य चर्त्वे 'कतरद्' इति चर्त्वाभावे तु 'कतरद्' इति ।

---

२४०. अचों के मध्य में जो अन्तिम अच् उससे परे तथा उसी का अन्तिम अवयव मित्-संज्ञक होता है—धन, वन, फल—तीनों का अर्थ प्रसिद्ध है ।

२४१. 'सु' और 'अम्' के स्थान में अदड् आदेश होता है नपुंसकलिङ्ग में डतर आदि पाँचों से परे ।

२४२. भसंज्ञक 'टि' का लोप होता हे ङित् (ङकार इत्संज्ञक) प्रत्यय परे रहते ।

२४३. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७॥

अजन्तस्येत्येव [क्लीबे प्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्वः स्यात्]। श्रीपं ज्ञानवत्।

२४४. स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३॥

क्लीबादङ्गात्परयोः स्वमोर्लुक स्यात्। वारि।

२४५. इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३॥

इगन्तस्य क्लीबस्य नुम् स्यादचि विभक्तौ। वारिणी वारीणि। न लुमतेत्यस्याऽनित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धि निमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते—वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन। वारिणे। वारिणः वारिणः। वारिणः। वारिणोः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

२४६. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७।१।७५॥

एषामनङ् स्याट्टादावचि। [स चोदात्तः]।

वारिणी—वारिशब्दाच्चतुर्थ्येकवचने 'वारि ए' इति दशायां 'शेषो घ्यसखि' इति घिसंज्ञायां 'घेर्ङिति इति गुणे प्राप्ते 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम्पूर्वविप्रतिषेधेन' इति पूर्वविप्रतिषेधस्य प्रबलत्वात् 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमि 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इति णत्वे 'वारिणे' इति।

वारीणाम्—वारिशब्दात् षष्ठीबहुवचने 'वारि आम्' इति स्थिते 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति प्राप्तं नुटं बाधित्वा परत्वाद् 'इकोऽचि विभक्तौ' इति नुमि प्राप्ते 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट्पूर्वविप्रतिषेधेन' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'वारिनाम्' इति जाते 'नामि' इति दीर्घे 'अट्कुप्वाङ्' इति णत्वे तत् सिद्धम्।

---

२४३. अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है नपुंसकलिंग में।

२४४. नपुंसक अङ्ग से परे 'सु' और 'अम्' का लोप होता है।

२४५. नपुंसक ईगन्त अङ्ग को नुम् का आगम होता है अजादि विभक्ति परे रहते।

वृद्ध्यौत्व—वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव और गुण इन सबों की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से अर्थात् इनको बाधकर नुम् ही होता है।

२४७. अल्लोपोऽनः ६।४।१३४॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याऽकारस्य लोपः स्यात् । दध्ना । दध्ने । दध्नः । दध्नः । दध्नोः । दध्नोः । दध्नाम् ।

२४८. विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरोयोऽन् तस्याऽकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थि-सक्थ्यक्षि । सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे, हे सुधि ।

२४९. तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य ७।१।७४॥

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा स्याट्टादावचि । सुधिया, सुधिनेत्यादि । मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो, हे मधु । सुल्

दध्ना—दधिशब्दात् 'टा' विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'दधि अ' इति स्थिते 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' इति दधि शब्दस्येकारस्याऽनङि अनुबन्धलोपे 'दधन् आ' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् । 'अल्लोपोऽनः' इति अनोऽकारस्य लोपे 'दध्ना' इति ।

दध्नि—दधिशब्दात् सप्तम्येकवचने ङि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'अस्थिदधि-सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' इति दधि शब्दस्येकारस्याऽङि अनुबन्धलोपे 'विभाषा ङिश्योः' इति अनोऽकारस्य लोपे 'दध्नि' इति । लोपाभावपक्षे 'दधनि' इति ।

सुधिया—'सुष्ठु ध्यायति' इति विग्रहे सुधीशब्दात् तृतीयैकवचने 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कंपुंवद्गालवस्य' इति सुध्यातृत्वस्य शोभनज्ञानवत्त्वस्य वा प्रवृत्तिनिमित्तस्य पुंसि नपुंसके च सत्त्वात् वैकल्पिकपुंवद्भावेन ह्रस्व-नुमोरभावे 'अचि श्नुधातुभ्रुवां

---

२४६. अस्थि, दधि इत्यादि शब्दों के अन्तावयव को अनङ् आदेश होता है और वह उदात्त संज्ञक होता है टा आदि अच् परे रहे तब ।

२४७. यदि अङ्ग का अवयव सर्वनामस्थान से पृथक् यजादि और स्वादि-परक जो 'अन्' उसके (अ) अकार का लोप होता है ॥

२४८. यादि तथा अजादि-स्वादि प्रत्ययपरक 'अन्' के आकार का लोप हो, 'ङि' और 'शी' के परे विकल्प से ।

२४९. टादि अच् परे रहते भाषितपुंस्क इगन्त क्लीब शब्द को पुंवद्भाव हो विकल्प से ।

सुलुनी सुलूनि सुल्वा, सुलुनेत्यादि। धातृ। धातृणी। धातृणि। हे धातः, हे धातृ। धात्रा, धातृणा। धातृणाम्। एवं ज्ञात्रादयः।

२५०. एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात्। प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि। प्रद्यूनेत्यादि। प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्। प्रराभ्याम्। प्ररीणाम्। सुनु। सुनुनी। सुनूनि। सुनुनेत्यादि।

॥ इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

य्वोरियङुवङौ' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'सुधिया' इति। पुंवद्भावाऽभावपक्षे तु 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वे 'इकोऽचि विभक्तौ' इति 'सुधिना' इति।

प्रराभ्याम्—प्रकृष्ट राः धनं यस्येति बहुव्रीहौ, प्रराशब्दस्य 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वे 'एच् इग्घ्रस्वादेशे' इति एजरूपस्यैकारस्य इकारे 'प्ररि' इति तस्मात् 'भ्यामि' विभक्तौ 'एकदेशविकृतन्यायेन' 'रायो हलि' इत्यत्वे 'प्रराभ्याम्' इति सिद्धम्।

इति 'ललिता' संस्कृतटीकायाम् अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणं समाप्तम्।

---

२५०. आदिश्यमान ह्रस्वों के मध्य में एच् के स्थान पर 'इक्' ही ह्रस्व होता है।

इस प्रकार 'ललिता' टीका में अजन्तनपुंसकलिंग प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम्

२५१. हो ढः ८।२।३१॥

हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च। लिट्, लिड्। लिहौ। लिहः। लिहा। लिड्भ्याम्। लिट्त्सु, लिट्सु।

२५२. दादेर्धातोर्घः ८।२।३२॥

उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च।

२५३. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७॥

धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् स्यात् से ध्वे पदान्ते च। धुक्, धुग्। दुहौ। दुहः। धुग्भ्याम्। धुक्षु।

२५४. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३॥

एषः हस्य वा घस्याज्झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्। द्रुहौ। द्रुहः। ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम् ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु एवं मुक्, मुग्, मुट्, मुड् इत्यादि।

लिट्त्सु—लिह् शब्दात्सुपि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'लिह्सु' इति स्थिते 'हो ढः' इति हस्य ढत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति ढस्य जश्त्वेन डकारे 'डः सि धुट्' इति डस्य धुटि अनुबन्धलोपे 'खरि च' इति धस्य चर्त्वेन तकारे पुनः 'खरि च' इति डस्य चर्त्वेन टकारे 'लिट्त्सु' इति। धुडभावपक्षे डकारस्य चर्त्वेन टकारे 'लिट्सु' इति।

---

२५१. झल् के परे हकार के स्थान में ढकार आदेश होता है पदान्त में।

२५२. उपदेश अवस्था में दादि धातु के अवयव हकार के स्थान में घकार आदेश हो, 'झल्' परे पदान्त में।

२५३. पदान्त में जो धातु का अवयव एकाच्, झषन्त, तद्वयव बश् को भष्भाव होता है सकार या ध्व परे रहते।

२५४. झल् परे रहते और पदान्त में द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् के हकार को घ होता है विकल्प से।

२५५. धात्वादेः षः सः ६।१।६४॥

धातोरादेः परस्य सः स्यात्। स्नुक्, स्नुग्। स्नुट्, स्नुड् एवं स्निक्, स्निग्। स्निट् स्निड्। विश्ववाट्, विश्ववाड्। विश्ववाहौ। विश्ववाहः। विश्ववाहम्। विश्ववाहौ।

२५६. इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५॥

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात्।

२५७ वाह ऊठ् ६।४।१३२॥

भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् स्यात्।

२५८. सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०८॥

सम्प्रसारणादचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। एत्ये धत्यूठस्विति वृद्धिः। विश्वौहः इत्यादि।

२५९. चतुरनडुहोरामुदात्तः ७।१।९८॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे।

विश्वौहः—विश्ववाह् शब्दाच्छसि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'वाह उठ्' इति 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' इति बलात् वरूपस्य यणः स्थाने ऊकाररूपे कृते 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'विश्व ऊ अस्' इति जाते 'एत्येधत्यूठ्सु' इति पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धौ सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'विश्वौहः' इति।

---

२५५. उपदेश अवस्था में धातु के आदि मूर्धन्य षकार को दन्त्य सकार होता है।

२५६. यण् के स्थान में किया गया (प्रयुज्यमान) जो इक् उसकी सम्प्रसारण संज्ञा होती है।

२५७. भ संज्ञक वाह् शब्द का अवयव जो वकार उसे उठ् सम्प्रसारण होता है।

२५८. यदि सम्प्रसारण से अच् पर में रहे तो पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

२५९. चतुर और अनडुह् शब्द को आम् होता है सर्वनामस्थान पर में रहे तब।

२६०. सावनडुहः ७।१।८२॥

अस्य नुम् स्यात् सौ परे । अनड्वान् ।

२६१. अम् सम्बुद्धौ ७।१।९९॥

चतुरनडुहोरम् स्यात् सम्बुद्धौ । हे अनड्वन् । हे अनड्वाहौ । हे अनड्वाहः । अनडुहः । अनडुहा ।

२६२. वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२॥

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते । अनडुद्भ्यामित्यादि । सान्तेति किम् ? विद्वान् । पदान्तेति किम् ? स्रस्तम् । ध्वस्तम् ।

२६३. सहेः साडः सः ८।३।५६॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । तुराषाट्, तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ।

२६४. दिव औत् ७।१।८४॥

दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ परे । सुद्यौः । सुदिवौ ।

अनड्वान्—अनडुह्शब्दात् प्रथमैकवचने 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' इति आमि अनुबन्धलोपे 'सावनडुहः' इति नुमि अनुबन्धलोपे हल्ङ्यादिना सलोपे संयोगान्तस्य लोपः, इति हकारस्य लोपे 'अनड्वान्' इति । अत्र सुलोपस्याऽसिद्धत्वान्नलोपो बोध्यम् ।

---

२६०. अनडुह शब्द को 'नुम्' का आगम होता है 'सु' विभक्ति पर में रहे तब ।

२६१. सम्बुद्धि परे रहते चतुर् और अनडुह शब्द को 'अन्' का आगम होता है ।

२६२. वर्तमान सान्त-वसु-प्रत्ययान्त तथा स्रंस्वादियों को दकार होता है पदान्त में ।

२६३. साड्रूप दन्त्य सकार (स) के स्थान पर मूर्धन्य षकार (ष) होता है ।

२६४. दिव् शब्द को (अर्थात् वकार के स्थान पर) औकार अन्तादेश होता है 'सु' परे रहते ।

२६५. दिव उत् ६।१।१३१॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते। सुद्युभ्याम् इत्यादि। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः।

२६६. षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५॥

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्याऽऽमो नुडागमः स्यात्।

२६७. रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१॥

[रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यादेकपदे]।

२६८. अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वास्तः चतुर्ण्णाम्। चतुर्णाम्।

२६९. रोः सुपि ८।३।१६॥

सप्तमीबहुवचने रोरेव विसर्जनीयो नान्य रेफस्य। षत्वम्। षरस्य। षस्य द्वित्वे प्राप्ते।

चतुर्ण्णाम्—चतुरशब्दादामि विभक्तौ 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति णत्वे 'अचो रहाभ्यां द्वे' इति द्वित्वे 'चतुर्ण्णाम्' इति। द्वित्वाभावपक्षे 'चतुर्णाम्' इति।

---

२६५. दिव् शब्द के स्थान में उकार अन्तादेश होता है पदान्त में।

२६६. षट् संज्ञक और चतुर् शब्द से पर में जो आम् उसे नुट् का आगम होता है।

२६७. एक पद में रहनेवाले 'र' या 'ह' के बाद यदि नकार मिले तो उसे 'ण' हो जाता है।

२६८. अच् के बाद जो रेफ और हकार और उसके बाद जो यर् प्रत्याहार उसको विकल्प से द्वित्व होता है।

२६९. रु के रेफ का विसर्ग होता है सप्तमी बहुवचन सुप् पर में हो तब, अन्य रेफ का नहीं।

२७०. शरोऽचि ८।४।४९॥

अचि परे शरो न द्वे स्तः। चतुर्षु।

२७१. मो नो धातोः ८।२।६४॥

धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते। प्रशान्।

२७२. किमः कः ७।२।१०३॥

किमः कः स्याद्विभक्तौ। कः। कौ। के। कम्। कौ। कान् इत्यादि। शेषं सर्ववत्।

२७३. इदमो मः ७।२।१०८॥

इदमो दस्य मः स्यात् सौ परे। त्यदाद्यत्वापवादः।

२७४. इदोऽय् पुंसि ७।२।१११॥

इदम इदोऽय् स्यात् सौ पुंसि। (सोर्लोपः)। अयम्। त्यदाद्यत्वे।

२७५. अतो गुणे ६।१।९७॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात्।

अयम्—इदम् शब्दात् 'सौ' विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'इदम् स्' इत्यवस्थायां 'त्यदादीनामः' इति आत्वे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'इदमो मः' इति इदमो मकारस्य मत्वे 'इदोऽयपुंसि' इतीद्भागस्य अयादेशे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति सलोपे 'अयम्' इति।

---

२७०. अच् पर में मिलने पर 'शर्' को द्वित्व नहीं होता है।

२७१. पदान्तस्थ धातु के मकार को नकार होता है।

२७२. 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है विभक्ति पर में रहे तब।

२७३. 'इदम्' शब्द के दकार को मकार होता है 'सु' विभक्ति पर में हो तब।

२७४. 'सु' विभक्ति यदि पर में रहे तो 'इदम्' शब्द का अवयव इद् को अय् आदेश होता है।

२७५. अपदान्त अकार से गुण पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

२७६. दश्च ७।२।१०९॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ । इमे । त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः ।

२७७. अनाप्यकः ७।२।११२॥

अककारस्येदम इदोऽन् स्यादामि विभक्तौ । आबिति प्रत्याहारः । अनेन ।

२७८. हलि लोपः ७।२।११३॥

अककारस्येदम इदो लोपः स्यादापि हलादौ ।

(वा०) नाऽनर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ।

२७९. आद्यन्तवदेकस्मिन् १।२।२१॥

एकस्मिन्क्रियमाणं कार्यमादाविवाऽन्त इव स्यात् । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् ।

२८०. नेदमदसोरकोः ७।१।११॥

आभ्याम्—इदम् शब्दात् 'भ्यामि' विभक्तौ 'त्यदादीनामः' इति अत्वे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'इद्भ्याम्' इति जाते 'हलि लोपः' इति 'अलोन्त्यस्येति' परिभाषया अन्त्यस्य दकारस्य लोपे प्राप्ते 'नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे' इति परिभाषया अलोन्त्यविध्यभावे इद्भागस्यैव लोपे 'आभ्याम्' इति स्थिते 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इत्येकस्मिन्नेवाऽकारे अन्तवद् भावेन अदन्तत्वं मत्वा 'सुपि च' इति दीर्घे 'आभ्याम्' इति ।

---

२७६. इदम् शब्द के दकार के स्थान पर मकार होता है विभक्ति पर में रहे तब ।

२७७. ककार से रहित इदम् शब्द के इद् के स्थान में अन् आदेश होता है ।

२७८. हलादि आप् विभक्ति यदि पर में रहे तो ककार रहित 'इदम्' शब्द के इद् भाग का लोप होता है ।

२७९. एक विषय अर्थात् असहाय एक के विषय में किया जाने वाला कार्य आदि की तरह और अन्त की तरह होता है ।

२८०. अककार 'इदम्' और 'अदस्' शब्द से पर में जो 'भिस्' उसे 'ऐस्'

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न स्यात्। एभिः। अस्मै [आभ्याम्]। एभ्यः। अस्मात्। [आभ्याम् एभ्यः]। अस्य। अनयोः। एषाम्। अस्मिन्। अनयोः। एषु।

२८१. द्वितीयाटौस्स्वेनः २।४।३४॥

द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे। किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। यथा अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति। एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः। एनयोः। राजा।

२८२. न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८॥

नस्य लोपो न स्यान्ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्।

(वा०) ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः। ब्रह्मनिष्ठः। राजानौ। राजानः। राज्ञः।

२८३. नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ८।२।२॥

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र– राजाश्व इत्यादौ। इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वञ्च न। राजभ्याम्।

एभिः—इदम् शब्दात् 'भिसि' अत्वे पररूपे 'इद् भिस्' इति जाते 'अतो भिस ऐस्' इति भिसः ऐस् प्राप्ते 'नेदमदसोरकोः' इति निषेधे 'हलि लोपः' इति इद्भागस्य लोपे 'बहुवचने झल्येत्' इति एत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'एभिः' इति।

राज्ञः—'राजन्' शब्दाच्छसि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अल्लोपोऽनः' इति जकारोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे 'स्तोः श्चुनाश्चुः' इति नस्य श्चुत्वेन ञकारे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'राज्ञः' इति।

आदेश नहीं होता है।

२८१. अन्वादेश में द्वितीया विभक्ति, टा या ओस् पर में रहे तो इदम् और एतद् शब्द के स्थान में 'एन' आदेश होता है।

२८२. ङि और सम्बुद्धि के परे नकार का लोप नहीं हो।

वा० (उत्तरपदपरक ङि परे रहते 'न ङिसम्बुद्धयोः' प्रवृत्त नहीं होता है।)

२८३. सुप्, स्वर, संज्ञा इन विधियों में तथा कृत् प्रत्ययान्त सम्बन्धी तुग्

राजभिः। राजभ्यः। राज्ञि, राजनि। राजसु। यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः।

२८४. न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७॥

वकारमकारान्तसंयोगात्परस्याऽनोऽकारस्य लोपो न स्यात्। यज्वनः। यज्वना। यज्वभ्याम्। ब्रह्मणः। ब्रह्मणा।

२८५. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ६।४।१२॥

एषां शावेवोपधाया दीर्घो नाऽन्यत्र। इति निषेधे प्राप्ते।

२८६. सौ च ६।४।१३॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सौ परे। वृत्रहा। हे वृत्रहन्।

२८७. एकाजुत्तरपदे णः ८।४।१२॥

राजभिः—'राजन् भिस्' इति स्थिते 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति पदत्वात् 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे कृते 'अतो भिस ऐस्' इति एस्त्वे कर्तव्ये 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' इति नलोपस्याऽसिद्धत्वात् ऐस्त्वाभावे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'राजभिः' इति।

यज्वनः—'यज्वन्' शब्दाच्छसि विभक्तौ अनुबन्धलोपे 'यज्वन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'अल्लोपोऽनः' इत्यल्लोपे प्राप्ते 'न संयोगाद्वमन्तात्' इति निषेधे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'यज्वनः' इति।

विधि में नकार का लोप नहीं होता हैं। (नकार का लोप असिद्ध होता है) परन्तु अन्यत्र ऐसा नहीं।

२८४. वकारान्त मकारान्त संयोग से पर में जो 'अन्, उस 'अन्' के अकार का लोप नहीं हो।

२८५. शि परे रहते इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् शब्दों के उपधा को दीर्घ होता है—अन्य स्थानों में नहीं।

२८६. इन्, हन् के उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धि निमित्तक 'सु' परे रहते।

२८७. एक अच् है उत्तरपद में जिसके ऐसा जो समास, उसमें पूर्वपदस्थित

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम् विभक्तिस्थस्य नस्य णः स्यात्। वृत्रहणौ।

२८८. हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४॥

ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात्। वृत्रघ्नः—इत्यादि। एवं शार्ङ्गिन्। यशस्विन्। अर्यमन्। पूषन्।

२८९. मघवा बहुलम् ६।४।१२८॥

मघवन्शब्दस्य वा 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यात्। ऋ इत्।

२९० उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने परे। मघवान्। मघवन्तौ। मघवन्तः। हे मघवन्। मघवद्भ्याम्। तृत्वाऽभावे मघवा। सुटि राजवत्।

वृत्रघ्नः—'वृत्रहन्' शब्दाच्छसि अनुबन्धलोपे 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् अल्लोपोऽनः' इत्यनोऽकारस्य लोपे 'वृत्रहन् अस्' इति स्थिते 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेष्वि'ति नकारोत्तरहकारस्य कुत्वे घकारस्य 'ससजुषोरुः' इति रुत्वे, विसर्गे च कृते 'वृत्रघ्नः' इति।

मघवान्—'मघवन्' शब्दात्सौ विभक्तौ 'मघवन् स्' इति दशायां 'मघवा बहुलम्' इति विभाषया 'तृ' इत्यन्तादेशे ऋकारस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते 'मघवन् स्' इति स्थिते 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' इति नुमि अनुबन्धलोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति सलोपे। 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'मघवा बहुलम्' इति सूत्रस्थ बहुलग्रहणात् संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाभावेन 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' इति नान्तस्योपधायः दीर्घे नलोपे 'मघवा' इति।

न निमित्त रेफ और मूर्धन्य षकार से परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्ति स्थित न को ण होता है समान पद में।

२८८. हन् के हकार को कुत्व होता है ञित् णित् नकार परे रहते।

२८९. तृ अन्तादेश होता हैं मघवन् शब्द के विकल्प से।

२९०. धातु भिन्न उगित् और नकार लोपी अञ्च् धातु से नुम का आगम होता है सर्वनाम स्थान संज्ञक विभक्ति परे।

२९१. श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३॥

अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात्। मघोनः। मघवभ्याम्। एवं श्वन्। युवन्।

२९२. न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ६।१।३७॥

सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात्। इति यकारस्य नेत्वम्। अतएव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणम् यूनः। यूना। युवभ्याम् इत्यादि। अर्वा। हे अर्वन्।

२९३. अर्वणस्त्रसावनञः ६।४।१२७॥

नञा रहितस्याऽर्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य 'तृ' इत्यन्तादेशः स्यात् सौ। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि।

२९४. पथिमथ्यृभुक्षामात् ७।१।८५॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे।

२९५. इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७।१।८६॥

मघोनः—'मघवन्' शब्दाच्छसि 'मघवन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'आद्गुणः' इति गुणे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'मघोनः' इति तृत्वाऽभावे रूपं सिद्धम्।

यूनः—युवन् शब्दाच्छसि 'युवन् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति वकारस्य सम्प्रसारणे 'यु अन् अस्' इति दशायां यकारस्याऽपि 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' इति सम्प्रसारणे प्राप्ते 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' इति निषेधे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घ सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'यूनः' इति।

---

२९१. तद्धित भिन्न प्रत्यय परे अन्नन्त भसंज्ञक श्वन्, युवन्, मघवन् शब्दों को सम्प्रसारण होता है।

२९२. सम्प्रसारण परे रहते पूर्व 'यण्' का सम्प्रसारण नहीं होता है।

२९३. नञ् भिन्न 'अर्वन्' शब्द को 'तृ' अन्तादेश होता है 'सु' को छोड़कर।

२९४. पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् आकार अन्तादेश होता है 'सु' विभक्ति परे।

२९५. पथिन् आदि शब्दों के इकार को अकार अन्तादेश होता है सर्वनाम स्थान संज्ञक विभक्ति परे।

पथ्यादेरिकारस्याऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे।

२९६. थोन्थः ७।१।८७॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे। पन्थाः। पन्थानौ। पन्थानः।

२९७. भस्य टेर्लोपः ७।१।८८॥

भसञ्ज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्। पथः। पथा। पथिभ्याम्। एवं मथिन्। ऋभुक्षिन्।

२९८. ष्णान्ताः षट् १।१।२४॥

षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्संज्ञा स्यात्। पञ्चन्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। पञ्चभ्यः। नुट्।

२९९. नोपधायाः ६।४।७॥

नान्तस्योपधायाः दीर्घः स्यादामि परे। पञ्चानाम्। पञ्चसु।

३००. अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४॥

अष्टन आत्वं वा स्याद्धलादौ विभक्तौ।

३०१. अष्टाभ्य औश् ७।१।२१॥

पन्थाः—पथिन् शब्दात्सौ 'पथिन् स' इति दशायां 'पथि मथ्यृभुक्षामात्' इत्यात्वे 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' इति थकारोत्तरवर्तीकारस्याकारे 'थोन्थः' इति थकारस्य न्थादेशे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'पन्थाः' इति।

---

२९६. सर्वनाम स्थान विभक्ति परे पथिन्, मथिन् के थकार के स्थान पर न्थ आदेश होता है।

२९७. भसंज्ञक पथिन् आदि शब्दों के 'टि' का लोप होता है।

२९८. षान्त (षकार से अन्त) नान्त (नकार से अन्त) संख्यावाची शब्दों की षट् संज्ञा होती है।

२९९. नान्त पद को उपधा को दीर्घ होता है नाम् परे रहते।

३००. अष्टन् शब्द को आत्व होता है हलादि विभक्ति पर में रहे तब।

३०१. किया गया अकार अष्टन् शब्द से परे जस् तथा शस् को 'औश्' आदेश होता है।

कृताऽऽकारादष्टनःप रयोर्जश्शसोरौश् स्यात्। 'अष्टभ्य' इति वक्तव्ये कृताऽऽत्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति। अष्टौ। अष्टौ। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाऽभावे अष्ट, अष्ट इत्यादि पञ्चवत्।

३०२. ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३।२।५९॥

एभ्यः क्विन् स्यात्। अञ्चेः सुप्युपपदे, युजिक्रुञ्चोः केवलयोः। क्रुञ्चेर्नलोपाऽभावश्च निपात्यते। कनावितौ।

३०३ कृदतिङ् ३।१।९३॥

अत्र सन्निहिते धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्।

३०४. वेरपृक्तस्य ६।१।६७॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः स्यात्।

३०५. क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते। अस्याऽसिद्ध-

---

अष्टौ—अष्टन् शब्दात् जसि शसि च विभक्तौ अनुबन्ध लोपे 'अष्टन आ विभक्तौ' इति अष्टनो नकारस्य आत्वे 'अष्ट आ अस्' इति स्थिते सवर्णदीर्घे 'अष्टाभ्य औश्' इति औशि अनुबन्धलोपे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'अष्टौ' इति।

अष्टानाम्—अष्टन् शब्दानाम् विभक्तौ 'ष्णान्ता षट्' इति षट्संज्ञायां 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुट्यनुबन्धलोपे 'अष्टन् नाम्' इति दशायां पाक्षिके आत्वे' 'अकः सवर्णे दीर्घः' इत्युपधायाः दीर्घे 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नस्य लोपे 'अष्टानाम्' इति।

---

३०२. ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक्, अञ्चु, युजि और क्रुञ्च से क्विन् प्रत्यय होता है।

३०३. सन्निहित धात्वधिकार में पठित तिङ्भिन्न प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है।

३०४. अपृक्तसंज्ञक वकार का लोप होता है।

३०५. क्विन् प्रत्यय जिससे किया जाए उसको कवर्ग अन्तादेश होता है पदान्त में।

त्वाच्चोः कुरिति कुत्वम् । ऋत्विक् ऋत्विग्, ऋत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विग्भ्याम् ।

३०६. युजेरसमासे ७।१।७१॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः । संयोगान्तलोपः । कुत्वेन नस्य ङः । युङ् । अनुस्वारपरसवर्णौ युञ्जौ । युञ्जः । युग्भ्याम् ।

३०७. चोः कुः ८।२।३०॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च । सुयुक्, सुयुग् सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् । खन्, खञ्जौ, खन्भ्याम् ।

ऋत्विक्—ऋतूपपदे 'युज्' धातोः 'ऋत्विग्दधृक्' इत्यादिना क्विनि अनुबन्धलोपे 'लशक्वतद्धिते' इति ककारस्य हलन्त्यमिति नकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च कृते इकाररस्योच्चारणार्थत्वेन तस्मिन् गते क्विनो वकारस्य 'अपृक्त एकाल्प्रत्ययः' इत्यपृक्तसंज्ञायां 'वेरपृक्तस्य' इत्यपृक्तसंज्ञकस्य वस्य च लोपे विहिते क्विनः सर्वाऽपहारे 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'ऋतु इज्' इति स्थिते 'इकोयणचि' इति यणि 'ऋत्विज्' इति स्थिते 'कृदतिङ्' इति कृत्संज्ञायां 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे हल्ङ्यादिना सलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति जकारस्य कुत्वेन गकारे 'वाऽवसाने' इति तस्य चर्त्वेन ककारे 'ऋत्विक्' इति । चर्त्वाभावपक्षे 'ऋत्विग्' इति ।

युङ्—'युजिर् योगे' अस्माद्धातोः 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च' इति 'क्विन्' 'लशक्व तद्धिते इति ककारस्य 'हलन्त्यम्' इति नकारस्य 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' इति अपृक्तसंज्ञायां सत्यां 'वेरपृक्तस्य' इति वकारस्य च इत्संज्ञायां लोपे च विहिते इकारस्योच्चारणार्थत्वेन तस्मिन्नपि गते प्रत्ययलक्षणेन 'कृदतिङ्' इति कृत्संज्ञायां 'कृत्तद्धितसमासाश्चेति कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे 'युजेरसमासे' इति नुमि अनुबन्धलोपे हल्ङ्यादिना सलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति जलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति नस्य कुत्वेन ङकारे 'युङ्' इति ।

---

३०६. सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्ति पर में रहे तो युज् धातु से नुम् होता है समास को छोड़कर ।

३०७. झल् परे पदान्त में चवर्ग को कवर्ग आदेश हो ।

३०८. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ८।२।३६॥

व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्यात् झलि पदान्ते च। जश्त्व चर्त्वे। राट्, राड्। राजौ। राजः। राड्भ्याम्। एवं बिभ्राट्। देवेट्। विश्वसृट्।

(वा०) **परौ व्रजेः ष पदान्ते। परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च।** पदान्ते षत्वमपि। परिव्राट्। परिव्राजौ।

३०९. विश्वस्य वसुराटोः ६।३।१२८॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे। विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्वाराजौ। विश्वाराड्भ्याम्।

३१०. स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९॥

पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपः स्यात्। भृट्। सस्य श्चुत्वेन शः। झलाञ्जश् झशीति शस्य जः। भृज्जौ। भृड्भ्याम्। त्यदाद्यत्वं च।

३११. तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६॥

विश्वाराट्—विश्वोपपदात् राज्धातोः 'सत्सूद्विष' इति क्विपि क्विपस्य सर्वापहारे 'विश्वराज्' इति तस्मात् कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे 'व्रश्चभ्रस्ज—' इति जकारस्य षत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति षकारस्य जश्त्वेन डकारे 'वाऽवसाने' इति डस्य चर्त्वे 'विश्वस्य वसुराटोः' इति। चर्त्वाऽभावपक्षे 'विश्वाराड्' इति।

---

३०८. झल् परे पदान्त में व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज और भ्राज धातुओं को तथा छकारान्त और शकारान्त को षकारान्त आदेश होता है।

वा०—परि उपपद व्रज् धातु से क्विप् और दीर्घ भी होता है तथा पदान्त में षत्व भी होता है।

३०९. विश्व शब्द को दीर्घ अन्तादेश होता है 'वसु' या 'राट्' शब्द परे।

३१०. पदान्तस्थित झल् हो पर में ऐसा 'संयोग' उसके आदि के सकार और ककार का लोप होता है।

३११. त्यदादियों के अन्त्य तकार एवं दकार को सकार होता है 'सु'

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ । स्यः । त्यौ । त्ये । सः । तौ । ते । यः । यौ । ये । एषः । एतौ । एते ।

३१२. ङे प्रथमयोरम् ७।१।२८॥

युष्मदस्मदभ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चाऽमादेशः स्यात् ।

३१३. त्वाहौ सौ ७।२।९४॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहावादेशौ स्तः सौ परे ।

३१४. शेषे लोपः ७।२।९०॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोपः स्यात् । त्वम् । अहम् ।

३१५. युवावौ द्विवचने ७।२।९२॥

द्वयोरुक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

३१६. प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।८८॥

औङ्येतयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् ।

आवाम्—अस्मच्छब्दात् प्रथमाद्विवचने 'अस्मद् औ' इति स्थिते 'ङे प्रथमयोरम्' इति औकारस्य स्थाने आमि, 'युवावौ द्विवचने' इति मपर्यन्तस्य 'आव' आदेशे, 'अतो गुणे' इति पररूपे 'प्रथमायाश्चाद्विवचने भाषायाम्' इति दस्यात्वे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे 'अमि पूर्वः' इति पूर्वरूपे 'आवाम्' इति । युवादेशे कृते युवामपीति ।

विभक्ति पर में हो तब ।

३१२. युष्मद् और अस्मद् शब्द के बाद ङे' तथा प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति को आम आदेश होता है ।

३१३. युष्मद् और अस्मद् शब्द के (युष्म, अस्म) मपर्यन्त भाग को क्रमशः 'त्व' और 'अह' आदेश होता है 'सु' विभक्ति परे रहते ।

३१४. आत्व यत्व के निमित्त से भिन्न विभक्ति परे युष्मद्, अस्मद् के अन्त्य का लोप होता है ।

३१५. दो अर्थों के प्रतिपादक 'युष्मद्, अस्मद्' के मपर्यन्त भाग को 'युव, आव' आदेश होता है ।

३१६. प्रथमा द्विवचन परे युष्मद् अस्मद् को आत्व हो, लोक में ।

३१७. यूयवयौ जसि ७।२।९३॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि । यूयम् । वयम् ।

३१८. त्वमावेकवचने ७।२।९७॥

एकस्योक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

३१९. द्वितीयायां च ७।२।८७॥

अनयोरात्स्यात् [द्वितीयायाम्] । त्वाम् । माम् ।

३२०. शसो न ७।१।२९॥

आभ्यां परस्य शसो नः स्यात् । अमोऽपवादः । आदेः परस्य । संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् ।

३२१. योऽचि ७।२।८९॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया, मया ।

३२२. युष्मदस्मदोरनादेशे ७।२।८६॥

युष्मान्—युष्मत् शब्दात् 'शस्' विभक्तौ 'द्वितीयायां च' इति सूत्रेणात्वे दीर्घे च 'युष्मा अस्' इति दशायाम् 'आदेः परस्ये'ति सहकारेण 'शसो नः' इति शसोऽकारस्य नकारे, सकारस्य च संयोगान्तलोपे 'युष्मान्' इति ।

त्वया–युष्मच्छब्दात् टा विभक्तावनुबन्धलोपे 'त्वमावेकवचने' इति मपर्यन्तस्य त्वादेशे, 'योऽचि' इति सूत्रेण यकारादेशे उक्तं रूपम् सिद्धम् ।

---

३१७. युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को क्रम से यूय, वय आदेश होता है जस् विभक्ति पर में रहे तब ।

३१८ एक अर्थ के प्रतिपादक जो युष्मद् अस्मद् शब्द उसके मपर्यन्त भाग को 'त्व' और 'म' आदेश होता है विभक्ति परे ।

३१९. द्वितीया विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् को आकारान्त आदेश हो ।

३२०. युष्मद्, अस्मद् शब्द से पर में जो 'शस्' उसे नकार आदेश होता है ।

३२१. अनादेश अजादि विभक्ति पर में रहे तो युष्मद्, अस्मद् शब्द को यकार आदेश होता है ।

३२२. आदेशरहित हलादि विभक्ति के परे युष्मद् तथा अस्मद् को आकार अन्तादेश होता है ।

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। अस्माभिः।

३२३. तुभ्यमह्यौ ङयि ७।२।९५॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो ङयि। टिलोपः। तुभ्यम्। मह्यम्।

३२४. भ्यसोऽभ्यम् ७।१।३०॥

आभ्यां परस्य भ्यसोऽभ्यम् भ्यम् वा इत्यादेशः स्यात्। युष्मभ्यम्। अस्मभ्यम्।

३२५. एकवचनस्य च ७।१।३२॥

आभ्यां पञ्चम्येकवचनस्य ङसेरत् स्यात्। त्वत्। मत्।

३२६. पञ्चम्या अत् ७।१।३१॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात्। युष्मत्। अस्मत्।

३२७. तवममौ ङसि ७।२।९६॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि।

३२८. युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७।१।२७॥

तव। मम। युवयोः। आवयोः।

युष्मभ्यम्—युष्मद् शब्दात् भ्यसि विभक्तौ 'शेषे लोपः' इति दस्य लोपे 'भ्यसोऽभ्यम्' इति भ्यमादेशे 'अतो गुणे' इति पररूपे कृते युष्मभ्यमिति।

---

३२३ युष्मद्-अस्मद् के मपर्यन्त भाग को (क्रम से) तुभ्य और मह्य आदेश होता है ङे विभक्ति पर में रहे तब।

३२४. युष्मद्, अस्मद् शब्द से पर में रहनेवाले भ्यस्, भ्यम् को अभ्यम् आदेश होता है।

३२५. युष्मद्, अस्मद् से पर में जो पञ्चमी एकवचन विभक्ति का 'ङसि' उसको 'अत्' आदेश होता है।

३२६. युष्मद्, अस्मद् से परे पञ्चमी के भ्यस् को 'अत्' आदेश हो।

३२७. युष्मद्, अस्मद् के मपर्यन्त को तव, मम आदेश होता है ङस् विभक्ति पर में रहे तब।

३२८. युष्मद्-अस्मद् पर में रहे तो 'ङस्' को 'अश्' आदेश होता है।

३२९. साम आकम् ७।१।३३॥

आभ्यां परस्य सामं आकम् स्यात् ! युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मासु । अस्मासु ।

३३०. युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ८।१।२०॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोरनयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वाम् नौ इत्यादेशौ स्तः ।

३३१. बहुवचनस्य वस्नसौ ८।१।२१॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादि बहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ।

३३२. तेमयावेकवचनस्य ८।१।२२॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ।

३३३. त्वामौ द्वितीयायाः ८।१।२३॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः ।

(वा०)—समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ।

(वा०)—एक तिङ् वाक्यम् ।

युष्माकम्—युष्मद् शब्दात् आमि' विभक्तौ 'साम आकम्' इति आमि साम्त्वारोपेण आकमादेशे 'युष्मद् आकम्' इति स्थिते 'शेषे लोपः, इति दस्य लोपे 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति सवर्ण दीर्घे' 'युष्माकम् इति ।

---

३२९. युष्मद्, अस्मद् से पर में जो 'साम्' उसको 'आकम्' आदेश होता है ।

३३०. षष्ठी, चतुर्थी, द्वितीयान्त युष्मद्-अस्मद् शब्द को क्रम से 'वाम्' 'नौ' आदेश होता है पद से पर अपादादि में स्थित रहे तब ।

३३१. पद से पर अपादादि में स्थित षष्ठी विभक्ति में रहनेवाले युष्मद् तथा अस्मद् शब्द को क्रम से 'वस्' तथा 'मस्' आदेश होता हैं ।

३३२. पद से परे तथा पाद के आदि में नहीं रहनेवाले षष्ठी तथा चतुर्थी के एकवचनान्त युष्मद्, अस्मद् शब्द को ते, मे आदेश होता है ।

३३३. पद से पर में तथा पाद के आदि में न रहनेवाले द्वितीया एकवचन के युष्मद् अस्मद् को त्वा, मा आदेश होता है ।

वा०—युष्मद्, अस्मद् शब्द के जगह पर जो आदेश हो, वह एक वाक्य में ही होता है । एक तिङन्त पद को भी वाक्य कहते है । जैसे—सः पठति, वह

तेनेह न । ओदनं पच, तव भविष्यति । इहं तु स्यादेव । शालीनां ते ओदनं दास्यामि ।

(वा०)-एते वान्नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः । अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा । तस्मै ते नम इत्येव । सुपात्-सुपाद्, सुपादौ ।

३३४. पादः पत् ६।४।१३०॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात् । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत् । अग्निमद् । अग्निमथौ । अग्निमथः ।

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥ २ ॥

पढ़ता है यह एक वाक्य है एते वान्नावादय—ये जो वाम् नौ, वस्, नस् आदि आदेश हैं वह अन्वादेश-भिन्न में विकल्प से तथा अन्वादेश में नित्य होता है ।

३३४. पाद्शब्दान्त जो भसंज्ञक अङ्ग तदवयव पाद् शब्द को पत् आदेश होता है ।

नोट—इह = अस्मिन् संसारे, श्रीशः = श्रीपतिः (विष्णुः), त्वा = त्वाम्, मा = माम्, अपि = च, अवतु = रक्षतु । सः हरिः पूर्वकथित विष्णुः; ते=तुभ्यम्, मे = मह्यम्, अपि = च, शर्म = आनन्दं, सुखमित्यर्थः, दत्तात् = ददातु । स हरिः–विष्णुरिव, ते = तव, मे = मम, अपि च, स्वामी = प्रभुः, विभुः = व्यापको नारायणः, वाम् = युवाम्, नौ = आवाम्, पातु = अवतु । सः ईशः = प्रभुः, वाम् = युवाभ्याम्, नौ = आवाभ्याम्, सुखं = कल्याणम्, ददातु = दत्तात् । (सः) हरिः = नारायणः, वां = युवयोः, नौ = आवयोः, पतिः = प्रभुः, ईश्वरः । सः = हरिः, वः = युष्मान्, नः = अस्मान्, अव्यात् = रक्षेत् । सः = हरिः, वः = युष्मभ्यम्, नः = अस्मभ्यम्, शिवं = कल्याणं, दद्यात् । अत्र = इहलोके, सः = हरिः, वः = युष्माकम्, नः = अस्माकम्, सेव्यः = आराध्यः, अस्ति इति शेषः ।

३३५. अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ६।४।२४॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः स्यात् किति ङिति च। नुम्। संयोगान्तस्य लोपः। नस्य कुत्वेन ङः। प्राङ्। प्राञ्चौ। प्राञ्चः।

३३६. अचः ६।४।१३८॥

लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोपः स्यात्।

३३७. चौ ६।३।१३८॥

लुप्ताऽकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याऽणो दीर्घः स्यात्। प्राचः। प्राचा। प्राग्भ्याम्। प्रत्यङ्। प्रत्यञ्चौ। प्रतीचः। प्रत्यग्भ्याम्। उदङ्। उदञ्चौ।

३३८. उद ईत् ६।४।१३९॥

उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याऽकारस्य ईत् स्यात्। उदीचः। उदीचा। उदग्भ्याम्।

प्राचः—प्रपूर्वकात् 'अञ्च् धातोः 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णि' इति सूत्रेण क्विन्' प्रत्ययः तस्य (क्विनः) सर्वापहारलोपे 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' इति उपधानकारलोपे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक-संज्ञायां शसि 'प्र-अच्-अस्' इति स्थिते भसंज्ञायाम् 'अचः' इति अकारस्य लोपे 'चौ' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च प्राचरिति।

उदीचः—उत्पूर्वाद् 'अञ्च्' धातोः 'ऋत्विगि'त्यादिना क्विनि 'लशक्वतद्धिते' इति क्विनः ककारस्य 'हलन्त्यम्, इति नकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च कृते इकार-स्योच्चरणार्थत्वात् तस्मिन् गते 'वेरपृक्तस्य' इति वकारस्यापि लोपे कृते क्विनः

नोट—कित् (ककार इत्संज्ञक) ङित् (ङकार इत्संज्ञक)

३३५. हलन्ताङ्ग उपधा के नकार का लोप होता है कित् ङित्त पर में रहे तब।

३३६. नकार लुप्त अञ्च धातु के भसंज्ञक अकार का लोप होता है।

३३७. मकार अकार लुप्त हो गया हो ऐसे 'अञ्च्' धातु के पर में मिले तो पूर्व 'अण्' को दीर्घ होता है।

३३८. उद् से पर में जो लुप्तनकारक 'अञ्च्' धातु के भसंज्ञक अकार उसको 'ईत' आदेश हो।

३३९. समः सम्मि ६।३।९३॥

वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे (समः सम्यादेशः) स्यात् । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीचः । सम्यग्भ्याम् ।

३४०. सहस्य सध्रिः ६।३।९५॥

तथा (वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्र्यादेशः स्यात् । सध्र्यङ् ।

३४१. तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।९४॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिर्यग्भ्याम् ।

सर्वापहारे भूते 'अनिदितामित्युपधानकारस्य लोपे । 'कृदतिङ्, इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् 'उत् अच्' इत्यस्य 'कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकसंज्ञायां शसि अनुबन्धलोपे 'उत् अच्-अस्' इति स्थिते तकारस्य जश्त्वेन दकारे 'यचि भम्' इति भसंज्ञायां 'अचः' इत्यल्लोपं प्रबाध्य 'उद ईत्' इति अचोऽकारस्य ईत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'उदीचः' इति ।

समीचः—सम् पूर्वाद् 'अञ्च्' धातोः 'ऋत्विगि'त्यादिना क्विनि 'लशक्वतद्धिते' इति क्विनः ककारस्य 'हलन्त्यम्' इति नकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च कृते क्विनः सर्वापहारे जाते 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' इति उपधानकारस्य लोपे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् 'सम् अच्' इत्यस्य कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकसंज्ञायां शसि अनुबन्धलोपे 'समः सम्मि' इति समः सम्यादेशे 'सम्मि अच् अस्' इति स्थिते 'यचिभम्' इति भसंज्ञायाम् 'अचः' इत्यल्लोपे 'चौ' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'समीचः' इति ।

तिरश्चः—तिरस्पूर्वाद् 'अञ्च्' धातोः 'ऋत्विगि'त्यादिना क्विनि, क्विनः सर्वापहारे 'अनिदितामि'ति नलोपे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् 'तिरस्

---

३३९. यदि व प्रत्ययान्त 'अञ्च्' धातु पर में रहे तो सम् के स्थान पर सम्मि आदेश होता है ।

३४०. वप्रत्ययान्त अञ्च् धातु परे रहते सह को सध्रि आदेश होता है ।

३४१. अलुप्ताकार व प्रत्ययान्त 'अञ्च्' धातु पर में रहे तो तिरस् शब्द को तिरि आदेश होता है ।

३४२. नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०॥

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात्। प्राङ्। प्राञ्चौ। नलोपाऽभावादल्लोपो न। प्राञ्चः। प्राङ्भ्याम् प्राङ्क्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुञ्। क्रुञ्चौ। क्रुङ्भ्याम्। पयोमुक्, पयोमुग्। पयोमुचौ। पयोमुग्भ्याम्। उगित्वान्नुम्।

३४३. सान्तमहतः संयोगस्य ६।४।१०॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्। महद्भ्याम्।

३४४. अत्वसन्तस्य चाऽधातोः ६।४।१४॥

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नाऽसन्तस्य चाऽसम्बुद्धौ सौ परे। उगित्त्वान्नुम्। धीमान्। धीमन्तौ। धीमन्तः। हे धीमन्। शसादौ महद्वत्।

(वा०)–डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। शत्रन्तस्य भवन्।

३४५. उभे अभ्यस्तम् ६।१।५॥

अच्' इत्यस्य 'कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकसंज्ञायां शसि अनुबन्धलोपे भसंज्ञायाम् 'अचः' इति अल्लोपे 'तिरसस्तिर्यलोपे' इत्यस्य अप्राप्त्या 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति सस्य चुत्वेन शकारे सस्य रुत्वे विसर्गे 'तिरश्चः' इति।

धीमान् धीमन्तौ धीमन्तः इत्यादि महत् शब्दवत्।

---

३४२. पूजार्थक 'अञ्च्' धातु के उपधा जो नकार उसे लोप नहीं होता है।

३४३. सकारान्त संयोग के और महत् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते।

३४४. धातुभिन्न असन्त की उपधा को तथा अत्वन्त की उपधा को सम्बुद्धि भिन्न 'सु' परे दीर्घ होता है।

वा०—डकार इत्संज्ञक 'टि' का लोप होता है भ संज्ञक अंग न रहने पर भी।

३४५. षष्ठाध्याय के द्वित्व विधान प्रकरण में जो दोनों समुदाय वे अभ्यस्त

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः।

३४६ नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात्। ददत्, ददद्। ददतौ ददतः।

३४७. जक्षित्यादयः षट् ६।१।६॥

षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः! जक्षत्, जक्षद्। जक्षतौ। जक्षतः। एवं जाग्रत्। दरिद्रत्। शासत्। चकासत्। गुप्, गुब्। गुपौ। गुपः। गुब्भ्याम्।

३४८. त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३।२।६०॥

त्यदादिषूपदेष्वज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् स्याच्चात् क्विन्।

३४९. आ सर्वनाम्नः ६।३।९१॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्यात् दृग्दृश्वतुषु। तादृक्, तादृग्।

तादृक्—तदुपपदाद् दृश् धातोः 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति चकारात् क्विनि क्विनः ककारस्य 'लशक्वतद्धिते' इति नकारस्य 'हलन्त्यम्' इति च इत्संज्ञायां लोपे च कृते इकारस्योच्चारणार्थत्वात्तस्मिन् गते 'वेरपृक्तस्य' इति ककारस्य च लोपे कृते क्विनः सर्वापहारे भूते। 'आसर्वनाम्नः' इति तच्छब्दस्याकारान्तादेशे सवर्णदीर्घे 'कृदतिङ्' इति क्विनः कृत्संज्ञकत्वात् 'तादृग्' इत्यस्य 'कृतद्धिते'ति प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ हलङ्यादिना सुलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इत्यसिद्धत्वात् 'व्रश्चभ्रस्ज' इति षत्वे, 'झलां जशोऽन्ते' इति षस्य जश्त्वेन डकारे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति डस्य कुत्वेन गकारे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वेन ककारे 'तादृक्' इति। चर्त्वाभावे 'तादृग्' इति।

संज्ञक होते हैं।

३४६. अभ्यस्त संज्ञक से पर में 'शतृ' को नुम् नहीं होता है।

३४७. छः अन्य धातुओं सहित सातवाँ जक्ष धातु अभ्यस्तसंज्ञक होता है।

३४८. त्यदादि उपपद यदि रहे तो अज्ञानार्थक 'दृश्, धातु से कञ् प्रत्यय होता है तथा चकारात् क्विन्प्रत्यय भी होता है।

३४९. सर्वनामसंज्ञक शब्दों को आकार अन्तादेश होता है दृग्, दृश् या वतु प्रत्यय पर में हो तब।

तादृशौ। तादृशः। तादृग्भ्याम्। व्रश्चेति षः। जश्त्वचर्त्वे। विट्, विड्। विशौ। विशः। विड्भ्याम्।

३५०. नशेर्वा ८।३।६३॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा स्यात् पदान्ते। नक्, नग्, नट्, नड्। नशौ। नशः। नग्भ्याम्, नड्भ्याम्।

३५१. स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् स्यात्। घृतस्पृक्। घृतस्पृग्। घृतस्पृशौ। घृतस्पृशः। दधृक् दधृग्। दधृषौ। दधृषः। दधृग्भ्याम्। रत्नमुट्, रत्नमुड्। रत्नमुषौ। रत्नमुड्भ्याम्। षट्, षड्। षड्भिः। षड्भ्यः, षड्भ्यः। षण्णाम्। षट्सु। रुत्वं प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात्ससजुषोरिति रुत्वम्।

३५२. र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् पदान्ते। पिपठीः पिपठिषौ। पिपठीर्भ्याम्।

३५३. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८।

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्।

षण्णाम्—षष् शब्दात् आमि 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुटि अनुबन्ध लोपे 'षष् नाम्' इति स्थिते 'झलां जशोऽन्ते' इति षस्य जश्त्वेन डकारे 'ष्टुना ष्टुः' इति नस्य ष्टुत्वेन णकारे 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' इति डकारस्य च णत्वे 'षण्णाम्' इति। अत्र 'न पदान्ताट्टोरनाम्' इति ष्टुत्वनिषेधस्तु न 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' इति तन्निषेधात्।

पिपठीष्षु—पिपठिष् शब्दात् सप्तमीबहुवचने सुपि अनुवन्धलोपे, 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति पदसंज्ञायां 'ससजुषो रुः' इति रुत्वे अनुबन्धलोपे 'र्वोरुपधाया

---

३५०. नश् को कवर्ग अन्तादेश होता है पदान्त में, विकल्प से।

३५१. अनुदक सुबन्त उपपद रहे तो स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है।

३५२. रेफान्त और वान्त धातुओं की उपधा में जो इक उसका दीर्घ होता है।

३५३. नुम् विसर्ग (विसर्जनीय) तथा शर् प्रत्याहार के वर्णों के व्यवधान

ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः। पिपठीष्षु। पिपठीःषु। चिकीः। चिकीर्षौ। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षु। विद्वान्। विद्वांसौ। हे विद्वन्।

३५४. वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१॥

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात्। विदुषः। वसुस्रंस्विति दः। विद्वद्भ्याम्।

३५५. पुंसो सुङ् ७।१।८९॥

दीर्घ इकः' इति दीर्घे 'खरसानयो विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे पिपठीः सु' इति जाते सत्वं बाधित्वा 'वा शरि' इति विसर्गस्य स्थाने पाक्षिके विसर्गे 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' इति सस्य षत्वे 'पिपठीःषु' इति। 'वा शरि' इति विकल्पपक्षे 'विसर्जनीयस्य सः' इति विसर्गस्य सत्वे 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' इति सुपः सकारस्य षत्वे 'पिपठीस् षु' इति स्थिते 'ष्टुनाष्टुः' इति सकारस्य ष्टुत्वे 'पिपठीष्षु' इति।

विद्वान्—'विद्' धातोः लटः शतरि 'विदेःशतुर्वसुः' इति शतृस्थाने वस्वादेशे अनुबन्धलोपे 'विद्वस्' इति। तस्य कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे 'उगिदचां—' इति नुमि 'सान्तमहतः संयोगस्य' इति दीर्घे 'हलङ्याब्भ्यः' इति विभक्ति सकारस्य लोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति सलोपे 'विद्वान्' इति। अत्र न लोपस्तु न, संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वात्।

विदुषः—'विद्वस्' शब्दाच्छसि अनुबन्धलोपे 'विद्वस् अस्' इति स्थिते 'यचि भम्' इति भसंज्ञायाम् 'वसोः सम्प्रसारणम्' इति वस्य सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'विदुषः' इति।

पुमान्—पुंस् शब्दात् सौ विभक्तौ 'पुंसोऽसुङ्' इत्यसुङ्यनुबन्धलोपे 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' इति नुमि, 'सान्तमहतः संयोगस्ये'त्युपधा दीर्घे, हल्ङ्यादिना सोर्लोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति सकारस्य लोपे पुमान् इति सिद्धम्।

रहने पर भी इण् कवर्ग से परे सकार को मूर्धन्यादेश होता है।

३५४. भसंज्ञक वस्वन्ताङ्ग को सम्प्रसारण होता है।

३५५. 'पुंस्' को असुङ् आदेश हो सर्वनामस्थान की विवक्षा में।

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात्। पुमान्। हे पुमन्। पुमांसौ पुंसः। पुम्भ्याम्। पुंसु। ऋदुशनेत्यनङ्। उशना उशनसौ।

(वा०)—अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः। हे उशन्। हे उशनन्; । हे उशनः। हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु। अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः। वेधाः। वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम्।

३५६ अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७॥

अदस् औकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे सलोपश्च। तदोरिति सः। असौ। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। वृद्धिः।

३५७. अदसोऽसेर्दादुदोमः ८।२।८०॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च। आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः। अमू। जसः शी। गुणः।

३५८. एत ईद् बहुवचने ८।२।८१॥

अदसो दात्परस्यैव ईद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ। अमी। पूर्वत्राऽसिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे अमुम्। अमू। अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः।

अमी—अदस् शब्दात् 'जसि' विभक्तौ 'त्यदादीनामः' इत्यत्वे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'जशः शी' इत्यनेन श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'आद्गुणः' इति गुणे 'एत ईद्बहुवचने' इति एकारस्य स्थाने इकारे दस्य मत्वे च कृते 'अमी' इति।

वा०—सम्बोधन में उशना शब्द को अनङ् तथा नकार का लोप विकल्प से होता है।

३५६. अदस् शब्द के अन्त्य अल् को औकार आदेश तथा सकार का लोप भी हो जाता है 'सु' पर में रहे तब।

३५७. सकार भिन्न अदस् शब्द का दकार पर में रहे तो ह्रस्व को 'उ' और दीर्घ को 'ऊ' आदेश होता है तथा दकार को मकार भी होता है।

३५८. बहुवचन में अदस् शब्द के दकार के बाद एकार को ईकार हो और 'द' को 'म' हो।

३५९. न मु ने ८।२।३॥

नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नाऽसिद्धः। अमुना। अमूभ्याम्। अमूभ्याम्। अमूभ्याम्। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः २। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः। अमुयोः। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु।

॥ इति हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

अमुना—अदस् शब्दात् तृतीयैकवचने 'टा' विभक्तावनुबन्धलोपे त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' इति मुत्वे 'अमु आ' इति स्थिते 'आङो नाऽस्त्रियामि'ति नाभावे कर्तव्ये मुत्वस्यासिद्धत्वं प्राप्तं 'न मु ने' इति अनेन निषिध्यते, 'शेषोघ्यसखि' इति घिसंज्ञायाम् 'आङोनाऽस्त्रियामि'ति 'आ' इत्यस्य नादेशे 'अमुना' इति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

---

३५९. 'ना' भाव करना हो या कर लिया गया हो फिर भी 'मु' भाव असिद्ध नहीं होता।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण समाप्त हुआ।

●

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

३६०. नहो धः ८।२।३४ ॥

नहो हस्य धः स्याज्झलि पदान्ते च ।

३६१ः नहि-वृति- वृषि-व्यधि-रुचि-सहि-तनिषु क्वौ ६।३।११६॥

क्विबन्तेषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घः स्यात् । उपानत्, उपानद् । उपानहौ । उपानत्सु । क्विन्नन्तत्वात्कुत्वेन घः । उष्णिक्, उष्णिग् । उष्णिहौ । उष्णिग्भ्याम् । द्यौः । दिवौ । दिवः । द्युभ्याम् । गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः । चतस्रः । चतसृणाम् । का । के । काः । सर्वावत् ।

३६२. यः सौ ७।२।११०॥

इदमो दस्य यः स्यात् सौ । इयम् । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । टाप् ।

उपानत्—उपपूर्वक 'नह्' धातोः क्विपि क्विपः सर्वापहारे 'नहिवृतिवृषि—' इति पूर्वपदस्य दीर्घे 'कृदतिङ्' इति क्विपः कृत्संज्ञकत्वात् क्विबन्तात् 'उपानह्' शब्दात् 'कृत्तद्धिते'ति प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ अनुबन्धलोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति सलोपे 'नहो धः' इति हस्य धत्वे 'झलां जशोऽन्ते' इति धकारस्य दत्वे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे 'उपानत्' इति, चर्त्वाऽभावे 'उपानद्' इति ।

चतसृणाम्—'चतुर' शब्दात् आमि 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' इति 'चतसृ' आदेशे 'अचि र ऋतः' इति रेफादेशे प्राप्ते 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो—' इति पूर्वविप्रतिषेधेन तं बाधित्वा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' इति नुटि अनुबन्धलोपे 'नामि' इति दीर्घे प्राप्ते 'न तिसृचतसृ' इति निषेधे 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति णत्वे उक्तं रूपं सिद्धम् ।

---

३६०. झल् पर में हो या पदान्त में स्थित नह् धातु के हकार को धकार होता है ।

३६१. पूर्व 'अण्' को दीर्घ होता है क्विबन्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध् और तन् धातु पर मे रहें तब।

३६२. सु विभक्ति पर में रहे तो इदम् शब्द के दकार को यकार आदेश होता है स्त्रीलिंग में ।

दश्चेति मः। इमे। इमाः। इमाम्। अनया। हलि लोपः। आभ्याम्। आभिः। अस्यै। अस्याः। अस्याः। अनयोः २। आसाम्। अस्याम्। आसु। त्यदाद्यत्वम्। टाप्। स्या। त्ये। त्याः। एवं तद्, यद्, एतद्। वाक्, वाग्। वाचौ। वाग्भ्याम्। वाक्षु। अपशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः। आपः। अपः।

३६३. अपो भि ७।४।४८॥

अपस्तकारः स्याद्भादौ प्रत्यये परे। अद्भिः। अद्भ्यः। अद्भ्यः। अपाम्। अप्सु। दिक्, दिग्। दिशौ। दिशः। दिग्भ्याम्। त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। दृक्, दृग्। दृशौ। दृग्भ्याम्। त्विट्, त्विड्। त्विषौ। त्विड्भ्याम्। ससजुषोरिति रुत्वम्। सजूः। सजुषौ। सजूर्भ्याम्। आशीः। आशिषौ। आशीर्भ्याम्। असौ। उत्वमत्वे। अमू। अमूः। अमुया। अमूभ्याम्। अमूभ्याम्। अमूभ्याम्। अमूभिः। अमुष्यै।

अस्याः—'इदम्' शब्दात् ङसि त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे 'इदा अस्' इति स्थिते 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' इति स्याटि आपो ह्रस्वे च कृते अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे कृते 'हलि लोपः' इति इद्भागस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'अस्याः' इति।

अद्भिः—'अप्' शब्दात् भिस् विभक्तौ 'अपो भि' इति पस्य तकारे 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वे सकारस्य रुत्वे विसर्गे च 'अद्भिः' इति।

दृक्—'दृश्' शब्दात् सौ विभक्तौ 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्—' इति सलोपे 'व्रश्चभ्रस्ज—' इति शस्य षत्वे तस्य 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वेन डकारे कृते 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति दृशेः क्विन् विधानादत्र क्विनोऽभावेऽपि 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति डकारस्य कुत्वेन गकारे तस्य 'वाऽवसाने' इति चर्त्वेन ककारे 'दृक्' इति, चर्त्वाभावे 'दृग्' इति।

अमुष्यै—'अदस्' शब्दाच्चतुर्थ्येकवचने अत्वे पररूपत्वे टापि सवर्णदीर्घे च

---

३६३. अप् शब्द को तकार अन्तादेश होता है भादि प्रत्यय पर में हो तब।

इसप्रकार 'ललिता' टीका में हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण समाप्त हुआ।

अमूभ्यः २। अमुष्याः। अमुयोः। अमुयोः। अमूषाम्। अमुष्याम्। अमूषु।

॥ इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्॥

कृते 'अदा ए' इति स्थिते 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च इति ङेः स्याडागमे, आबन्ताङ्गस्य ह्रस्वे च कृते 'वृद्धिरेचि इति वृद्धौ 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' इत्युत्वे च कृते मत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'अमुष्यै' इति सिद्धम्।

॥ इति 'ललिता' टीकायां हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्॥

●

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्

स्वमोर्लुक्। दत्वम्। स्वनडुत्, स्वनडुद्। स्वनडुही। चतुरनडुहोरित्याम्। स्वनड्वाहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। वाः। वारी। वारि। वार्भ्याम्। चत्वारि। किम्। के। कानि। इदम्। इमे। इमानि।

(वा०) अन्वादेशे नपुंसके वा एनद्वक्तव्यः। एनत्। एने। एनानि। एनेन। एनयोः। अहः। विभाषा ङिश्योः। अह्नी। अहनी। अहानि।

३६४. अहन् ८।२।६८॥

अहन्नित्यस्य रुः स्यात्पदान्ते। अहोभ्याम्। अहःसु। दण्डि। दण्डिनी।

चत्वारि—चतुर् शब्दाज्जसि शसि च विभक्तौ 'जश्शसोः शिः' इति सूत्रेण श्यादेशे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' इत्याम्यनुबन्धलोपे 'इको यणची'ति यणि 'चत्वारि' इति।

अहोभ्याम्—अहन् शब्दात् भ्यामि विभक्तौ 'स्वादिष्व' इति पदसंज्ञायाम् 'अहन्' इत्यन्तनकारस्य रुत्वे 'हशि चे'त्युत्वे, 'आद्गुणः' इति गुणे 'अहोभ्यामि'ति।

अहःसु—'अहन्' शब्दात् सुपि विभक्तौ 'स्वादिष्वि' इति पदसंज्ञायाम् 'अहन्' इति नकारस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' इति रेफस्य विसर्गे 'अहःसु' इति सिद्धम्।

स्वमोर्लुक्—सु तथा अम् का नपुंसकलिङ्ग में लोप होता है।

वा०—अन्वादेशे नपुंसके०—नपुंसक लिङ्ग तथा अन्वादेश में इदम् शब्द को एनद् आदेश कहना चाहिए।

३६४. अहन् के नकार को रु होता है पदान्त में।

गवाक्छब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः।
असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम्॥ १॥
स्वमुसुप्सु नवषड्भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः।
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय॥ २॥

दण्डीनि । दण्डिना । दण्डिभ्याम् । सुपथि । टेर्लोपः । सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क्, उर्ग् । ऊर्जी । ऊर्न्र्जि । न र जानां संयोगः । तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक् । गवाग् । गोची । गवाञ्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाभ्याम् । शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् । ददती ।

३६५. वा नपुंसकस्य ७।१।७९॥

अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे । ददन्ति, ददति । तुदत् ।

३६६. आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा स्यात्, शी-नद्योः परतः । तुदन्ती । तुदन्ति ।

३६७. शप्-श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१॥

शप्-श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् स्यात् शी नद्योः परतः । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम्-विसर्जनीयेति षः । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः । पयः । पयसी । पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् ।

तुदन्ती—'तुदत्' शब्दात् औ विभक्तौ 'नपुंसकाच्च' इति औङः श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति नुमि अनुबन्धलोपे नस्यानुस्वारपरसवर्णे च कृते 'तुदन्ती' इति, नुमभावे 'तुदती' इति ।

पयांसि—'पयस्' शब्दाज्जसि 'जश्शसोः शिः' इति श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि अनुबन्धलोपे 'सान्त महतः संयोगस्य' इति सान्तसंयोगस्योपधाया दीर्घे 'नश्चापदान्तस्य झलि' इत्यनुस्वारे 'पयांसि' इति ।

---

३६५. अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृप्रत्ययान्त नपुंसक अङ्ग को विकल्प से 'नुम्' होता है सर्वनामस्थान पर में रहे तब ।

३६६. अवर्णान्त से पर में जो शतृ प्रत्यय का अवयव, तदन्त जो अङ्ग उसको 'नुम्' का आगम होता है 'शी' तथा 'नदी' संज्ञक वर्ण के परे विकल्प से ।

३६७. शप्, श्यन् सम्बन्धी अकार से परे जो शतृ का अवयव तदन्त जो शब्दस्वरूप उसे नित्य ही नुम् होता है । 'शी' या नदीसंज्ञक पर में हो तब ।

सुपुंसी । सुपुमांसि । अदः विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषं पुंवत् ।

॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

सुपुमांसि—'सुपुंस्' शब्दाज्जसि 'जश्शसोः शिः' इति जसः स्थाने श्यादेशे अनुबन्धलोपे 'शि सर्वनामस्थानम्' इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां 'पुंसोऽसुङ्' इत्यसुङि अनुबन्धलोपे सुपुमस् इति स्थिते 'नपुंसस्य झलचः' इति नुमि अनुबन्धलोपे 'सान्त-महतः संयोगस्य' इति दीर्घे नस्यानुस्वारे 'सुपुमांसि' इति ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

अथाऽव्ययप्रकरणम्

३६८. स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७।।

स्वरादयो निपाताश्चाऽव्ययसंज्ञाः स्युः । स्वर् । अन्तर् । प्रातर् । पुनर् । सनुतर् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । ऋते । युगपत् । आरात् । पृथक् । ह्यस् । श्वस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस् । अवस् । अधस् । समया । निकषा । स्वयम् वृथा । नक्तम् । नञ् । हेतौ । इद्धा । अद्धा । सामि । वत् । ब्राह्मणवत् ।

---

३६८. स्वरादि में पठित तथा निपातसंज्ञक शब्दों की अव्यय संज्ञा होती है ।

स्वर् = स्वर्ग
अन्तर् = बीच
प्रातर् = प्रातःकाल
पुनर् = फिर, बार-बार
सनुतर् = छिपना
उच्चैस् = ऊँचा, बड़ा
नीचैस् = नीचा, छोटा
शनैस् = धीरे-धीरे, विलम्ब
ऋधक् = सत्य
ऋते = विना
युगपत् = एक साथ
आरात् = दूर और नजदीक
पृथक् = अलग, बिना
ह्यस् = बीता हुआ कल का दिन
श्वस् = आगामी (कल का दिन)
दिवा = दिन
रात्रौ = रात
सायम् = सायंकाल
चिरम् = विलम्ब

मनाक्, ईषत् = थोड़ा
जोषम् = चुप रहना
तूष्णीम् = चुपचाप
बहिस् = बाहर
अवस् = बाहर
अधस् = नीचे
समया = समीप
निकषा = समीप
स्वयम् = अपने ही
वृथा = व्यर्थ
नक्तम् = रात
नञ् = नहीं
हेतौ = कारण
इद्धा = प्रकाश्य
अद्धा = स्फुट
सामि = आधा
वत् = समान
ब्राह्मणवत् = ब्राह्मण के समान

क्षत्रियवत् । सना । सनत् । सनात् । उपधा । तिरस् । अन्तरा । अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । श्रौषट् । वौषट् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मृषा । मिथ्या । मुधा । पुरा । मिथो । मिथस् । प्रायस् । मुहुस् । प्रवाहुकम् । (प्रवाहिका) । आर्यहलम् । अभीक्षणम् । साकम् । सार्धम् । नमस् । हिरुक् । धिक् । अथ । अम् । आम् । प्रताम् । (प्रशान्) । प्रतान् । मा । माङ् ।

क्षत्रियवत् = क्षत्रिय के समान

सना, सनत्, सनात् = नित्य

उपधा = नजराना, घूस

तिरस् = तिरछा

अन्तरा = मध्य, विना

अन्तरेण = विना

ज्योक् = शीघ्र, सम्प्रति

कम् = जल, निन्दा, सुख

शम् = सुख, कल्याण

सहसा = अकस्मात्

विना = अभाव

नाना = अनेक

स्वस्ति = मंगल, शुभ

स्वधा = देव हविर्दान में

अलम् = बस

वषट् = देवताओं के तृप्त्यर्थ

श्रौषट्, वौषट् = हविर्दानादि अन्न

अन्यत् = और, दूसरा

अस्ति = सत्ता, विद्यमान

उपांशु = गुप्त

क्षमा = माफ

विहायसा = आकाश

दोषा = रात

मृषा = मृषा, असत्य

मिथ्या = असत्य

मुधा = अकारण, वैर

पुरा = पहले

मिथो = एकान्त

मिथस् = एकान्त

प्रायस् = सम्भव होना

मुहुस् = बार-बार

प्रबाहुकम्, प्रवाहिका = एक साथ, समान समय

आर्यहलम् = बलात्कार करने में, रोकने में

अभीक्ष्णम् = निरन्तर, बारम्बार।

साकम्, सार्धम् = साथ में

नमस् = नमस्कार

हिरुक् = बिना

धिक् = धिक्कार

अथ = मंगलसूचक

अम् = अतिशीघ्र

आकृतिगणोऽयम्। च। वा। ह। अह। एव। एवम्। नूनम्। शश्वत्। युगपत्। भूयस्। कूपत्। कुवित्। नेत्। चेत्। चण्। कच्चित्। यत्र। नह। हन्त। माकिः। माकिम्। नाकिः। नाकिम्। माङ्। नञ्। यावत्। तावत्। त्वै। द्वै। (न्वै)। रै। श्रौषट्। वौषट्। स्वाहा। स्वधा। तुम्। तथाहि। खलु। किल। अथो। अथ। सुष्ठु। स्म। आदह।

आम् = स्वीकार करना

प्रताम्, प्रशान् = पश्चात्ताप वा प्रारम्भ

प्रतान् = विस्तार

मा, माङ् = रोकना, निषेध

च = और, भी (वाक्य के शुरू में का)

वा = अथवा, विकल्प

ह = प्रसिद्ध, निश्चय

अह = स्पष्ट

एव = निश्चय

एवम् = इसी प्रकार

नूनम् = निश्चय, अवश्य

शश्वत् = सब दिन

युगपत् = एक समय

भूयस् = अत्यधिक

कूपत् = प्रश्न, बढ़ाई

कुवित् = अत्यधिक प्रशंसा।

नेत = निषेध, विचार, सन्देह।

चेत् = यदि

चण् = यदि

कच्चित् = कदाचित्

यत्र = जहाँ

नह = नहीं

हन्त = प्रसन्नता, दुःख

माकिः, माकिम् = प्रतिषेध (रोकना)

नाकिः, नाकिम् = सही-सही

माङ्, नञ् = निषेध

यावत् = जितना, जब तक।

तावत् = तब तक, उतना

त्वै, द्वै (न्वै) = विशिष्ट विचार (तर्क)

रै = दान, आदर

श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा = देवताओं के तृप्त्यर्थ हवि आदि प्रदान में

तुम् = तू

तथाहि = जैसे (उदाहरणार्थ)

खलु, किल = निश्चय अर्थ में।

अथो, अथ = अन्तर

सुष्ठु = सुन्दर

स्म = भूतकालवाचक, पादपूर्ति

आदह = प्रारम्भ

उपसर्ग-विभक्ति-स्वरप्रतिरूपकाश्च

अवदत्तम् । अहंयु: । अस्तिक्षीरा । अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ए । ऐ । ओ । औ । पशु । शुकम् । यथाकथा च । पाट् । प्याट् । अङ्ग । है । हे । भोः । अये । द्य । विषु: । एकपदे । युत् । आत: । चादिरप्याकृतिगण: ।

३६९. तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १।१।३८॥

यस्मात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात् । परिगणनं कर्त्तव्यम् । तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । अम् । आम् । कृत्वोर्थाः । तसिवती । नानाञौ । एतदन्तमप्यव्ययम् ।

उपसर्ग-विभक्ति-स्वरप्रतिरूपकाश्च

उपसर्ग के प्रतिरूपक (समान) सुबन्त-सुपप्रतिरूपक, तिङन्तप्रतिरूपक एवं स्वरप्रतिरूपक शब्द की भी अव्यय संज्ञा होती है ।

अवदत्तम् = दिया गया

अहंयु: = अभिमानी

अस्तिक्षीरा = दूधवाली

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ — ये सभी स्वर के अन्दर आते हैं ।

पशु = सम्यक्

शुकम् = शीघ्र

यथाकथा च = अनादर, किसी तरह से

पाट्, प्याट्, अङ्ग, है, हे, भो, अये — ये सम्बोधन अर्थ में प्रयुक्त होते हैं

द्य = हिंसा

विषु = अनेक

एकपदे = एक वा एकत्र, सहसा, अकस्मात्

युत् = निन्दा

आत: = इसलिए

चकारादि आकृतिगण में ही गृहीत होंगे ।

---

३६९. तद्धित की सभी विभक्तियाँ जिस शब्द से नहीं हों इस प्रकार के भी

३७०. कृन्मेजन्तः १।१।३९॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारं स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ।

३७१. क्त्वा-तोसुन्-कसुनः १।१।४०॥

एतदन्तमव्ययं स्यात् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ।

३७२. अव्ययीभावश्च १।१।४१॥

अव्ययीभावश्चाऽव्ययसंज्ञः स्यात् । अधिहरि ।

३७३. अव्ययादाप्सुपः २।४।८२ ॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् । तत्र शालायाम् ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥
वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ २ ॥

कृन्मेजन्तः—कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तनव्ययसंज्ञं स्यादित्यर्थः ।

क्त्वातो सुनकसुनः—क्त्वाप्रत्ययान्तः कसुन् प्रत्ययान्तश्च अव्ययसंज्ञः स्यादित्यर्थः ।

तद्धितान्त पदों की गणना अव्यय में करना चाहिए । 'तसिल्' प्रत्यय पर्यन्त और शस् से लेकर समासान्त प्रत्ययों के पूर्व तक की अव्यथ संज्ञा होती है ।

३७०. मकारान्त और एजन्त जो कृत् तदन्त की भी अव्यय संज्ञा होती है ।

३७१. क्त्वा, तोसुन् तथा कसुन् प्रत्यय भी अव्ययसंज्ञक होते हैं ।

३७२. अव्ययीभावसमास भी अव्यय संज्ञक है ।

३७३. अव्यय से लाये गये जो आप् और सुप् उसका लोप होता है । तत्र शालायाम् = उस सदन में ।

सदृशमिति—सभी लिङ्गों (पुं० स्त्री०, नपुं०) तथा वचनों (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) तथा सभी विभक्तियों (प्रथमा से सप्तमी तक) में रूप नहीं बदले उसे ही अव्यय कहते हैं ।

वष्टि—भागुरि आचार्य के अनुसार अव, अपि उपसर्गस्थ आदि अकार का

वगाहः, अवगाहः। पिधानम्, अपिधानम्।

॥ इति ललिताटीकायामव्ययप्रकरणम् ॥

लोप समझे तथा अन्तिम हलन्त्य वर्णों का लोप भी होता है। जैसे—वाचा (गिरा), निशा (नक्तौ), दिशा आदि में आप् हो गया।

अव्, अपि उपसर्गों का उदाहरण यह है—वगाह = स्नान, पिधानम् = आच्छादन (दोनों में अकार का लोप हुआ है)।

॥ इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में अव्ययप्रकरण समाप्त हुआ ॥

अथ तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम्

लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ्—एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

३७४. लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ३।४।६९॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

३७५. वर्तमाने लट् ३।२।१२३॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् । भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते ।

३७६. तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस् ताऽऽताञ्झथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८॥

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ।

३७७. लः परस्मैपदम् १।४।९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

धातु के बाद क्रियार्थबोधक 'तिङ्' प्रत्ययों से युक्त को तिङन्त कहते हैं ।

लट् आदि दस लकारों में जो पाँचवाँ 'लङ् लकार' है उसका प्रयोग मात्र वेद में ही होता है ।

३७४. लकार, सकर्मक से कर्म और कर्त्ता में तथा अकर्मक धातु से भाव और कर्त्ता में होता है ।

३७५. वर्तमान काल की क्रिया के व्यवहार मे धातु से लट् लकार होता है ।

३७६. लट् आदि लकारों के स्थान में क्रमशः तिप् तस् झि आदि अठारहों प्रत्ययों का विधान किया जाता है ।

३७७. लकार की जगह तिप् आदि आदेश परस्मैपद संज्ञाबोधक होता है ।

नोटः—बीत गया तो भूत है बीत रहा वर्त्तमान ।

बीतेगा जो भविष्य है, तीनों काल जान ॥

३७८ तङानावात्मनेपदम् १।४।१००॥
तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञापवादः।

३७९. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२॥
अनुदात्तेतो ङितश्च धातोः आत्मनेपदं स्यात्।

३८०. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२॥
स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले।

३८१. शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८॥
आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्।

३८२. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१॥
तिङः उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः।

३८३. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२॥
लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनादि संज्ञानि स्युः।

३८४. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५॥
तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः स्यात्।

---

३७८. तङ् प्रत्यय तथा शानच् कानच् आत्मनेपदबोधक होते हैं।

३७९. अनुदात्तेत् और ङित् धातु आत्मनेपद संज्ञक होते हैं।

३८०. स्वरितेत् ञित् धातु से आत्मनेपद होता है यदि कार्य का फल कर्त्ता में जाता हो तब।

३८१. आत्मनेपद निमित्त से हीन धातु से कर्त्ता में परस्मैपद होता है।

३८२. तिङ् के परस्मैपद और आत्मनेपद सम्बन्धी तीन त्रिकों की क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष संज्ञा होती है।

३८३. प्राप्त प्रथमादि संज्ञावाले तीन-तीन त्रिकों की क्रमानुसार एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होती है।

३८४. तिङ से वाच्य जो कारक, तद्वाची जो 'युष्मद्' शब्द वह प्रयुज्यमान हों या अप्रयुज्यमान हो फिर भी धातु से मध्यम पुरुष होता है।

३८५. अस्मद्युत्तमः १।४।१०७॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात् ।

३८६. शेषे प्रथमः १।४।१०८॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू-ति इति जाते ।

३८७ तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ।

३८८. कर्तरि शप् ३।१।६८॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् स्यात् ।

३८९. सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अवादेशः। भवति। भवतः।

३९०. झोऽन्तः ७।१।३॥

प्रत्ययावयवस्य झस्याऽन्तादेशः स्यात्। अतो गुणे । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ।

३९१. अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१ ॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्याद्यञादौ सार्वधातुके। भवामि। भवावः। भवामः स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति । त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः।

---

३८५. तिङवाच्य कारकवाची अस्मद् शब्द का प्रयोग किया गया हो या न किया गया हो फिर भी धातु से उत्तम पुरुष होता है।

३८६. मध्यम और उत्तम पुरुष के अविषय में अर्थात् अन्य व्यक्ति में प्रथम पुरुष ही होता है।

३८७. धात्वधिकार में पठित तिङ् शित् सार्वधातुक संज्ञक होते हैं।

३८८. धातु से शप् प्रत्यय होता है कर्त्ता अर्थ को कहनेवाला सार्वधातुक पर में रहे तब।

३८९. इगन्ताङ्ग को गुणादेश होता है सार्वधातुक या आर्धधातुक पर में रहे तब।

३९०. प्रत्यय का जो अवयव 'झ' उसको अन्त आदेश होता है।

३९१. अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है यञादि सार्वधातुक पर में रहने पर।

३९२. परोक्षे लिट् ३।२।११५।

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् । लस्य तिबादयः ।

३९३. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । भू अ इति स्थिते ।

३९४. भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६।४।८८॥

भुवो वुगागमः स्याल्लुङ्लिटोरचि ।

३९५. लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः । आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते ।

३९६. पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ।

३९७. हलादिः शेषः ७।४।६०॥

अभ्यासस्याऽदिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः ।

---

३९२. अनद्यतन (परोक्ष) भूत अर्थ में व्यवहार होने पर धातु से लिट् लकार होता है ।

३९३. लिट् के जो तिप् तस् झि इत्यादि नवों आदेश होते हैं उनके स्थान पर णल आदि नव आदेश होते हैं ।

३९४. भू धातु से वुक् का आगम होता है लुङ् लिट् सम्बन्धी अच् पर में रहे तब ।

३९५. अभ्यासरहित धातु का अवयव जो एकाच् उसे द्वित्व होता है लिट् परे रहे तब, आदिभूत अच् से परे द्वितीय एकाच को भी द्वित्व होता है ।

३९६. द्वित्व प्रकरण में विधीयमान जो द्वित्व उनमें से पूर्व की अभ्याससज्ञा होती है ।

३९७. अभ्यास के आदि का हल् अवशिष्ट रह जाता है बाकी हलों का लोप हो जाता है ।

नोटः—अनद्यतन (आज से पूर्व)

परोक्ष=आँख से नहीं देखा गया ।

३९८. ह्रस्वः ७।४।५९॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

३९९. भवतेरः ७।४।७३॥

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि।

४००. अभ्यासे चर्च ८।४।५४॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः, खयां चर इति विवेकः। बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

४०१. लिट् च ३।४।११५॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

४०२. आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्। बभूविथ। बभूवथुः। बभूव।

बभूव—'भू' धातोर्लिटि तस्य स्थाने 'तिप्तस्' इत्यादिना तिपि 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थल' इत्यादिना 'तिप्' स्थाने णलादेशे अनुबन्धलोपे 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' इति वुगागमे 'लिटि धातोरनभ्यासस्ये'ति अभ्यासस्य द्वित्वे 'भूव् भूव् अ' इति स्थिते 'पूर्वोऽभ्यासः' इति अभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वः' इति अभ्यासस्य ह्रस्वे 'भवतेरः' इति उकारस्य अकारे 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वेन भस्य बत्वे 'बभूव' इति।

बभूविथ—भू धातोः 'परोक्षे लिट्' इति लिट्यनुबन्धलोपे लकारस्य सिबादेशे तस्य 'लिट् च' इति आर्धधातुकत्वे 'परस्मैपदानाम्' इति सिपस्थलादेशे 'भू थ' इति जाते स्थानिवत्वेन थस्यार्धधातुकत्वात् 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इडागमे 'भुवो वुक्' इति भुवो वुगागमे 'भुव्' शब्दस्य 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इति पूर्वस्याभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यनेन वस्य लोपे 'ह्रस्वः' इत्यनेन ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'बभूविथ' इति।

---

३९८. अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता है।

३९९. 'भू' धातु के अभ्यास सम्बन्धी उकार को अकार होता है लिट् पर में रहे तब।

४००. झल् को 'चर्' तथा 'जश्' होता है अभ्यास में।

४०१. लिट् के जगह होने वाले तिङ् आदेश की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

४०२. वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है।

बभूव । बभूविव । बभूविम ।

४०३. अनद्यतने लुट् ३।३।१५॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् ।

४०४. स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः । 'लृ' इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् ।

४०५ आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इट् ।

४०६. लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५॥

डा रौ रस् एते क्रमात्स्युः । डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भविता ।

४०७. तासस्त्योर्लोपः ७।४।५१॥

तासेरस्तेश्च सस्य लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ।

भविता—भू धातोः 'अनद्यतने लुट्' इति लुटि तत्स्थाने तिपि 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' इति तिपः सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तत्प्रबाध्य 'स्यतासी लृलुटोः' इति तास्प्रत्यये 'आर्धधातुकं शेषः' इति तास्प्रत्ययस्यार्धधातुकसंज्ञायां 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' इति तिपो डादेशे 'डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः' 'भविता' इति ।

---

४०३. धातु से लुट् लकार होता है भविष्यत् अनद्यतन में ।

४०४. लृट् तथा लुट् को क्रमशः स्य और तास् प्रत्यय होता है ।

४०५. तिङ शित् से भिन्न धात्वधिकार में विहित प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

४०६. लुट् सम्बन्धी प्रथम पुरुष अर्थात् 'तिप्, तस्, झि' के स्थान में क्रमशः डा, रौ, रस् आदेश होते हैं ।

४०७. तास् प्रत्यय एवं अस् धातु सम्बन्धी सकार का लोप होता है सादि प्रत्यय पर में रहे तब ।

४०८. रि च ७।४।५१॥

रादौ प्रत्यये तथा। भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः।

४०९. लृट् शेषे च ३।३।१३॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा। स्यः। इट्। भविष्यति। भविष्यतः भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः।

४१०. लोट् च ३।३।१६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् स्यात्।

४११. आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३॥

आशिषि धातोर्लिङ्लोटौ स्तः

४१२. एरुः ३।४।८६॥

लोट इकारस्य उः स्यात्। भवतु।

४१३. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५॥

भवितारौ—भूधातोः 'अनद्यतने लुट्' इति लुटि लस्य तसादेशे 'भू तस्' इत्यवस्थायां 'शपं' प्रबाध्य 'स्यतासी लृलुटोः' इत्यनेन धातोः तासि प्रत्यये तास 'आर्धधातुकं शेषः' इति आर्धधातुकसंज्ञायामिडागमे धातोर्गुणावादेशयोः 'भवितास् तस्' इति जाते तसः 'लुटः प्रथमस्य' इति यथासंख्यसूत्रसाहचर्येण रौभावे 'रि च' इत्यनेन सस्य लोपे 'भवितारौ' इति सिद्धम्।

---

४०८. रादि प्रत्यय यदि पर में रहे तो वैसा ही समझना चाहिए।

४०९. क्रिया क्रिया की अर्थबोधक हो या नहीं भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है।

४१०. विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न, प्रार्थना--इन अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है।

४११. आशीर्वाद अर्थ जहाँ स्पष्ट हो वहाँ धातु से लिङ् और लोट् लकार होता है।

४१२. लोट् लकार सम्बन्धी जो इकार उसके स्थान में उकार होता है।

४१३. 'तु' एवं 'हि' को तातङ् आदेश होता है आशीर्वाद अर्थ में।

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात् । परत्वात्सर्वादेशः । भवतात् ।

४१४. लोटो लङ्वत् ३।४।८५॥

लोटो लङ् इव कार्यं स्यात् । तेन तामादयः सलोपश्च ।

४१५. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३।४।१०१॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः । भवताम् । भवन्तु ।

४१६. सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७॥

लोटः सेर्हिः स्यात् सोऽपिच्च ।

४१७. अतो हेः ६।४।१०५॥

अतः परस्य हेर्लुक् स्यात् । भव । भवतात् । भवतम् । भवत ।

४१८. मेर्निः ३।४।८९॥

लोटो मेर्निः स्यात् ।

४१९. आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२॥

लोडुत्तमस्याऽऽट् स्यात्स पिच्च । भवानि । हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् ।

भवानि, प्रभवाणि—भूधातोः 'लोट् च' इति 'आशिषि लिङ्लोटौ' इति वा लोटि तत्स्थाने 'तिप्तस्झि' इति मिपि 'तिङ् शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्तरि शप्' इति शपि अनुबन्धलोपे, शपः सार्वधातुकत्वात् 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'मेर्निः' इति मेर्न्यादेशे, 'आडुत्तमस्य पिच्च'

---

४१४. लोट् को जगह लङ्वत् कार्य होता है। अतः तस् आदि के जगह पर 'तम्' आदि आदेश तथा सकार का लोप भी होता है।

४१५. ङित् सम्बन्धी ये जो चार तस्, थस्, थ, मिप् हैं, इनके स्थान में क्रमशः ताम्, तम्, त और अम् आदेश होता है।

४१६. लोट् लकार सम्बन्धी जो 'सि' उसके स्थान में 'हि' होता है तथा वह अपित् संज्ञक भी होता है।

४१७. ह्रस्वाकारान्त (अदन्त) से पर में 'हि' का लोप होता है।

४१८. लोट् लकार से सम्बन्धित 'मि' के स्थान में 'नि' आदेश होता है।

४१९. उत्तम पुरुष लोट् सम्बन्धी से आट् का आगम होता है और वह पित् संज्ञक होता है।

४२०. ते प्राग्धातोः १।४।८०॥

ते = गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

४२१. आनि लोट् ८।४।१६॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्याऽऽनीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि।

१. (वा०) दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः। दुःस्थितिः, दुर्भवानि।

२. (वा०) अन्तश्शब्दस्याऽङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्। अन्तर्भवाणि।

४२२. नित्यं ङितः ३।४।९९॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः स्यात्। अलोऽन्त्यस्येति सलोपः। भवाव। भवाम।

४२३. अनद्यतने लङ् ३।२।१११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

इत्यादि अनुबन्धलोपे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे 'भवानि' इति। मेर्निरित्यत्रेकारोच्चारणान्न 'एरुः' इत्यस्य प्रवृत्तिः' 'ते प्राग्धातोः' इति सूत्रेण शब्दस्य प्राक् प्रयोगे 'आनि लोट्' इति नस्य णत्वे 'प्रभवाणि' इति।

४२०: धातु में गति एवं उपसर्गसंज्ञकों का प्राक् प्रयोग करना चाहिए।

४२१. उपसर्गस्थ णत्व निमित्त रेफ, षकार से परे लोडादेश 'आनि' के नकार को णकार होता है।

१. (वा०) 'दुर्' के उपसर्गत्व का प्रतिषेध षत्व और णत्व के विषय में कहना चाहिए।

२. (वा०) 'आङ्' विधि, 'कि' विधि और 'णत्व' विधान के विषय में अन्तर शब्द की उपसर्ग संज्ञा कहनी चाहिए।

४२२. 'ङित् लकार (लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्) सम्बन्धी सकारान्त उत्तम पुरुष का नित्य ही लोप होता है।

४२३. अनद्यतन भूतार्थ धातु से 'लङ्' लकार हो।

४२४. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१॥
एष्वङ्गस्याऽडागमः स्यात्, स चोदात्तः।

४२५. इतश्च ३।४।१०३॥
ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः स्यात्। अभवत्। अभवताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत। अभवम्। अभवाव। अभवाम।

४२६. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१॥
एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात्।

४२७. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥
लिङः परस्मैपदानां यासुडागमः स्यात्स चोदात्तो ङिच्च।

४२८. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९॥
सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात्। इति प्राप्ते।

४२९. अतो येयः ७।२।८०॥
अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य 'इय्' स्यात्। गुणः।

४३०. लोपो व्योर्वलि ६।१।६६॥
वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि। भवेत्। भवेताम्।

---

४२४. लुङ् या लृङ् के परे अङ्ग को उदात्त संज्ञक 'अाट्' का आगम होता है।

४२५. ङकार इत्संज्ञक लकार सम्बन्धी इकार के स्थान में जो इकारान्त परस्मैपद तदन्त अर्थात् इकार का लोप होता है।

४२६. विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।

४२७. लिङ् सम्बन्धी परस्मैपद को यासुट् का जो आगम होता है वह उदात्त एवं ङित् होता है।

४२८. सार्वधातुक लिङ् सम्बन्धी जो अन्त्य सकार उसका लोप होता है।

४२९. अत् से परे सार्वधातुक अवयव 'यास्' को 'इय्' आदेश होता है।

४३०. वकार और यकार का लोप होता है वल् प्रत्याहार पर में रहे तब।

४३१. झेर्जुस् ३।४।१०८॥

लिङो झेर्जुस् स्यात्। भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम।

४३२. लिङाशिषि ३।४।११६॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

४३३. किदाशिषि ३।४।१०॥

आशिषि लिङो यासुट् कित्स्यात्। स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः।

४३४. ग्क्ङिति च १।१।५॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः। भूयात्। भूयास्ताम्।

भवेत्—भू धातोः 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' इति तत्स्थाने 'तिप्तस्झि' इति तिपि तिपः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इति यासुटि अनुबन्धलोपे 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति यासः सस्य लोपे प्राप्ते तं प्रबाध्य 'अतो येयः' इति यासः स्थाने इयादेशे 'आद्-गुणः' इति गुणे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'भवेत्' इति।

भवेयुः—भूधातोः 'विधिनिमन्त्रणे'ति लिङि तत्स्थाने झौ 'तिङ् शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञायां 'कर्तरि शप्' इति शपि अनुबन्धलोपे शपः सार्वधातुकत्वात् 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे 'झेर्जुस्' इति झस्य जुसि अनुबन्धलोपे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इति यासुटि अनुबन्धलोपे 'अतो येयः' इति यासः इयादेशे 'आद्गुणः' इति गुणे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'भवेयुः' इति।

भूयात्—भूधातोः 'आशिषि लिङ्लोटौ' इति लिङि तत्स्थाने 'तिप्तस्झि'

---

४३१. लिङ् में जो झि उसके स्थान में जुस् आदेश होता है।

४३२. लिङ् के स्थान में तिङादेश की आशीर्वाद अर्थ में आर्धधातुक संज्ञा होती है।

४३३. आशीर्वाद के अर्थ में लिङ् सम्बन्धी जो यासुट् वह कित् संज्ञक होता है।

४३४. गित्, कित् या ङित् निमित्त इग्लक्षण में गुण-वृद्धि का निषेध होता है।

भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म।[१]

४३५. लुङ् ३।२।११०॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात्।

४३६. माङि लुङ् ङ ३।१।१७५॥

माङ्युपपदे धातोर्लुङ् स्यात्। सर्वलकारापवादः।

४३७. स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ्।

४३८. च्लि लुङि ३।१।४३॥

धातोश्च्लिप्रत्ययः स्याल्लुङि। शबाद्यपवादः।

४३९. च्लेः सिच् ३।१।४४॥

च्लेः सिजादेशः स्यात्। इचावितौ।

इति तिपि 'लिङाशिषि' इति आर्धधातुकत्वात् शपोऽभावे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इति यासुटि अनुबन्धलोपे 'किदाशिषि' इति यासुटः कित्त्वेन 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'भयात्' इति दशायां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे प्राप्ते यासुटः कित्वेन 'क्ङिति च' इति निषेधे उक्तं रूपं सिद्धम्।

अभूत्—भूधातोः 'लुङ्' इति सूत्रेण लुङि तत्स्थाने 'तिप्तस्झि' इति तिपि 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति सिचि 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लुकि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे प्राप्ते 'भूसुवोस्तिङि' इति निषेधे 'अभूत्' इति।

---

४३५. भूतकालिक अर्थ को बतलाने वाले वृत्ति धातु से लुङ् लकार होता है।

४३६. यदि उपपद माङ् शब्द हो तो धातु से लुङ् लकार होता है।

४३७. माङ् के योग में लङ् लकार तथा लुङ् लकार भी होता है 'स्म' शब्द उत्तर में हो तब।

४३८. लुङ् पर में रहे तो धातु से 'च्लि' प्रत्यय होता है। यह शप्-आदि का अपवाद है।

४३९. च्लि के जगह में सिच् आदेश होता है।

४४०. गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदे २।४।७७॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेशापिबती गृह्येते ।

४४१. भू सुवोस्तिङि ७।२।८८॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणे न स्यात् । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ।

४४२. न माङ्योगे ६।४।७४॥

अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मास्म भूत् ।

४४३. लिङ्-निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । 'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्' इत्यादि ज्ञेयम् ।

अत सातत्यगमने—अतति ।

अभूवन्—भूधातोः 'लुङ्' इति लुङि तत्स्थाने 'तिप्तस्झि' इति झौ 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्लेः सिच्' इति तस्य सिचि 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लुकि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे प्राप्ते 'भूसुवोस्तिङि' इति निषेधे 'झोऽन्तः' इति झस्याऽन्तादेशे 'भूवो वुग्लुङ्लिटोः, इति वुगागमे अनुबन्धलोपे 'संयोगान्तस्य लोपः' इति तलोपे 'अभवन्' इति ।

---

४४०. घुसंज्ञक धातु 'गा, स्था, घु, पा एवं भू धातु से परे सिच् का लोप होता है । यहाँ पर इणादेश गा धातु तथा पिबादेश 'पा' धातु का गा तथा पा से ग्रहण होता है ।

४४१. 'भू' 'सु' धातु को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं होता है ।

४४२. अट्, आट् माङ् (मा) के योग में नहीं होता है ।

४४३. क्रिया की सिद्धि यदि निश्चित नहीं हो तब हेतुहेतुमद्भावादि लिङ् के निमित्तार्थक अर्थ में भविष्यत् काल की क्रिया के व्यवहार में धातु से 'लृङ्' लकार होता है ।

४४४. अत आदेः ७।४।७०॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात्। आत, आततुः, आतुः। आतिथ, आतथुः, आत। आत, आतिव, आतिम। अतिता। अतिष्यति। अततु।

४४५. आडजादीनाम् ६।४।७२॥

अजादेरङ्गस्याऽऽट् स्यात् लुङ्लङ्लृङ्क्षु। आतत्। अतेत्। अत्यात्। अत्यास्ताम्। लुङि सिचि इडागमे कृते।

४४६. अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्याऽपृक्तस्य हल ईडागमः स्यात्।

४४७. इट ईटि ८।२।२८॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे।

(वा०) सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः। आतीत्। आतिष्टाम्।

४४८. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् स्यात्। आतिषुः।

आतीत्—सततगमनार्थक अत् धातोर्लुङि तिप्यनुबन्धलोपे 'इतश्चे'तीकारलोपे 'च्लि लुङि' इति 'च्लेः सिच्' इति सिचि अनुबन्धलोपे, 'आडजादीनाम्' इत्याडागमेऽनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ सिचः (पदस्य) सकारस्य 'आर्धधातुके'ति इटि तिपः तकारस्य 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटयनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति वार्तिकेन सिज्लोपस्य असिद्धत्वाऽभावेन 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घे आतीतेति।

---

४४४. अभ्याससंज्ञक आदि अकार को दीर्घ होता है।

४४५. अजादि अङ्ग से आट् का आगम होता है लुङ्, लङ् या लृङ् लकार पर में रहे तब।

४४६. विद्यमान् सिच् और अस्ति से पर में अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है।

४४७. इट् से पर में जो सकार उसका लोप होता है ईट् पर में रहे तब।

वा —एकादेश में सिच् लोप को सिद्ध ही समझना चाहिए।

४४८ सिच् धातु से पर में, अभ्यस्तसंज्ञक से पर में तथा विद् धातु से पर

आतीः। आतिष्टम् । आतिष्ट । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत् । षिध गत्याम् ।

४४९. ह्रस्वं लघु १।४।१०॥

ह्रस्वं लघुसंज्ञं स्यात् ।

४५०. संयोगे गुरु १।४।११॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु संज्ञं स्यात् ।

४५१. दीर्घञ्च १।४।१२॥

दीर्घञ्च गुरु संज्ञं स्यात् ।

४५२. पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाऽङ्गस्येको गुणः स्यात् सार्वधातुकार्धधातुकयाः। धात्वादेरिति सः। सेधति । षत्वम् । सिषेध ।

४५३. असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः। सिषिधुः । सिषेधिथ । सिषिधथुः। सिषिध । सिषेध । सिषिधिव । सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवम्—चिती संज्ञाने । शुच शोके । गद व्यक्तायां वाचि । गदति ।

४५४. नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णः स्यात् गदादिषु परेषु । प्राणिगदति ।

में ङित् लकार सम्बन्धी 'झि' को 'जुस्' आदेश होता है ।

४४९ ह्रस्व वर्णों की लघु संज्ञा होती है ।

४५०. संयुक्त वर्ण पर में रहे तो ह्रस्व वर्ण की गुरु संज्ञा होती है।

४५१. दीर्घ वर्णों की भी गुरु संज्ञा होती है ।

४५२. सार्वधातुक प्रत्यय के परे पुगन्त और लघूपध अङ्ग का अवयव जो इक् उसे गुण होता है ।

४५३. संयोगभिन्न से परे पित्‌भिन्न लिट् की कित् संज्ञा होती है ।

४५४. उपसर्गस्थ निमित्त से पर में जो 'नि' उसके नकार को णकार होता

४५५. कुहोश्चुः ७।४।६२॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः स्यात्।

४५६. अत उपधायाः ७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे। जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

४५७. णलुत्तमो वा ७।१।९१॥

उत्तमो णल् वा णित्स्यात्। जगाद, जगद। जगदिव। जगदिम। गदिता। गदिष्यति। गदतु। अगदत्। गदेत्। गद्यात्।

४५८ अतो हलादेर्लघोः ७।२।७॥

हलादेर्लघोरकारस्य इडादौ परस्मैपदे सिचि वृद्धिर्वा स्यात्। अगादीत्-अगदीत्। अगदिष्यत्।

णद अव्यक्ते शब्दे।

४५९. णो नः ६।१।६५॥

धातोरादेर्णस्य नः स्यात्। णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः।

४६०. उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४॥

है। गद, नद, पत इत्यादि धातु पर में रहे तब।

४५५ अभ्यास सम्बन्धी जो कवर्ग और हकार उसको चवर्ग आदेश होता है।

४५६. उपधा के ह्रस्वाकार को वृद्धि होती है ञित् णित् प्रत्यय पर में रहे तब।

४५७. उत्तमपुरुषस्थ का णल् विकल्प से णित् होता है।

४५८. हलादि धातु के ह्रस्व अकार को वृद्धि विकल्प से होती है।

४५९. धातु के प्रारम्भ में णकार को नकार होता है। नर्द, नाटि, नाथ्, नाध्, नन्द, नक्क, नृ और नृत्—इन नकारादि धातुओं से भिन्न नकारादि धातु णोपदेश कहलाते हैं।

४६०. उपसर्गस्थ निमित्त से परे णकारोपदेश धातु के णकार को नकार

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात् समासे असमासे च । प्रणदति । प्रणिनदति । नदति । ननाद ।

४६१. अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽकारस्य एकारः स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदतुः । नेदुः ।

४६२. थलि च सेटि ६।४।१२१॥

प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद, ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत्-अनदीत् । अनदिष्यत् ।

टुनदि समृद्धौ ।

४६३. आदिर्ञिटुडवः १।३।५॥

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ।

४६४. इदितो नुम् धातोः ७।१।५८॥

इदितो धातोर्नुमागमः स्यात् । नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् ।

अर्च पूजायाम् । अर्चति ।

४६५. तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूताकारात्परस्य नुट् स्यात् । आनर्च । आनर्चतुः ।

आनर्च—अर्च् धातोर्लिटस्तिपि 'परस्मैपदानाम्' इति तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति

होता है समास तथा असमास में ।

४६१. लिट् निमित्तक भिन्न जो अङ्ग जिसको आदेश नहीं हुआ हो और असंयुक्त हल् मध्यस्थ जो अकार उसको एत्व होता है और अभ्यास का लोप भी कित्-लिट् परे होता है ।

४६२. इट् सहित (सेट्) थल् के परे भी पूर्वोक्त प्रकार का एत्व होता है ।

४६३. आदेशावस्था में धात्वादि वर्तमान जो 'ञि-टु-डु' इत्संज्ञक होते हैं ।

४६४. इकार इत्संज्ञक धातु से नुम् का आगम होता है ।

४६५. द्विहल् (दो व्यञ्जन वर्ण) हों जिसमें ऐसे धातु के दीर्घीभूत अकार

अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्।

व्रज गतौ। व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्।

४६६. वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३॥

वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाऽङ्गस्याऽचः स्थाने वृद्धिः स्यात् सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्।

कटे वर्षाऽऽवरणयोः। कटति। चकाट। चकटतुः। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्।

४६७ ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५॥

ह्मयान्तस्य क्षणादिर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्। गुपू रक्षणे।

४६८. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३।१।२८॥

एभ्यः आयप्रत्ययः स्यात्स्वार्थे।

हलो लोपे 'अत आदेः' इति अभ्यासाकारस्य दीर्घे 'तस्मान्नुड् द्विहलः' इति नुटचनुबन्धलोपे 'आनर्च' इति।

अकटीत्—कट् धातोर्लुङि तत्स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिचि अनुबन्धलोपे सस्यार्धधातुकसंज्ञायाम् 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' इति इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्' इति तन्निषेधे 'इट ईटि' इति सिचः सस्य लोपे सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अकटीत्' इति।

से परे नुट् का आगम होता है।

४६६. वद् व्रज और हलन्त धातु के अङ्गावयव अक् को वृद्धि होती है परस्मैपद में सिच् परे रहते।

४६७. हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त धातु और क्षणादि (क्षण, श्वस, जागृ) और ण्यन्त, श्वि एवं एदित् धातु को वृद्धि नहीं होती इडादि सिच् पर में रहे तब।

४६८. गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन धातुओं से आय प्रत्यय स्वार्थ में होता है।

४६९ सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२॥

सनादयः कर्मेणिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः स्युः। धातुत्वाल्लडादयः। गोपायति।

४७०. आयादय आर्धधातुके वा ३।१।३१॥

आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः।

(वा०) कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि। आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्वम्।

४७१, अतो लोपः ६।४।४८॥

आर्धधातुकोपदेशे यदकारान्तं तस्याऽकारस्य लोपः स्यादार्धधातुके।

४७२ आमः २।४।८१॥

आमः परस्य लुक् स्यात्।

४७३. कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०॥

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि।

४७४. उरत् ७।४।६६॥

अभ्यासऋवर्णस्यात्स्यात्प्रत्यये परे। रपरः। हलादिः शेषः। वृद्धिः।

---

४६९. सन्, क्यच्, काम्यच् आदि से 'कर्मेणिङ्' पर्यन्त कोई भी प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसकी धातु संज्ञा होती है।

४७०. आर्धधातुक की विवक्षा में आय-आदिक प्रत्यय हों विकल्प से।

वा०—कास् धातु एवं अनेकाच् धातु से 'आम्' होता है लिट् पर में हो तब।

४७१. उपदेश अवस्था (आद्योच्चारण) में अकारान्त धातु के अकार का लोप होता है आर्धधातुक प्रत्यय पर में रहे तब।

४७२. आम् से परे लिट् का लोप होता है।

४७३. आमन्त से परे में जो कृ, भू, अस् धातुएँ इनका अनुप्रयोग होता है।

४७४. प्रत्यय के परे अभ्यास ऋवर्ण को 'अत्' होता हैं।

नोट—सन्क्यच्काम्यच्क्यङ्क्यषोऽथाऽऽचारक्विण्णिज्यङस्तथा।
यगाय-ईयङ्-णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः॥

गोपायाञ्चकार। द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते—

४७५. द्विर्वचनेऽच १।१।५९॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये। गोपाया-ञ्चक्रतुः।

४७६ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्यार्धधातुकस्येण्न स्यात्।

ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

कान्तेषु—शक्ल् एकः। चान्तेषु–पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट्। छान्तेषु—प्रच्छेकः। जान्तेषु—त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-रुज्-रञ्ज्-यज्-युज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज्-सृजः पञ्चदश। दान्तेषु—अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्यति-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द्–हदः षोडश।

धान्तेषु–क्रुध्-क्षुध्-बुध्-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध्-सिध्य एका-दश। नान्तेषु—मन्यहनौ द्वौ। पान्तेषु—आप्-क्षुप्–क्षिप्–तप्–तिप्--तृप्य-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश। भान्तेषु—यभ्-रभ्-लभ-स्त्रयः। मान्तेषु—गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः। शान्तेषु—क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लश्-विश्-स्पृशो दश। षान्तेषु–कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-

---

गोपायाञ्चकार—उकार इत्संज्ञक 'गुप्' धातोः 'आयादय आर्धधातुके वा' इति सूत्रसहकारेण 'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः आयः' इति आय प्रत्यये कृते तस्या-र्धधातुकत्वात् 'पुगन्तलघूपधस्य चे'ति गुणे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुसंज्ञायां

---

४७५. द्वित्वनिमित्तक अच् पर में हो तो 'अच्' के स्थान में कोई आदेश नहीं होता है द्वित्व कर्तव्य में।

४७६. उपदेशावस्था में एकाच् या अनुदात्त धातु यदि हो तो उससे परे आर्ध-धातुक को इट् नहीं होता है।

श्लोकार्थ—अजन्त धातुओं में ऊदन्त ऋदन्त जो धातु, यु, रु, क्ष्णु, शीङ् स्नु, नु, टुक्षु, डीङ्, श्रिञ् वृङ् और वृञ् को छोड़कर अन्य एकाच् धातु अनुदात्त-संज्ञक होते हैं।

पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्या एकादश। सान्तेपु—घस्-वसती द्वौ। हान्तेषु–दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह् वहोऽष्टौ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् (१०३)।

गोपायाञ्चकर्थ। गोपायाञ्चक्रथुः। गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर। गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम। गोपायाम्बभूव। गोपायामास। जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः।

४७७. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। जुगोपिथ। जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्। गुप्यात्। अगोपायीत्।

लिटि 'कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः' इति वार्तिकेन आमि, आमो मकारस्येत्संज्ञायां लोपे च लिटि आस्कासोराम्विधानान्मकारस्येत्त्वाभावेन लोपाभावे 'गोपाय आम् लिट्' इति स्थिते। आम् प्रत्ययस्यार्धधातुकसंज्ञायाम् 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति कृञोऽनुप्रयोगे लिटस्तिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे, कृञो 'लिटि' धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'पूर्वोभ्यासः' इति अभ्याससंज्ञायां 'उरत्' इत्यभ्यासऋकारस्याकारे रपरे, 'हलादिः शेषः' इति रलोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासककारस्य चुत्वेन चकारे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे च कृते 'गोपायाञ्चकार' इति।

गोपायाञ्चकारवदेव गोपायाञ्चक्रतुरिति प्रयोगस्य सिद्धिर्भवति।

जुगोपिथ—गुप् धातोरायप्रत्ययाभावपक्षे लिटि तत्स्थाने सिपि सिपस्थलादेशे अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति अन्त्यहलो लोपे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'स्वरतिसूति' इति इडागमे अनुबन्धलोपे 'जुगोपिथ' इति। इडभावपक्षे 'जुगोप्थ' इति।

ककारान्त धातुओं में एक शक् धातु को छोड़कर सभी अनुदात्त होते हैं।

४७७. स्वरति सूति आदि एवं उदित् धातु से पर में जो वलादि आर्धधातुक उसे विकल्प से 'इट्' का आगम होता है।

४७८. नेटि ७।२।४॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न स्यात्। अगोपीत्। अगौप्सीत्।

४७९. झलो झलि ८।२।२६॥

झलः परस्य सस्य लोपः स्याज्झलि। अगौप्ताम्। अगौप्सुः। अगौप्सीः। अगौप्तम्। अगौप्त। अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्। क्षि क्षये। क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः। 'एकाच' इतीण्निषेधे प्राप्ते।

४८०. कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।१३॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्।

४८१. अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्याऽनिट् ततस्थल इण्न स्यात्।

अगोपीत्—गुप्धातोरायप्रत्ययाऽभावपक्षे लुङि तत्स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति सिचि अनुबन्धलोपे 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' इति इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'वदव्रजहलन्तस्याचः' इति वृद्धौ प्राप्तायां 'नेटि' इति निषेधे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'अगोपीत्' इति। इडभावपक्षे 'वदव्रजे'ति वृद्धौ 'अगौप्सीत्' इति च भवति।

अगौप्ताम्—गुप्धातोर्लुङि प्रथमपुरुषद्विवचने आयप्रत्ययपक्षे 'अगोपायिष्टाम्' इति। आयप्रत्ययाभावपक्षे 'स्वरतिसूती'ति इटि 'अगोपिष्टाम्' इति। इडभावपक्षे 'अगौप्ताम्' इति। तथाहि—लुङः स्थाने तसि तसस्तामादेशे 'लुङ्लङि'त्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि अनुबन्धलोपे 'वदव्रजहलन्तस्याचः' इति वृद्धौ 'झलो झलि' इति सलोपे 'अगौप्ताम्' इति सिद्धम्।

---

४७८ हलन्त को वृद्धि इडादि सिच् परे रहते नहीं होती है।

४७९. झल् से पर में जो सकार उसका लोप होता है झल् परे।

४८०. कृ आदि धातुओं से लिट् को इट् नहीं होता, दूसरे अनिट् धातु से भी लिट् को 'इट्' हो जाता है।

४८१. उपदेश में अजन्त तास् के परे नित्य अनिट् हो उससे परे थल् को नित्य इट् नहीं होता है।

४८२. उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्याऽनिटः परस्य थल् इण् न स्यात् ।

४८३. ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३॥

तासौ नित्याऽनिट् ऋदन्तादेव थलो नेट् भारद्वाजस्य मतेन । तेना-ऽन्यस्य स्यादेव ।

अयमत्र सङ्ग्रहः—

अजन्तोकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्याऽनिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

चिक्षयिथ-चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय-चिक्षय । चिक्षि-यिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ।

४८४. अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्याद्यादौ प्रत्यये परे न तु कृत्सार्वधातुकयोः।

चिक्षयिथ—क्षिधातोर्लिटि तत्स्थाने सिपि 'परस्मैपदानामि'ति सिपः स्थाने थलादेशे अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये क्षि-धातोरजन्तत्वात् तासौ नित्यानिट्कत्वाच्च 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति भारद्वाजमते इटि अनुबन्धलोपे 'अचि श्नु धातुभ्रुवाम्' इति इयङि 'चिक्षयिथ' इति । इडभाव-पक्षे गुणे 'चिक्षेथ' इति ।

---

४८२. उपदेश में अकारवान् धातु वह यदि तासि प्रत्यय के परे नित्यानिट् हो तो उससे पर में थल् को इट् नहीं होता है ।

४८३. तास् प्रत्यय के बाद नित्य अनिट् ऋदन्त धातु उसको थल् प्रत्यय परे रहते भारद्वाज के मत में इट् नहीं होता है । अजन्त अथवा अकारवान् 'तासि' प्रत्यय के परे नित्य अनिट् धातु को थल् में विकल्प से इट् होता है तथा 'तासि' प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु वह थल् में नित्याऽनिट् (इट् का नित्य निषेध) होता है । और कृ-सृ-भृ आदि आठ धातुओं से भिन्न जो अनिट् धातु, वह लिट् में 'सेट्' ही होता है ।

४८४. ककारादि प्रत्यय पर में रहे तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है कृत्सा-र्वधातुक को छोड़कर ।

क्षीयात् ।

४८५. सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदपरे सिचि । अक्षैषीत् अक्षेष्यत् । तप सन्तापे । तपति । तताप । तेपतुः । तेपुः । तेपिथ । ततप्थ । तेपिव । तेपिम । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । क्रमु पादविक्षेपे ।

४८६. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ३।१।७०॥

एभ्यः श्यन्वा स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ।

४८७. क्रमः परस्मैपदेषु ७।३।३६॥

क्रमेर्दीर्घः स्यात् परस्मैपदे शिति । क्राम्यति-क्रामति । चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु-क्रामतु । अक्राम्यत्-अक्रामत् । क्राम्येत्-क्रामेत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । पा पाने ।

क्षीयात्—क्षिधातोराशिषि लिङि तत्स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्चे'ति यासुटयनुबन्धलोपे 'किदाशिषि' इति यासुटः कित्वेन 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इति दीर्घे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'क्षीयात्' इति ।

अक्षैषीत्—क्षिधातोर्लुङि तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईटि अनुबन्धलोपे 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे 'अक्षैषीत्' इति ।

क्राम्यति—क्रम् धातोर्लटि तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः' इति श्यनि अनुबन्धलोपे 'क्रमः परस्मैपदेषु' इति दीर्घे 'क्राम्यति' इति । श्यनोऽभावे शपि 'क्रामति' इति च सिद्धं भवति ।

अक्रमीत्—क्रम् धातोर्लुङि तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे च्लौ च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्तिसिचोऽ-

---

४८५. इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है परस्मैपदपरक सिच् पर में हो तब ।

४८६. कर्त्रर्थक सार्वधातुक यदि पर में हो तब भ्राश्, भ्लाश् आदि धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है ।

४८७. क्रम धातु को दीर्घ होता है परस्मैपद सम्बन्धी शित् पर में हो तब ।

४८८. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमन-यच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ७।३।७८॥

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्त-स्तेन न गुणः। पिबति।

४८९. आत औ णलः ७।१।३४॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। पपौ।

४९०. आतो लोप इटि च ६।४।६४॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः स्यात्। पपतुः। पपुः। पपिथ-पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

४९१. एर्लिङि ६।४।६७॥

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि। पेयात् गातिस्थेति सिचो लुक्। अपात्, अपाताम्।

४९२. आतः ३।४।११०॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् स्यात्।

पृक्ते' 'इति तस्य च ईटि अनुबन्धलोपे 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अक्रमत्' इति। अत्र 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धिस्तु न, 'ह्यचन्तक्षण' इति निषेधात्।

---

४८८. पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्यर्ति-सर्ति-शदसद धातुओं को पिब जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्यर्च्छ-धौ-शीय-सीद आदेश होता है।

४८९. णल् को औकार आदेश होता है आदन्त धातु से परे।

४९०. अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक इट् पर में यदि रहे तो आकार का लोप होता है।

४९१. घुसंज्ञक एवं मा-स्था आदि धातुओं को एत्व होता है आर्धधातुक कित्, ङित् पर में हो तब।

४९२. अकारान्त धातु से झि के स्थान पर जुस् होता है सिच् का लोप हो जाने पर।

४९३. उस्यपदान्तात् ६।१।९६॥

अपदान्तादकारादुसि परे पररूपमेकादेशः स्यात्। अपुः। ग्लै हर्षक्षये। ग्लायति।

४९४. आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं स्यान्न तु शिति। जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्।

४९५. वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात् एत्वं वा स्यादार्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्-ग्लायात्।

४९६. यमरमनमातां सक् च ७।२।७३॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच् इट् स्यात्परस्मैपदेषु। अग्लासीत्। अग्लास्यत्। ह्वृ कौटिल्ये। ह्वरति।

अपुः—पाधातोर्लुङि तत्स्थाने झौ 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लुकि झेर्जुसि अनुबन्धलोपे 'उस्य पदान्तात्' इति पररूपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'अपुः' इति।

ग्लेयात्—ग्लैधातोराशीर्लिङि तिपि 'लिङाशिषि' इत्यार्धधातुकत्वात् शबभावे यासुटि अनुबन्धलोपे 'आदेच उपदेशेऽशिति' इत्यात्वे तिपि इकारलोपे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'वाऽन्यस्य संयोगादेः' इत्येत्वे ग्लेयात् इति। एत्वाभावे ग्लायात् इति बोध्यम्।

अग्लासीत्—ग्लैधातोर्लुङि तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'आदेच

---

४९३. अपदान्त अकार से उस् पर में यदि हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता हैं।

४९४. शित् यदि पर में हो तो उपदेशावस्था में एजन्त धातु के एच् के स्थान में आव होता है।

४९५. घुमा-स्था आदि धातुओं से भिन्न संयोगादि धातु के अकार को एकार होता है आर्धधातुक कित् लिङ् पर में हो तब।

४९६. परस्मैपदी में यम्, रम्, नम् एवं आदन्त धातु से सक् का आगम

४९७. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः स्याल्लिटि। उपधाया वृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थ। जह्वरथुः। जह्वर। जह्वार-जह्वर। जह्वरिव। जह्वरिम। ह्वर्ता।

४९८. ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् स्यात्। ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्।

४९९. गुणोर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्। श्रु श्रवणे।

५००. श्रुवः शृ च ३।१।७४॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च। शृणोति।

५०१. सार्वधातुकमपित् १।२।४॥

उपदेशेऽशिति' इत्यात्वे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते 'यमरमनमातां सक् च' इति सकि सिचः सकारस्य इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे, 'इट् इटि' इति सिचः सस्य लोपे, 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अग्लासीत्' इति सिद्धं भवति।

ह्वर्यात्—ह्वृधातोराशीर्लिङि तिपि यासुटि उटि गते यासुटः क्त्वात् 'क्ङिति चे'ति 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति प्राप्तगुणनिषेधे 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः इति गुणे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'ह्वर्यात्' इति।

होता है और सिच् को इट् होता है।

४९७. ऋदन्त संयोगादि अङ्ग को गुण होता है लिट् परे।

४९८. ऋदन्त और हन् धातु से पर में 'स्य' को इट् का आगम होता है।

४९९. 'ऋ' एवं संयोगान्त ऋदन्त धातु से गुण होता है यक् या यकारादि आर्धधातुक लिङ् पर में हो तब।

५००. श्रु के स्थान पर शृ आदेश और श्नु प्रत्यय दोनों होते हैं।

५०१. पित् भिन्न सार्वधातुक ङित् के समान (ङिद्वत्) होता है।

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । शृणुतः ।

५०२. हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य चाऽसंयोगपूर्वोवर्णस्य यण् स्यादजादौ सार्वधातुके । शृण्वन्ति । शृणोषि । शृणुथः । शृणुथ । शृणोमि ।

५०३. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा स्यात् म्वोः परयोः । शृण्वः–शृणुवः । शृण्मः–शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव-शुश्रव, शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु-शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु ।

५०४. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६॥

शृण्मः—श्रुधातोर्लटि तत्स्थाने 'तिप्तस्झि' इति मसि 'श्रुवः शृ च' इति श्रुवः 'शृ' आदेशे चकारात् 'श्नु' प्रत्यये च कृते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते शित्त्वात् 'सार्वधातुकमपित्' इति श्नोर्ङित्वे 'क्ङिति च' इति गुणनिषेधे णत्वे 'लोपचास्यान्यतरस्यां म्वोः' इति उकारलोपे, सस्य विसर्गे 'शृण्मः' इति । लोपाऽभावे 'शृणुमः' इति ।

शृणु—श्रुधातोर्लोटि सिपि 'श्रुवः शृ च' इति श्नुप्रत्यये चकारात् 'शृ' आदेशे च कृते श्नुप्रत्ययस्य शस्य 'लशक्वतद्धिते' इतोत्संज्ञायां लोपे च जाते शित्त्वात् सार्वधातुकत्वे 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वेन गुणाऽभावे 'सेर्ह्यपिच्च' इत्यनेन सेर्ह्यादेशे 'सार्वधातुकमपित्' इति हेर्ङित्वात् उकारस्य च गुणाभावे 'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्' इति हेर्लुकि 'शृणु' इति । तातङ् पक्षे 'शृणुतात्' इति ।

---

५०२. 'हु' धातु एवं श्नु प्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग तदवयव असंयोगपूर्वक उवर्ण को यण् आदेश होता है अजादि सार्वधातुक पर में हो तब ।

५०३. मकार, वकार प्रत्यय पर में रहे तब असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकार का लोप होता है ।

५०४. संयोगभिन्न प्रत्यय के उकारान्त अंग से परे जो 'हि' उसका लोप होता है ।

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक् स्यात । शृणु-शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणाऽवादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृण-वाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृ-णुत । अशृणवम् । अशृण्व-अशृणुव । अशृण्म-अशृणुम । शृणुयात् । शृणु-याताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणु-याव । शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ ।

५०५. इषुगमियमां छः ७।३।७७॥

एषां छः स्यात् शिति । गच्छति । जगाम ।

५०६. गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः जग्मुः । जगमिथ–जगन्थ । जग्मथुः । जग्म । जगाम–जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ।

अशृणवम्—श्रुधातोर्लङि उत्तमपुरुषैकवचने मिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपं प्रबाध्य 'श्रुवः शृ च' इति 'शृ' आदेशे श्नु प्रत्यये च, अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' इति मिपोऽमादेशे 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति णत्वे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अवादेशे उक्तं रूपं सिद्धम् ।

अश्रौषीत्—श्रुधातोर्लुङि तिपि अनुबन्धलोपे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते 'अस्तिसिचः' इतोटि सिचः सकारस्यार्धधातुकत्वाद् इटि प्राप्ते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति निषेधे 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ षत्वे 'अश्रौषीत्' इति सिद्धम् ।

जग्मतुः—गम् धातोर्लिटि तत्स्थाने तसि 'परस्मैपदानाम्' इति तसोऽतुसादेशे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासमकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति गस्य कुत्वेन जकारे 'गमहनजन-खनघसां लोपः 'क्ङित्यनङि' इत्युपधालोपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'जग्मतुः' इति ।

---

५०५. इष्, गम्, यम् धातुओं को 'छ' आदेश होता है 'शित्' पर में हो तब ।

५०६. गम्, हन्, जन्, खन् और घस् के बाद यदि अजादि कित्, ङित् मिले तो प्रत्यय की उपधा का लोप होता है ।

५०७ गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८॥
गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति ।
गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ।

५०८. पुषादिद्युताद्लृदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५॥
श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् स्यात् परस्मैपदेषु ।
अगमत् । अगमिष्यत् ।

॥ इति परस्मैपदिनः ॥

अथात्मनेपदिनः

एध वृद्धौ ।

५०९. टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९॥
टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वं स्यात् । एधते ।

५१०. आतो ङितः ७।२।८१॥
अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात् । एधेते । एधन्ते ।

अगमत्—'गम्लृ गतौ' अस्माद्धातोर्लुङि तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ तस्य सिचि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'पुषादिद्युताद्लृदितः परस्मैपदेषु' इति च्लेरङादेशे अनुबन्धलोपे 'अगमत्' इति ।

---

५०७ परस्मैपद में गम धातु से परे सादि आर्धधातुक हो तो उसे 'इट्' का आगम होता है ।

५०८ श्यन् विकरण पुषादि, द्युतादि तथा लृदित् धातुओं के बाद 'च्लि' को अङ् आदेश होता है परस्मैपद में ।

॥ इति परस्मैपदिनः ॥

५०९. टकार की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे लकार सम्बन्धी आत्मनेपद की 'टि' को एत्व होता है ।

५१०. अत् के बाद यदि ङित्सम्बन्धी आकार हो तो उसे 'इय्' आदेश होता है ।

५११. थासः से ३।४।८०॥

टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ।

५१२. इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छत्यन्तस्तत आम् स्याल्लिटि ।

५१३ आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात् ।

५१४. लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेश् इरेजित्येतावादेशौ स्तः ।

एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ।

५१५. इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८॥

एधाञ्चक्रे—एध्धातोर्लिटि 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्यामि 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिटपरककृञोऽनुप्रयोगे इत्यात्मनेपदत्वात् लिटः स्थाने तप्रत्यये तस्यैशादेशे अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे तं 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इत्याभ्यासऋवर्णस्य आत्वे रपरत्वे 'हलादिः शेषः' इति कित्त्वेन गुणनिषेधे 'इको यणचि' इति यणि मस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते 'एधाञ्चक्रे' इति ।

---

५११. टकार इत्संज्ञक जो लकार उसके स्थान में 'थास्' को 'से' आदेश होता है ।

५१२. गुरुमान् जो इजादि धातु उससे आम् होता है लिट् पर में रहे तब । 'ऋच्छ' धातु को छोड़कर ।

५१३. जिसमें आम् प्रत्यय हो उसे अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि समझना चाहिए ।

५१४. लिट् के स्थान में आदेशरूपी 'त' को 'एश्' और 'झ' को 'इरेच्' आदेश होता है ।

५१५. षी ध्वम् तथा लुङ् लिट् सम्बन्धी धकार को ढकार होता है इण् अन्त अङ्ग से परे ।

इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्। एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूव। एधामास। एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे।

५१६. धि च ८।२।२५॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः स्यात्। एधिताध्वे।

५१७. ह एति ७।४।५२॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। **एधिताहे**। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

५१८. आमेतः ३।४।९०॥

लोट एकारस्य आम् स्यात्। एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्।

५१९. सवाभ्यां वाऽमौ ३।४।९१॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वाऽमौ स्तः। एधस्व। एधेथाम्।

एधाञ्चकृढ्वे—एध्धातोर्लिटि 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्यामि 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटः स्थाने ध्वमि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इत्यत्त्वे रपरत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्यासस्यान्त्यस्य रेफस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति कस्य चुत्वे 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्' इति धस्य ढत्वे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इत्येत्वे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'एधाञ्चकृढ्वे' इति।

एधस्व—एध्धातोर्लोटि तत्स्थाने थास्यागते सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनु-

---

५१६. धकार हो आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय पर में हो तो सकार का लोप होता है।

५१७ तास् प्रत्यय और अस् धातु सम्बन्धी 'स' को 'ह' आदेश होता है एकार पर में हो तब।

५१८. लोट् लकार सम्बन्धी जो एकार उसको आम् आदेश होता है।

५१९. सकार और वकार से पर में लोट् सम्बन्धी जो एकार उसको क्रम से व और म आदेश होता है।

एधध्वम्।

५२०. एत ऐ ३।४।९३॥

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। एधै। एधावहै। एधामहै। आटश्च। ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि।

५२१. लिङः सीयुट् ३।४।१०२॥

लिङादेशानां सीयुडागमः स्यात् आत्मनेपदे। सलोपः। एधेत। एधेयाताम्।

५२२. झस्य रन् ३।४।१०५॥

लिङो झस्य रन् स्यात्। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्।

५२३. इटोऽत् ३।४।१०६॥

लिङादेशस्य इटोऽत्स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि।

५२४. सुट् तिथोः ३।४।१०७॥

लिङस्तकारथकारयोः सुट् स्यात्। यलोपः। आर्धधातुकत्वात्सलोपो

बन्धलोपे 'थासः से' इति 'से' आदेशे 'सवाभ्यां वामौ' इति सकारात्परस्य वादेशे 'एधस्व' इति।

एधै—एध्धातोर्लोटि तत्स्थाने इटि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति इट इकारस्य एत्वे 'एत ऐ' इति एकारस्य ऐत्वे 'आडुत्तमस्य पिच्च' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'एधै' इति।

---

५२०. लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष का जो एकार उसे ऐकार होता है।

५२१. आत्मनेपद में लिङ् से सीयुट् का आगम होता है।

५२२. लिङ् सम्बन्धी जो 'झ' उसके स्थान में 'रन्' होता है।

५२३. लिङादेश जो इट् उसे अत् आदेश हो।

५२४. लिङ् लकार सम्बन्धी जो तकार, थकार उससे 'सुट्' का आगम होता है।

न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ।

५२५. आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिढ्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । कमु कान्तौ ।

५२६. कमेर्णिङ् ।३।१।३०॥

कमेर्णिङ् स्यात्स्वार्थे । ङित्त्वात्तङ् । कामयते ।

५२७. अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६।४।५५॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् । कामयाञ्चक्रे । आयादय इति णिङ् वा । चकमे । चकमाते । चकमिरे । चकमिषे । चकमाथे । चकमिध्वे । चकमे । चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता–

ऐधिष्ट—एध् धातोर्लुङि तत्स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते 'आडजादीनाम्' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ मध्ये च्लौ तस्य सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि 'आदेशप्रत्यययोः' इति इचि गते षत्वे ष्टुत्वे च कृते 'ऐधिष्ट' इति ।

ऐधिढ्वम्—एध् धातोर्लुङि तस्य 'तिप्तस्झि०' इति ध्वमि 'च्लि लुङि' इति च्लौ, 'च्लेः सिच्' इति सिचि अनुबन्धलोपे, 'आडजादीनाम्' इति आटि, 'आटश्च' इति वृद्धौ 'आर्धधातुक०' इतीटि, 'धि च' इति सस्य लोपे, 'इणः षीध्वम्' इति इति धस्य ढकारे 'ऐधिढ्वम्' इति ।

---

५२५. अकारभिन्न वर्ण से परे जो 'झ' उसके स्थान में 'अत्' आदेश होता है ।

५२६. कम् धातु से णिङ् प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

५२७. आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु आदि प्रत्यय परे रहते 'णि' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है ।

कमिता। कामयितासे। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयिताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट।

५२८. विभाषेटः ८।३।७९॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः स्यात्। कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

५२९. णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ३।१।४८॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभिश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे। 'अ कामि अत' इति स्थिते—

५३०. णेरनिटि ६।४।५१॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

५३१. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्।

५३२ चङि ६।१।११॥

चङि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य।

५३३ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्याण्णा-

---

५२८. इण् से परे इट् उससे परे षीध्वं या लुङ् लिट् सम्बन्धी जो धकार उसको विकल्प से ढकार होता है।

५२९. ण्यन्त से तथा श्रि द्रु, स्रु धातुओं से पर में 'च्लि' को 'चङ्' आदेश होता है कर्त्ता अर्थ को बतलाने वाला लुङ् धातु पर में हो तब।

५३०. अनिट आर्धधातुक यदि पर में हो तो 'णि' का लोप होता है।

५३१. चङ्परक णि यदि पर में हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है।

५३२. चङ् पर में रहे तो अभ्यासभिन्न जो धातु का अवयव प्रथम एकाच उसको द्वित्व होता है और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

५३३. 'चङ्' परक जो 'णि' तत्परक जो अङ्ग तदवयव जो लघुपरक अभ्यास उस को सन्वद्भाव होता है।

वग्लोपेऽसति ।

५३४. सन्यतः ७।४।७९॥

अभ्यासस्याऽत इत् स्यात् सनि ।

५३५. दीर्घो लघोः ७।४।९४॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये । अचीकमत । णिङभावपक्षे—

(वा०)—कमेश्च्लेश्चङ्वाच्यः । अचकमत । अकामयिष्यत-अकमिष्यत । अय गतौ । अयते ।

५३६. उपसर्गस्यायतौ ८।२।१९॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् । प्लायते । पलायते ।

५३७ दयायासश्च ३।१।३७॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट । विभाषेटः । अयिषीढ्वम् ।

अचीकमत—कम् धातोः 'कमेर्णिङ्' इति णिङि अनुबन्धलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'कामि' इति भूते 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुत्वाल्लुङि तत्स्थाने तादेशे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे 'णेरणिटि' इति णिलोपे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इति प्रत्ययलक्षणेन णेश्चङ्परत्वादुपधाया ह्रस्वत्वे 'चङि' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायाम् 'हलादिः शेषः' इत्यभ्याससम्बन्धिनो मस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासकवर्गस्य चुत्वे 'अचकमत' इति भूते 'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इत्यभ्यासस्य इत्वे 'दीर्घो लघोः' इति दीर्घे 'अचीकमत' इति ।

---

५३४. अभ्यास के 'अकार' को 'इकार' होता है सन् पर में हो तब ।

५३५. सन्वद्भावविषयक लघु अभ्यास को भी दीर्घ होता है ।

वा०—कम् धातु के बाद च्लि को चङ् आदेश होता है ।

५३६. ऐसा उपसर्ग जिसके पर में 'अय्' धातु हो तो उपसर्ग के रेफ को लकार होता है ।

५३७. दय्, अय्, आस् धातुओं से आम् होता है लिट् परे रहते ।

अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम्–आयिध्वम् । आयिष्यत । द्युत दीप्तौ । द्योतते ।

५३८. द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७।

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । दिद्युते ।

५३९. द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । पुषादीत्यङ् । अद्युतत्—अद्योतिष्यत । एवम् श्विता वर्णे । ञिमिदा स्नेहने । ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः । मोहनयोरित्येके । ञिक्ष्विदा चेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च । घुट परिवर्तने । शुभ दीप्तौ । क्षुभ सञ्चलने । णभ तुभ हिंसायाम् । स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने । ध्वंसु गतौ च । स्रम्भु विश्वासे । वृतु वर्त्तने । वर्तते । ववृते । वर्तिता ।

५४०. वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्मैपदं वा स्यात्स्ये सनि च ।

५४१. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९॥

वृतुवृधुशृधुस्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् तङानयोरभावे । वर्त्स्यति–वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत । वर्तिषीष्ट । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्-अवर्तिष्यत । दद दाने । ददते ।

वर्त्स्यति—वृत् धातोर्लृटि 'वृद्भ्यः स्यसनोः' इति विभाषया परस्मैपदे तिपि अनुबन्धलोपे 'स्यतासी लृलुटोः' इति स्यप्रत्यये, 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि प्राप्ते 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' इति निषेधे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'उरदि'ति रपरे कृते वर्त्स्यति । आत्मनेपदप्रयोगे इडागमे 'वर्तिष्यते' इति ।

---

५३८. द्युत् एवं स्वप् धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण हो ।

५३९. लुङ् को परस्मैपद विकल्प से होता है द्युतादि पूर्व में हो तब ।

५४०. स्य या सन् प्रत्यय पर में रहे तब वृत् आदि (वृत् वृध्, शृध्, स्यन्द् आदि) से परस्मैपद विकल्प से होता है ।

५४१. तङ् और आन् को छोड़ बाकी स्थलों में वृत् आदि पाँचों धातुओं के पर में जो सकारादि आर्धधातुक उससे इट् का आगम नहीं होता है ।

५४२. न शसददवादिगुणानाम् ६।४।१२६॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितश्च योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यास-लोपौ न स्तः। ददद‍े। ददद‍ाते। ददद‍िरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत। ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट अददिष्यत। त्रपूष् लज्जायाम्। त्रपते।

५४३. तृफलभजत्रपश्च ६।४।१२२॥

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिशीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट, अत्रप्त। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत।

॥ इत्यात्मनेपदिनः ॥

अथोभयपदिनः

श्रिञ् सेवायाम्। श्रयति—श्रयते। शिश्राय—शिश्रिये। श्रयिता। श्रयिष्यति—श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत्—अश्रयत। श्रयेत्—श्रयेत। श्रीयात्। श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्। अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत।

भृञ् भरणे। भरति, भरते। बभार। बभ्रतुः। बभ्रुः। बभर्थ। बभृव। बभृम। बभ्रे। बभृषे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति-भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत।

अशिश्रयत्—श्रिधातोर्लुङि तिपि 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङि' इति श्लेश्चङि, अनुबन्धलोपे 'चङि' इति द्वित्वे अभ्याससम्बन्धिनो रेफस्य लोपे 'हलादिः शेषः' इति 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' इति इयङि अनुबन्धलोपे 'इतश्च' इति तिप इकारलोपे 'अशिश्रियत्' इति।

---

५४२. गुण शब्द से किया गया जो अकार तथा शस्, दद् एवं वकारादि धातुओं को एत्व तथा अभ्यासलोप कार्य नहीं होता है।

५४३. तृ, फल्, भज्, त्रप् इन धातुओं के अकार को एत्व एवं अभ्यास का लोप होता है कित् लिट् एवं इट् सहित थल् परे हो तब।

आत्मनेपाद समाप्त हुआ ॥

५४४. रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७।४।२८॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङादेशः स्यात्। रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न। भ्रियात्।

५४५. उश्च १।२।१२॥

ऋवर्णात्परौ झलादौ लिङसिचौ कितौ स्तस्तङि। भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। भृषीरन्। अभार्षीत्। अभार्ष्टाम्। अभार्षुः। अभार्षीः। अभार्ष्टम्। अभार्ष्ट। अभार्षम्। अभार्ष्व। अभार्ष्म।

५४६. ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७॥

सिचो लोपः स्याज्झलि। अभृत। अभृषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। हृञ् हरणे। हरति, हरते। जहार, जह्र। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जह्रिषे। हर्तासि। हर्तासे। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु। हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्। हृषीष्ट। हृषीयास्ताम्। अहार्षीत्। अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत।

धृञ् धारणे। धरति, धरते। णीञ् प्रापणे। नयति, नयते। डुपचष् पाके। पचति, पचते, पपाच। पेचिथ, पपक्थ। पक्तासि, पक्तासे।

भज् सेवायाम्। भजति, भजते। बभाज। भेजे। भक्तासि भक्तासे। भक्ष्यति, भक्ष्यते। अभाक्षीत्, अभक्त। अभक्षाताम्। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु। यजति-यजते।

५४७. लिटयभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७॥

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि। इयाज।

इयाज—'यज्' धातोर्लिटि तिपि णलि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे

---

५४४. ऋकार को रिङ् आदेश होता है शकार, यक् एवं यकारादि आर्धधातुक पर में हो तब।

५४५. आत्मनेपद में झलादि जो लिङ् और सिच् ये कित् संज्ञक होते हैं।

५४६. ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उसका लोप होता है झल् पर में रहे तब।

५४७. यदि लिट् लकार पर में रहे तब वच्यादि और ग्रह्यादि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

५४८. वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति। ईजतुः। ईजुः। इयजिथ, इयष्ठ। ईजे। यष्टा।

५४९. षढोः कः सि ८।२।४१॥

षस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे। यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट। वह प्रापणे। वहति, वहते। उवाह। ऊहतुः। ऊहुः। उवहिथ।

५५०. झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः।

५५१. ढो ढे लोपः ८।३।१३॥

ढस्य लोपः स्याड्ढे परे।

अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासयकारस्य लोपे 'लिटिचभ्यासस्योभयेषाम्' इति अभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणेन इकारे जाते 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'इयाज' इति।

ईजतुः—यज्धातोर्लिटि तसि तसोऽतुसादेशे सति द्वित्वे प्राप्ते 'सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत्' इति न्यायात् द्वित्वात् प्राक् 'असंयोगाल्लिट् कित्' इत्युसः कित्वेन 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति यजो यकारस्य सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासजकारस्य लोपे सवर्णदीर्घे लकारस्य रुत्वे विसर्गे 'इजतुः' इति।

---

५४८. वच् स्वप् और यजादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् पर में हो तब।

५४९. यदि सकार पर में रहे तो ष और ढ को क होता है।

५५०. झष् के बाद यदि तकार, थकार हो तो उसको धकार होता है, धा धातु को छोड़कर।

५५१. ढकार परे रहते ढकार का लोप होता है।

५५२. सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२॥

अनयोरवस्य ओह्स्याड्ढ लोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम् अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

॥ इति तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम् ॥

उवोढ—वह् धातोर्लिटि सिपो थलि अनुबन्धलोपे 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति इड्भावे प्राप्तेऽपि क्रादिनियमान्नित्ये प्राप्ते 'उपदेशेऽत्वतः' इति तन्निषेधे थलः पित्वात् 'असंयोगाल्लिट् कित्' इत्यस्याप्राप्ततया कित्त्वाऽभावेन 'वचिस्वपी'ति सम्प्रसारणाऽभावे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' इति अभ्यासवकारस्य सम्प्रसारणे 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपे 'हलादिः शेषः' इति हकारस्य लोपे 'होढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति थस्य धत्वे 'ष्टुना ष्टुः' इति धस्य ढत्वे 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारस्य लोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति दीर्घे प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इत्यकारस्य ओत्वे 'उवोढ' इति।

अवोढ—वह धातोरात्मनेपदपक्षे लुङि तत्स्थाने ते अडागमे च्लौ सिचि सिचि इति गते 'हो ढः' इति ढत्वे 'झलो झलि' इति सिचः सस्य लोपे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तस्य धत्वे ष्टुत्वे 'ढो ढे लोपः' इति ढलोपे 'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति अकारस्यौत्वे 'अवोढ' इति सिद्धं भवति।

इति 'ललिता' टीकायाम् तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम् ॥

---

५५२. सह तथा वह धातु के अकार को ओकार होता है यदि ढकार का लोप हो तब।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में भ्वादिप्रकरण समाप्त हुआ।

●

अथ तिङन्ते अदादिप्रकरणम्

अद भक्षणे ।

५५३. अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२॥

एभ्यः परस्य शपो लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः ।

५५४. लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४०॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि । जघास । उपधालोपः ।

५५५. शासिवसिघसीनां च ८।३।६०॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम् । जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः ।

जघास—अद्धातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे 'लिट्यन्यतरस्याम्' इति अदो 'घस्लृ' आदेशे अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्यास-संज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति अभ्याससकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति घस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'अत उपधायाः' इति धकाराकारस्य वृद्धौ 'जघास' इति । घस्लादेशाऽभावपक्षे 'आद' इति ।

आदतुः—घस्लादेशाऽभानपक्षे अद्धातोर्लिटि तसि अतुसि द्वित्वे अभ्यास-संज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति दलोपे 'अत आदेः' इत्यभ्यासाऽकारस्य दीर्घे 'अत उपधायाः' इति उपधाऽकारस्य वृद्धौ सवर्णदीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'आदतुः' इति ।

---

५५३. अदादिगण में पठित धातुओं के 'शप्' का लोप होता है ।

५५४. अद् को लिट् लकार में घस्लृ विकल्प से होता है ।

५५५. इण् (इ) कवर्ग से परे शास् वस् एवं घस् सम्बन्धी सकार को षकार होता है ।

५५६. इडत्यर्त्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६॥

अद्, ऋ, व्येञ् एभ्यस्थलोनित्यमिट् स्यात्। आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु, अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु।

५५७. हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि-अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम।

५५८. अदः सर्वेषाम् ७।३।१००॥

अदः परस्याऽपृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात्सर्वमतेन। आदत्। आत्ताम्। आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त। आदम्। आद्व। आद्म। अद्यात्। अद्याताम्। अद्युः। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः।

५५९. लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च। लृदित्त्वादङ्। अघसत्। आत्स्यत्। हन हिंसागत्योः। हन्ति।

५६०. अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७॥

आदत्—अद्धातोर्लङि तिपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'आडजादीनाम्' इत्यङ्गस्याऽऽडागमे अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'अपृक्त एकाल्प्रत्ययः' इति तिपस्तकारस्याऽपृक्तसंज्ञायाम् 'अदः सर्वेषाम्' इति अपृक्तसंज्ञकस्य तिपस्तकारस्याडागमे अनुबन्धलोपे 'आदत्' इति।

---

५५६. अद् ऋ, व्येञ् धातुओं से पर में जो थल् उसे नित्य इट् का आगम होता है।

५५७. हु तथा झलन्त धातुओं के बाद 'हि' के स्थान में धि आदेश होता है।

५५८. अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होता है सभी आचार्यों से मत से।

५५९. लुङ् एवं सन् पर में हो तो 'अद्' को घस्लृ आदेश होता है।

५६०. अनुनासिकान्तानुदात्तोपदेश एवं वन्, तन् आदि धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है झलादि कित् ङित् पर में हो तब।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे । यमि-रमि-नमि-गमि-हनि मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनुः क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः । हतः । घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । जघान । जघ्नतुः ! जघ्नुः ।

५६१. अभ्यासाच्च ७।३।५५॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिथ-जघन्थ । जघ्नथुः । जघ्न । जघान–जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु— हतात् । हताम् । घ्नन्तु ।

५६२. हन्तेर्जः ६।४।३६॥

हन्तेर्जादेशः स्यात् घौ परे ।

५६३. असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२॥

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धं

जघ्नतुः—हन्धातोर्लिटस्तसि तसोऽतुसि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासनकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासहकारस्य चुत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जकारे, 'असंयोगाल्लिट् कित्' इति अतुसः कित्त्वात् 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि' इति हन् उपधाकारस्य लोपे 'होहन्तेर्ञ्णिन्नेषु' इति हनो हस्य कुत्वेन घत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'जघ्नतुः इति ।

जघनिथ—हन् धातोर्लिटः सिपि सिपः स्थाने 'परस्मैपदानाम्०'—इति थलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासनकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वेन हस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'लिट् च' इति थल आर्धधातुकत्वेन भारद्वाजनियमादिड् विकल्पे 'अभ्यासाच्च' इति हस्य कुत्वेन घत्वे 'जघनिथ' इति । इडभावे 'जघन्थ' इति ।

---

५६१. अभ्यास से परे हन् धातु के हकार को कुत्व होता है ।

५६२. हि प्रत्यय पर में रहते हन् धातु को 'ज' आदेश होता है ।

५६३. इस सूत्र से लेकर छठे अध्याय की समाप्ति तक के सभी सूत्र 'आभीय' हैं ।

स्यात्। इति जस्याऽसिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि। हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। अहन्। अहताम्। अघ्नन्। अहन्। अहतम्। अहत। अहनम्। अहन्व। अहन्म। हन्यात्। हन्याताम्। हन्युः।

५६४. आर्धधातुके २।४।३५॥

इत्यधिकृत्य।

५६५. हनो वध लिङि २।४।४२॥

५६६. लुङि च २।४।४३॥

हनो वधादेशः स्याल्लिङि लुङि च। वधादेशोऽदन्तः। आर्धधातुके इति विषयसप्तमी। तेन आर्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वादतो लोपः। वध्यात्। वध्यास्ताम्। आदेशस्याऽनेकाच्त्वादेकाच इतीण्निषेधाऽभावादिट्। अतो हलादेरिति वृद्धौ प्राप्तायाम्—

५६७. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ १।१।५७॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इत्यल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेनोपधात्वाऽभावान्न वृद्धिः। अवधीत्। अहनिष्यत्। यु मिश्रणाऽमिश्रणयोः।

जहि—हन् धातोर्लोटि तत्स्थाने सिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपः सस्य हौ 'हन्तेर्जः' इति हनः स्थाने जादेशे 'जहि' इति। अत्र जादेशे कृते 'अतो हेः' इति अतः परस्य हेर्लुक् तु न भवति, 'असिद्धवदत्राभात्' इत्यनेन जादेशस्यासिद्धत्वात्।

अवधीत्—हन्धातोर्लुङि 'लुङि च' इति हनो वधादेशे लुङः स्थाने तिपि 'लुङ्लुङ्०' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'च्लेः सिच्' इति सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि 'अतो लोपः' इति वधाकारस्य लोपे

---

५६४. यह अधिकारविधायक सूत्र है। यानि ४।२।४२ सूत्र से आगे तक इसका अधिकार है।

५६५-५६६. हन् धातु को वध आदेश होता है लिङ् या लुङ् लकार में।

५६७. परनिमित्त जो अजादेश स्थानी के समान होता है। यदि स्थानिभूत अल् से पूर्व दृष्ट से कोई विधिकार्य करना हो तब।

५६८. उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यौति। युतः। युवन्ति। यौषि। युथः। युथ। यौमि। युवः। युमः। युवाव। यविता। यविष्यति यौतु—युतात्। अयौत्। अयुताम्। अयुवन्। युयात्। इह उतो वृद्धिर्न, भाष्ये पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात्। युयाताम्। युयुः। यूयात्। यूयास्ताम्। यूयासुः। अयावीत्। अयविष्यत्। या प्रापणे—याति। यातः। यान्ति ययौ। याता। यास्यति। यातु। अयात्। अयाताम्।

५६९. लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात्। अयुः-अयात्। यायात्। यायाताम्। ययुः। यायात्। यायास्ताम्। यायासुः। अयासीत्। अयास्यत्। वा गतिगन्धनयोः। भा दीप्तौ। ष्णा शौचे। श्रा पाके। द्रा कुत्सायां गतौ। प्सा भक्षणे। रा दाने। ला आदाने। दाप् लवने। पा रक्षणे। ख्या प्रकथने। अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः। विद् ज्ञाने।

५७०. विदो लटो वा ३।४।८३॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। पक्षे वेत्ति। वित्तः। विदन्ति।

५७१. उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।३८॥

'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः' इति सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे 'अवधीत्' इति।

---

५६८. लुक् विषयक उकार को वृद्धि होती है हलादि पित् सार्वधातुक पर में हो तब। अभ्यस्त को छोड़कर।

५६९. आदन्त धातु से पर में जो लङ् सम्बन्धी झि उसे जुस् होता है। विकल्प से।

५७०. विद् धातु के बाद लट् सम्बन्धी परस्मैपदों को णल् का आदेश विकल्प से होता है।

५७१. उष् विद्, जागृ धातुओं से आम् होता है विकल्प से लिट् पर में रहे तब।

एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः । विदाञ्चकार—विवेद । वेदिता । वेदिष्यति ।

५७२. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१॥

वेत्तेर्लोटि आम्, गुणाऽभावो, लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते ।

५७३. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उप्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । गुणः । विदाङ्करोतु ।

५७४. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरु-

---

विदाञ्चकार—विद्धातोर्लिटि 'उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्' इत्यामि 'आमः' इति लिटो लुकि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' इति लिटपरककृञोऽनुप्रयोगे लिटः स्थाने तिपि तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायाम् 'उरत्' इत्यभ्यासऋवर्णस्य अत्वे रपरत्वे 'हलादिः शेषः' इति अभ्यासरेफस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासककारस्य चुत्वेन चकारे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे आमो मकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे च कृते 'विदाञ्चकार' इति । आमोऽभावपक्षे 'विवेद' इति ।

विदाङ्करोतु—विद्धातोर्लोटि 'विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्' इति आमि गुणाभावे लोटो लुकि लोट्परक कृञोऽनुप्रयोगे च निपातिते लोटः स्थाने तिपि शपं प्रबाध्य 'तनादिकृञ्भ्य उः' इत्युत्वे अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे तिपो निमित्तमादाय पुनः उकारस्य गुणे 'एरुः' इति तिप इकारस्य उत्वे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'विदाङ्करोतु' इति । तातङि पक्षे विदाङ्कुरुताम्' इति ।

---

५७२. यदि लोट पर में रहे तब विद् धातु से 'आम्' होता है और गुण का अभाव, लोट् का लुक, तथा विकल्प से लोट् परे रहते कृ धातु का अनुप्रयोग निपातन से होता है ।

५७३. तनादि और कृञ् धातु से परे 'उ' प्रत्यय होता है ।

५७४. उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार होता है कित्, ङित् सार्वधातुक पर में हो तो ।

तात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः ।

५७५. दश्च ८।२।७५॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा स्यात् । अवेः-अवेत् । विद्यात् । विद्याताम् । विद्युः । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् ।

अस् भुवि—अस्ति ।

५७६. श्नसोरल्लोपः ६।४।१११।

श्नस्याऽस्तेश्चाऽतो लोपः स्यात्सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ।

५७७. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८।३।८७॥

उपसर्गेण प्रादुसश्चाऽस्तेः सस्य षः स्याद्यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम् ? अभिस्तः ।

विदाङ्कुर्वन्तु—विद्धातोर्लोटि 'विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्' इत्यामि गुणाभावे लोटो लुकि लोडन्तकृञोऽनुप्रयोगे च निपातिते लोटः स्थाने झौ 'तनादि-कृञ्भ्य उः' इत्युप्रत्यये 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरे च कृते 'झोऽन्तः' इति झस्याऽन्तादेशे 'अतः उत्सार्वधातुके' इति उत्वे मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'एरुः' इति उत्वे 'इको यणचि' इति यणि 'विदाङ्कुर्वन्तु' इति । आमोऽभावे 'विदन्तु' इति ।

निष्यात्—'नि' उपसर्गपूर्वकात् 'अस्' धातोर्लिङि तिपि यासुटि अनुबन्ध-लोपे यासुटः कित्त्वेन तस्मिन् परे 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे 'उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्ति-र्यच्परः' इति धातोः सस्य षत्वें 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'निष्यात्' इति ।

---

५७५. पदान्त दकार को 'रु' होता है सिप् परे रहते विकल्प से ।

५७६. सार्वधातुक कित् ङित् यदि पर में रहे तो श्न एवं अस् के अकार का लोप होता है ।

५७७. उपसर्ग इण् से परे और प्रादुस् से परे अस् धातु के सकार को षकार होता है यकार या अच् पर में हो तब ।

५७८. अस्तेर्भूः २।४।५२॥

अस्तेर्भू इत्यादेशः स्यात्। आर्धधातुके। बभूव। भविता। भविष्यति। अस्तु-स्तात्। स्ताम्। सन्तु।

५७९. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९॥

घोरस्तेश्च एत्व स्याद्धौ परे अभ्यासलोपश्च। एत्वस्याऽसिद्धत्वाद्धेर्धिः। श्नसोरित्यल्लोपः। तातङ्पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात्। एधि-स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम। आसीत्। आस्ताम्। आसन्। स्यात्। स्याताम्। स्युः। भूयात्। अभूत्। अभविष्यत्।

इण् गतौ। एति। इतः

५८०. इणो यण् ६।४।८१॥

इणो यण् स्यात् अजादौ प्रत्यये परे। यन्ति।

५८१. अभ्यासस्याऽसवर्णे ६।४।७८॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि। इयाय।

५८२. दीर्घ इणः किति ७।४।६९॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात्किति लिटि। ईयतुः। ईयुः इययिथ—

एधि—अस् धातोर्लोटि सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपः स्थाने हेरादेशे 'अस् हि' इति जाते 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति सस्य एत्वे प्राप्ते तस्याऽसिद्धत्वात् 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धौ 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे 'एधि' इति।

ईयतुः—इण्धातोर्लिटि तसि तसोऽतुसि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'इणो यणः' इति यणि 'दीर्घ इणः किति' इत्यभ्यासस्य दीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे 'ईयतुः' इति।

---

५७८. आर्धधातुक पर में रहे तो अस् धातु को 'भू' आदेश होता है।

५७९. यदि हि पर में हो तो घुसंज्ञक धातु एवं अस् धातु को एत्व होता है, और अभ्यास का लोप भी।

५८०. इण् धातु को यण् होता है अजादि प्रत्यय पर में हो तब।

५८१. अभ्यास के इवर्ण-उवर्ण को इयङ्-उवङ् आदेश होता है असवर्ण अच् पर में हो तब।

५८२. कित् लिट् परे रहते 'इण्' धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है।

इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ईयात् ।

५८३. एतेर्लिङि ७।४।२४॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् । अभीयात् । अणः किम् ? समेयात् ।

५८४. इणो गा लुङि २।४।४५॥

इणो गादेशः स्याल्लुङि । गातिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । ऐष्यत् । शीङ् स्वप्ने ।

५८५. शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१॥

शीङो गुणः स्यात्सार्वधातुके । क्ङिति चेत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ।

५८६ शीङो रुट् ७।१।६॥

शीङः परस्य झादेशस्याऽतो रुडागमः स्यात् । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिश्यिरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत ।

अगात्—इण्धातोर्लुङि 'इणो गा लुङि' इति इणो गादेशे लुङः स्थाने तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ तस्य सिचि 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' इति सिचो लोपे 'इतश्च' इति तिप इकारलोपे 'अगात्' इति ।

अशयिष्ट—शीङ्धातोर्लुङः प्रथमैकवचने आत्मनेपदे ते 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अयादेशे सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अशयिष्ट' इति ।

---

५८३. आर्धधातुक कित् लिङ् पर में हो तो उपसर्ग से परे जो 'इण्' सम्बन्धी अण् उसको ह्रस्व होता है ।

५८४. 'इण्' धातु को गा आदेश होता है लुङ् लकार में ।

५८५. सार्वधातुक परे रहने पर 'शीङ्' धातु को गुण होता है ।

५८६. शीङ् धातु से पर में झ के स्थान में जो अत् आदेश हुआ है उसको रुट् का आगम होता है ।

ईङ् अध्ययने। इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः। अधीते। अधीयाते। अधीयते।

५८७. गाङ् लिटि २।४।४९॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि। अधिजगे। अधिजगाते। अधिजगिरे। अध्येता। अध्येष्यते। अधीताम्। अधीयाताम्। अधीयताम्। अधीष्व। अधीयाथाम्। अधीध्वम्। अध्ययै। अध्ययावहै। अध्ययामहै। अध्यैत। अध्यैयाताम्। अध्यैयत। अध्यैथाः। अध्यैयाथाम्।अध्यैध्वम्। अध्यैयि। अध्यैवहि। अध्यैमहि। अधीयीत। अधीयीताम्। अधीयीरन्। अध्येषीष्ट।

५८८. विभाषा लुङ्लृङोः २।४।५०॥

इङो गाङ् वा स्यात् ?

५८९. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १।२।१॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः।

५९०. घुमास्थापाजहातिसां हलि ६।४।६६॥

अधिजगे—अधिपूर्वक 'इङ्' धातोर्लिटि 'गाङ् लिटि' इति इङो गाङादेशे अनुबन्धलोपे लिटः स्थाने ते 'लिटस्तझयोरेशिरेच' इति तस्य एशि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् ह्रस्वे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'आतो लोप इटि च' इत्याल्लोपे 'अधिजगे' इति।

अध्ययै—इङ्धातोर्लोटि उत्तमपुरुषैकवचने इटि शपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति टेरेत्वे 'एत ऐ' इति एकारस्य ऐकारे 'आडुत्तमस्य पिच्च' इत्याटि 'आटश्च' इति वृद्धौ पित्वात् पूर्वस्य इकारस्य गुणे अयादेशे इकारस्य यणि 'अध्ययै' इति।

---

५८७. इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है लिट् लकार में।

५८८. इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है, विकल्प से लुङ् वा लृङ् लकार पर में हो तब।

५८९. गाङ् आदेश और कुटादि धातु के वाद ञित् णित् से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होता है।

५९०. घुसंज्ञक जो धातु मा, स्था, गा, पा, हा और सां (षोऽन्तकर्मणि) धातुओं के आकार को ईकार होता है हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक परे हो तब।

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके। अध्यगीष्ट-अध्यैष्ट अध्यगीष्यत–अध्यैष्यत।

दुह प्रपूरणे। दोग्धि। दुग्धः। दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे। दुह्महे। दुदोह–दुदुहे। दोग्धासि— दोग्धासे। धोक्ष्यति–धोक्ष्यते। दोग्धु—दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि- दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्–दुहीत।

५९१. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥

इक्समोपाद्धलः परो झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट।

अध्यगीष्ट—अधिपूर्वकादिङ्धातोर्लुङि तप्रत्यये 'विभाषालुङ्लृङोः' इति इङो गाङादेशे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्' इति सिचो ङित्वे 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' इति आकारस्य इत्वे यणि सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'अध्यगीष्ट' इति। गाङोऽभावे आटि वृद्धौ पूर्वोक्तकार्ये 'अध्यैष्ट' इति।

दुग्धः—दुह् धातोर्लटि तत्स्थाने तसि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' इति शपो लुकि 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तस्य धत्वे 'झलां जश् झशि' इति घस्य जश्त्वेन गत्वे तासः अपित्वेन ङित्त्वात् 'क्ङिति च' ति गुणनिषेधे सस्य रुत्वविसर्गे 'दुग्धः' इति।

अधोक्—दुह धातोर्लङिस्तिपि शपि शपो लुकि अङ्गस्याडागमे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति तलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' इति दस्य धत्वे घस्य जश्त्वे गस्य चर्त्वे 'अधोक्' इति।

धुक्षीष्ट—दुह् धातोराशीर्लिङि तत्स्थाने ते 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति कित्त्वात् गुणाभावे 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति

---

५९१. इक् समीप हल् से पर में झलादि लिङ् और आत्मनेपदपरक झलादि सिच्, कित्सञ्ज्ञक होते हैं।

५९२. शल इगुपधादनिटः क्सः ३।१।४५॥

इगुपधो यः शलन्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात् । अधुक्षत् ।

५९३. लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि । अदुग्ध—अधुक्षत ।

५९४. क्सस्याऽचि ७।३।७२॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात् । अधुक्षाताम् । अधुक्षन्त । अदुग्धाः-अधुक्षथाः । अधुक्षाथाम् । अधुग्ध्वम्—अधुक्षध्वम् । अधुक्षि । अदुह्वहि-अधुक्षावहि । अदुह्महि-अधुक्षामहि । अधोक्ष्यत्-अधोक्ष्यत । एवं दिह उपचये । लिह आस्वादने । लेढि । लीढः । लिहन्ति लेक्षि । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिलेह-लिलिहे । लेढासि-लेढासे । लेक्ष्यति-लेक्ष्यते । लेढु-लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेट्-अलेड् । अलिक्षत् । अलीढ-अलिक्षत । अलेक्ष्यत्-अलेक्ष्यत । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ।

५९५. ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः ब्रुवश्चाऽऽहा-

---

यलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशो–' इति भष्भावेन दस्य धत्वे घस्य जश्त्वे चर्त्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'सुट् तिथोः' इति सुटि अनुबन्धलोपे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते 'धुक्षीष्ट' इति ।

अधुक्षत्—दुह धातोर्लुङि तिपि अडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिजादेशं प्रबाध्य 'शल इगुपधादनिटक्सः' इति क्सादेशे अनुबन्धलोपे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घत्वे 'एकाचो बशो०' इति दस्य धत्वे, घस्य जश्त्वे चर्त्वे सस्य षत्वे 'अधुक्षत्' इति ।

---

५९२. इक् हो उपधा में जिसके ऐसा शलन्त धातु, उससे पर में अनिट् च्लि को 'क्स्' आदेश होता है ।

५९३. दुह, दिह लिह गुह धातुओं के क्स का लोप होता है विकल्प से दन्त्य स्थानीय आत्मनेपद (तङ्) पर में हो तब ।

५९४. अजादि आत्मनेपद परे 'क्स' का लोप होता है ।

५९५. ब्रूञ् धातु के बाद लट् लकार के स्थान में जो 'तिप्-तस्-झि, सिप्-

देशः। आह। आहतुः। आहुः।

५९६. आहस्थः ८।२।३५॥

आहस्थकारादेशः स्यात् झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

५९७ ब्रुव इट् ७।३।९३॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते।

५९८. ब्रुवो वचिः २।४।५३॥

आर्धधातुके। उवाच। ऊचतुः। ऊचुः। उवचिथ-उवक्थ। ऊचे। वक्ता। वक्तासि—वक्तासे। वक्ष्यति-वक्ष्यते। ब्रवीतु—ब्रूतात्। ब्रूताम्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि-ब्रवाणि। ब्रूताम्। ब्रवै। अब्रवीत्। अब्रूत्। ब्रूयात्। ब्रुवीत। उच्यात्। वक्षीष्ट।

५९९. अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२॥

एभ्यच्च्लेरङ् स्यात्।

६००. वच उम् ७।४।२०॥

वच उमागमः स्यात् अङि परे। अवोचत्—अवोचत। अवक्ष्यत्—

आह—ब्रूधातोर्लटि तिपि शपि शपो लुकि 'ब्रुवः पञ्चानामादितः आहो ब्रुवः' इति तिपो णलि ब्रुवः आहादेशे च कृते अनुबन्धलोपे 'आह' इति।

अवोचत्—ब्रुवो लुङि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्' इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे 'ब्रुवो वचिः' इति वचा-

---

थस्' हैं इन्हें क्रमशः णल्-अतुस्' आदि पाँच आदेश विकल्प से होते हैं तथा 'ब्रु' के जगह पर आह आदेश भी होता है।

५९६. 'आह' के इकार को थकार होता है झल पर में हो तब।

५९७. ब्रूञ् धातु के बाद हलादि पित् को ईट् का आगम होता है।

५९८. ब्रूञ् धातु को वच् आदेश होता है आर्धधातुक के विषय में।

५९९. अस्, वच् और ख्या के धातुओं के बाद में च्लि को अङ् आदेश होता है।

६००. वच् को उम् का आगम होता है अङ् प्रत्यय पर में हो तब।

अवक्ष्यत। [ग० सू०] चर्करीतञ्च। चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा, तददादौ बोध्यम्। ऊर्णुञ् आच्छादने।

६०१. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०॥

ऊर्णोतेः वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। ऊर्णौति–ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति।

(वा०)—ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्।

६०२. नन्द्राः संयोगादयः ६।१।३॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नुशब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनवतुः। ऊर्णुनुवुः।

६०३. विभाषोर्णोः १।२।३॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात्। ऊर्णुविथ। ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता-

देशे 'वच उम्' इति उमि अनुबन्धलोपे 'आद्‌गुणः' इति गुणे 'अवोचत्' इति। आत्मनेपदे 'अवोचत' इति।

ऊर्णुनाव—ऊर्णुधातोर्लिटस्तिपि तिपो णलि अनुबन्धलोपे 'ऊर्णु अ' इति स्थिते 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्यामि प्राप्ते 'ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्' इति निषेधे, 'आजादेर्द्वितीयस्य' इति 'णु' शब्दस्य द्वित्वे 'नन्द्राः संयोगादयः' इति रेफस्य द्वित्वाऽभावे णत्वस्याऽसिद्धत्वात् 'नु' शब्दस्य द्वित्वे 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति प्रथमनकारस्य णत्वे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ 'एचोऽयवायावः' इत्यावि 'ऊर्णुनाव' इति।

---

६०१. हलादि पित् सार्वधातुक परे ऊर्णुञ् धातु को वृद्धि विकल्प से होती है।

वा०—उर्णोतेराम्नेति वाच्यम्—ऊर्णुञ् धातु में आम् प्रत्यय का निषेध होता है।

६०२. अच् के बाद संयोगादि न, द, र को द्वित्व नहीं होता हैं।

६०३. ऊर्णुञ् धातु के बाद इडादि प्रत्यय को विकल्प से ङित् होता है।

नोट—चर्करीतञ्च—यह यङ्–लुगन्त की संज्ञा है। इसको अदादि में जानना चाहिए।

ऊर्णविता । ऊर्णुविष्यति—उर्णविष्यति । ऊर्णौतु—ऊर्णोतु । उर्णवाति । ऊर्णवै ।

६०४. गुणोऽपृक्ते ७।३।९१॥

ऊर्णोतिर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्धयपवादः । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । ऊर्णुवीत । ऊर्णूयात् । ऊर्णुविषीष्ट ।

६०५. उर्णोतेर्विभाषा ७।२।६॥

इडादौ सिचि परस्मैपदे परे वा वृद्धिः स्यात् । पक्षे गुणः । और्णविष्टाम् । और्णाविष्ट-और्णुविष्ट । और्णविष्ट । और्णुविष्यत् । और्णविष्यत् । और्णुविष्यत—और्णविष्यत ।

॥ इत्यदादिप्रक्रणम् ॥

और्णुविष्ट—ऊर्णुधातोर्लुङि आत्मनेपदे तप्रत्यये आटि 'आटश्च' इति वृद्धौ च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि अनुबन्धलोपे 'विभाषोर्णोः' इति इटो ङित्त्वाद् गुणाऽभावे उवङि अनुबन्धलोपे सिचः सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'और्णुविष्ट' इति । ङित्त्वाऽभावे गुणे अवादेशे 'और्णविष्ट' इति ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां तिङन्ते अदादिप्रकरणम् ॥

---

६०४. ऊर्णुञ् धातु को गुण होता है अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक पर में हो तो ।

६०५. ऊर्णुञ् धातु को वृद्धि विकल्प से होती है इडादि सिच परस्मैपद पर में हो तब ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में अदादिप्रकरण समाप्त हुआ ।

●

अथ तिङन्ते जुहोत्यादिप्रकरणम्

हु दानादनयोः ।

६०६. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५॥

एभ्यः परस्य शपः श्लुः स्यात् ।

६०७. श्लौ ६।१।१०॥

धातोर्द्वेस्तः । जुहोति । जुहुतः ।

६०८. अदभ्यस्तात् ७।१।४॥

अभ्यस्यात्परस्य झस्याऽत्स्यात् । हुश्नुवोरिति यण् । जुह्वति ।

६०९. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९॥

एभ्यो लिट्याम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यञ्च । जुहवाञ्चकार । जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु-जुहुतात् । जुहुताम् । जुह्वतु । जुहुधि । जुहवानि । अजुहोत् । अजुहताम् ।

जुहोति—'हुदानाऽऽदनयो इत्यस्माद्धातोर्लटस्तिपि शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्यासत्त्वे 'कुहोश्चु.' इति अभ्यासहकारस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे 'जुहोति' इति ।

हु धातु हवन तथा भोजन अर्थ में है ।

६०६. जुहोत्यादिगण में पढ़े गये धातुओं के बाद में जो शप् उसे श्लु (लोप) होता है ।

६०७. श्लु विषयक जो धातु उसे द्वित्व होता है ।

६०८. अभ्यस्तसंज्ञक धातु के बाद जो झ उसके स्थान में अत् आदेश होता है ।

६०९. लिट् लकार में भी, ह्री, भृ, हु धातुओं से विकल्प से आम् होता है तथा आम् यदि पर में हो तो धातु को श्लु की तरह कार्य होता है ।

६१०. जुसि च ७।३।८३॥

इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यादजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। ञिभी भये। बिभेति।

६११. भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५॥

इकारो वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः—बिभीतः। बिभ्यति। बिभयाञ्चकार-बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु। बिभितात्-बिभीतात्। अबिभेत्। बिभीयात्—बिभियात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। ह्री लज्जायाम्। जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार—जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्। पॄ पालनपूरणयोः।

६१२. अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ। पिपर्ति।

६१३. उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२॥

बिभेति—'ञिभी भये' इत्यस्माद् धातोर्लटि तिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' इति शपः श्लुत्वे 'श्लौ' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इत्यभ्यासभकारस्य बत्वे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे 'बिभेति' इति।

जिह्रीयात्—ह्रीधातोर्विधिलिङस्तिपि शपि शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे ह्रस्वत्वे 'हलादिः शेषः' इति रलोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासहस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे यासुटि अनुबन्धलोपे 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपे 'जिह्रीयात्' इति।

---

६१०. इगन्त अङ्ग को गुण होता है अजादि जुस् पर हो तो।

६११. 'भी' धातु को इकार अन्तादेश होता है हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक परे रहते।

६१२. श्लु के विषय में 'ऋ' और 'पॄ' धातु के अभ्यास को इकार अन्तादेश हो।

६१३. अङ्ग का अवयव जो ओष्ठस्थानिक वर्ण यदि पूर्व में हो तो ऐसी स्थिति में ॠकारान्त अङ्ग को उकार अन्तादेश होता है।

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात् ।

६१४. हलि च ८।२।७७॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्याद्धलि । पिपूर्तः पिपुरति। पपार ।

६१५. शृदॄप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२॥

एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतुः ।

६१६. ऋच्छत्यॄताम् ७।४।११॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠतां च गुणः स्याल्लिटि । पपरतुः । पपरुः ।

६१७. वृतो वा ७।२।३८॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेतो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि। परीता-परिता । परीष्यति—परिष्यति । पिपर्तु । अपिपः । अपिपूर्ताम् । अपिपरुः । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् ।

पिपूर्तः—पॄधातोर्लटस्तसि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि शपः श्लौ 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् 'अर्तिपिपर्त्योश्च' इति अभ्यासस्य इकारान्तादेशे रपरत्वे हलादिशेषे 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इति उत्वे रपरत्वे 'हलि च' इति धातोरुपधायाः दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे 'पिपूर्तः' इति ।

पप्रतुः—पॄधातोर्लिटस्तसि तसोऽतुसि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे ऊत्वे रपरत्वे अभ्यास लोपे 'शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा' इति वैकल्पिके ह्रस्वे 'इको यणचि' इति यणि सस्य रुत्वे विसर्गे 'पप्रतुः' इति । ह्रस्वाऽभावपक्षे 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणे रपरे च विहिते 'पपरतुः' इति ।

---

६१४. रेफान्त और वान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होता है हल् पर में हो तो।

६१५. शॄ, दॄ, पॄ धातुओं को विकल्प से ह्रस्व होता हैं लिट् लकार में ।

६१६. तौदादिक जो ऋच्छ और ऋकारान्त धातु उन्हें गुण होता है लिट् लकार में ।

६१७. लिट् लकारेतर लकार में वृङ्, वृञ् तथा ऋदन्त धातु से परे इट् को दीर्घ विकल्प से होता है ।

६१८. सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०॥

अत्रेटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्—अपरिष्यत्। ओहाक्। त्यागे। जहाति।

६१९. जहातेश्च ६।४।११६॥

इत्यस्यात्वाद्वा क्ङिति सार्वधातुके। जहितः।

६२०. ई हल्यघोः ६।४।११३॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घोः। जहीतः।

६२१. श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२॥

अनयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके। जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु। जहितात्-जहीतात्।

६२२. आ च हौ ६।४।११७॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ जहाहि-जहिहि-जहीहि। अजहात्। अजहुः।

जहाहि—ओहाक् त्यागे अस्माद्धातोर्लोटः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सिपः स्थाने 'हि' इत्यादेशे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि, शपः श्लौ

---

६१८. परस्मैपद सम्बन्धी सिच् बाद में मिलने पर ईट् को दीर्घ नहीं होता।

६१९. 'हा' धातु को इकार अन्तादेश विकल्प से होता हैं हलादि कित् ङित् पर में हो तब।

६२०. घुसंज्ञक धातु को छोड़कर श्ना प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार के स्थान पर ईकार होता है हलादि कित् ङित् सार्वधातुक पर में हो तब।

६२१. 'श्ना' निष्ठा एवं अभ्यस्त जो धातु उनके आकार का लोप होता है कित् ङित् सार्वधातुक पर में हो तब।

६२२. हा धातु को आकार और इकार ईकार अन्त आदेश होता है हि पर हो तो।

६२३. लोपो यि ६।४।११८॥

जहातेरालोपः स्याद्यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। एलिङि हेयात्। अहासीत्। अहास्यत्। माङ् माने शब्दे च।

६२४. भृञामित् ७।४।७६॥

भृञ् माङ् ओहाक् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ। मिमीते। मिमाते। मिमते। ममे। माता। मास्यते। मिमीताम्। अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। अमास्त। अमास्यत। ओहाङ् गतौ। जिहीते। जिहाते। जिहते। जहे। हाता। हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त। अहास्यत। डुभृञ् धारणपोषणयोः। बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृते। बिभ्राते। बिभ्रते। बिभराञ्चकार-बभार। बभर्थ। बभृव। बिभराञ्चके। बभ्रे। भर्तासि-भर्तासे। भरिष्यति-भरिष्यते। बिभर्तु। बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः अबिभृताम्। अबिभरुः। अबिभृत। बिभृयात्। बिभ्रीत। भ्रियात्। भृषीष्ट। अभार्षीत्। अभृत। अभरिष्यत्। अभरिष्यत।

'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासस्याचो ह्रस्वे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासहकारस्य चुत्वेन झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'आ च हौ' इति आत्वपक्षे 'जहाहि' इति, इत्वपक्षे 'जहिहि' इति, ईत्वपक्षे 'जहीहि' इति।

मिमीते—'माङ् माने शब्दे च' इति धातोर्लटस्ते टेरेत्वे सार्वधातुसंज्ञायां शपि शपः श्लौ द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये 'भृञामित्' इति अभ्यासस्य इत्वे 'ई हल्यघोः' इति धातोराकारस्य 'इत्वे' 'मिमीते' इति।

भ्रियात्—भृधातोराशीर्लिङि तिपि यासुटि उटि गते 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'रिङ्शयग्लिङ्क्षु' इति ऋकारस्य रिङादेशे अनुबन्धलोपे 'रिङ्' विधानसामर्थ्यात् 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इति दीर्घाऽभावे 'भ्रियात्' इति।

भृषीष्ट—'डुभृञ् धारणपोषणयोः' इति धातोरात्मनेपदे आशीर्लिङस्ते 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि उटि गते 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'सुट् तिथोः' इति

---

६२३. हा धातु के आकार का लोप यकारादि सार्वधातुक परे रहते होता है।

६२४. श्लु प्रत्यय के विषय में जो भृञ्, माङ्, ओहाक् धातुओं के अभ्यास को इकार अन्तादेश होता है।

डुदाञ् दाने । ददाति । दत्तः । ददति । दत्ते । ददाते । ददते । ददौ । ददे । दातासि । दातासे । दास्यति । दास्यते । ददातु ।

६२५. दाधा घ्वदाप् १।१।२०॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञकाः स्युर्दाप्दैपौ विना । घ्वसोरित्ये-त्वम् । देहि । दत्तम् । अददात् अदत्त । दद्यात् ददीत । देयात् । दासीष्ट । अदात् । अदाताम् । अदुः ।

६२६. स्थाघ्वोरिच्च १।४।१७॥

अनयोरिदन्तादेशः स्यात् सिच्चकित्स्यादात्मनेपदे । अदित । अदा-स्यत् । अदास्यत । डुधाञ् धारणपोषणयोः । दधाति ।

६२७ दधस्तथोश्च ८।२।३८॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धातोर्बशो भष् स्यात्तथोः स्ध्वोश्च परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः धत्थ । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे ।

सुटि उटि गते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति इट्निषेधे 'उश्च' इति कित्त्वाद् गुणा-ऽभावे सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे 'भृषीष्ट' इति ।

देहि—दाधातोर्लोट स्थाने सिपि तस्य हौ 'दाधाघ्वदाप्' इति घुसंज्ञायां शपः श्लौ द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे च कृते 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति एत्वेऽभ्यास-लोपे च कृते 'देहि' इति ।

दासीष्ट—दाधातोराशीर्लिङः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि उटि गते 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'सुट्तिथोः' इति तस्य सुटि सुटः सकारस्य 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे ष्टुत्वे 'दासीष्ट' इति ।

---

६२५. दा एवं धा रूप धातुओं की घु-संज्ञा होती है दाप् और दैप् धातु को छोड़कर ।

६२६. स्था धातु और घुसंज्ञक धातु को इकार अन्तादेश होता है तथा सिच् भी कित् संज्ञक हो जाता है ।

६२७. द्विरुक्त झषन्त धातु के बश् को भष् होता है त या थ एवं स या ध्व पर में हो तब ।

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च । धेहि । अदधात् । अधत्त । दध्यात् । अधीत । धेयात् । धासीष्ट । अधात् । अधित । अधास्यत् । अधास्यत । णिजिर् शौच-पोषणयोः ।

(वा०)—इर् इत्संज्ञा वाच्या ।

६२८. णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७।३।७५॥

णिज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेनिक्ते । निनेज । निनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेनेक्तु । नेनिग्ध ।

६२९. नाऽभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७॥

अभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके उदूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात् । नेनिजीत । निज्यात् । निक्षीष्ट ।

धेहि—धाधातोर्लिटि सिपि 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हित्वे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि शपः 'श्लौ' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासाकारस्य ह्रस्वे 'दाधाघ्वदाप्' इति घुत्वे 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' इति एत्वे अभ्यासलोपे च कृते 'धेहि' इति ।

नेनेग्धि—'णिजिर् शौचपोषणयोः' अस्माद्धातोर्लोटि 'इर् इत्संज्ञा वाच्या' इति इर् इत्संज्ञायां लोपे च विहिते 'णो नः' इति धातोर्णस्य नत्वे लोटः स्थाने सिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि शपः 'श्लौ' द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् 'शेषे लोपः' इत्यभ्यासजकारस्य लोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्हित्वे 'निजां त्रयाणां गुणः श्लौ' इति अभ्यासगुणे 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्ध्यादेशे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'चोः कुः' इति जस्य गत्वे 'नेनेग्धि' इति ।

वा०—इर् की इत्संज्ञा कहनी चाहिए ।

६२८. णिज्, बिज् एवं विष् धातुओं के अभ्यास को गुण होता है श्लु के विषय में ।

६२९. अभ्यस्तसंज्ञक धातु को लघूपध गुण नहीं होता है अजादि पित्सार्व-धातुक पर में हो तो ।

६३०. इरितो वा ३।१।५७॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात्परस्मैपदेषु। अनिजत्। अनैक्षीत्। अनिक्त। अनेक्ष्यत्। अनेक्ष्यत।

॥ इति जुहोत्यादयः ॥

अनैक्षीत्—इरित्संज्ञक 'णिज्' धातोर्लुङि 'णो नः' इति धातोर्णस्य नत्वे लुङः स्थाने तिप्यनुबन्धलोपे 'लुङ् लङ्' इत्यडि अनुबन्धलोपे 'च्लि लुङि' इति च्लौ 'इरितो वा' इति विभाषया च्लेरङादेशे अनुबन्धलोपे ङित्त्वाद् गुणाऽभावे 'अनिजत्' इति। अङभावे च्लेः सिच्यनुबन्धलोपे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इत्यपृक्तसंज्ञकस्य तिपस्तकारस्य ईटि 'वदव्रजे'ति वृद्धौ जस्य कुत्वे सस्य षत्वे 'अनैक्षीत्' इति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां तिङन्ते जुहोत्यादिप्रकरणम् ॥

●

---

६३०. परस्मैपद में इर् इत्संज्ञक धातु पर में रहते च्लि को अ विकल्प से होता है।

इसप्रकार 'ललिता' टीका में जुहोत्यदिप्रकरण समाप्त हुआ।

●

अथ तिङन्ते दिवादिप्रकरणम्

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

६३१. दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९॥

एभ्यः श्यन् स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । शपोऽपवादः । हलि चेति दीर्घः । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं षिवु तन्तुसन्ताने । नृती गात्रविक्षेपे । नृत्यति । ननर्त ।

६३२. सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ७।२।५७॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् । नर्तिष्यति । नर्त्स्यति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् । अनर्तिष्यत्–अनर्त्स्यत् । त्रसी उद्वेगे । वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रस्यति-त्रसति । तत्रास ।

६३३. वा जॄभ्रमुत्रसाम् ७।३।६१॥

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपो वा स्तः । त्रेसतुः–तत्रसतुः । त्रेसिथ—तत्रसिथ । त्रसिता । शो तनूकरणे ।

६३४. ओतः श्यनि ७।३।७१॥

नर्तिष्यति, नर्त्स्यति—नृत् धातोर्लृटस्तिपि 'स्यतासी लृलुटोः' इति स्यप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वेन 'सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः' इति इटि अनुबन्धलोपे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे रपरत्वे सस्य षत्वे 'नर्तिष्यति', इडभावे 'नर्त्स्यति' इति ।

---

६३१. दिवादि गण में पढ़े गये धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तो ।

६३२. कृत, चृत, छृद, तृद, नृत धातुओं से पर में जो सिच् से भिन्न सादि आर्धधातुक उसको इट् का आगम होता है विकल्प से ।

६३३. कित् लिट् एवं सेट् थल पर में हो तो जॄ, भ्रमु, त्रस् धातुओं को एत्व होता है तथा अभ्यास का लोप भी होता है विकल्प से ।

६३४. श्यन् प्रत्यय परे ओकार का लोप होता है ।

लोपः स्यात् श्यनि । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शाता । शास्यति ।

६३५. विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८॥

एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदे परे । अशात् । आशाताम् । अशुः । इट्सकौ । अशासीत् । अशासिष्टाम् । छो छेदने । छ्यति । षोऽन्तकर्मणि । स्यति । ससौ [सेयात्, असात्] । असासीत् । दो अवखण्डने । द्यति । ददौ । देयात् । अदात् । व्यध ताडने ।

६३६. ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६॥

एषां सम्प्रसारणं स्यात्किति ङिति च । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ—विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । पुष पुष्टौ । पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् । शुष शोषणे । शुष्यति । शुशोष । अशुषत् । णश अदर्शने । नश्यति । ननाश । नेशतुः ।

६३७ रधादिभ्यश्च ७।२।४५॥

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिहः एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् । नेशिथ ।

स्यति—षोऽन्तकर्मणि' अस्माद्धातोर्लटि 'धात्वादेः षः सः' इति धातोरादेः षस्य सत्त्वे लटः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'दिवादिभ्यः श्यन्' इति श्यनि अनुबन्धलोपे 'ओतः श्यनि' इत्योकारस्य लोपे 'स्यति' इति ।

---

६३५. परस्मैपद पर में हो तो घ्रा, धेट्, शो, छो और षो धातुओं से परे सिच् का लोप होता है विकल्प से ।

६३६. ग्रह्, ज्या, वेञ्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् भ्रस्ज् धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् ङित् परे रहते ।

६३७. रधादि (रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह्) धातुओं से पर में वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होता है ।

६३८. मस्जिनशोर्झलि ७।१।६०॥

नुम् स्यात्। ननंष्ठ। नेशिव-नेश्व। नेशिम-नेश्म। नशिता-नंष्टा। नशिष्यति–नङ्क्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्। षूङ् प्राणिप्रसवे। सूयते। सुषुवे। क्रादिनियमादिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे। सविता-सोता। दूङ् परितापे। दूयते। दीङ् क्षये। दीयते।

६३९. दीङो युडचि क्ङिति ६।४।६३॥

दीङः परस्याऽजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् स्यात्।

(वा०)—वुग्युटावुवङ्यणो सिद्धौ वक्तव्यौ। दिदीये।

६४०. मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६।१।५०॥

एषामात्वं स्याल्ल्यपि, चादशित्येज् निमित्ते। दाता। दास्यति।

ननंष्ठ—'णश् अदर्शने' इत्यस्माद्धातोर्लिटः सिपि सिपस्थलि 'णो नः' इति धातोः णस्य नत्वे 'लिटि धातोरनभ्यासस्ये'ति द्वित्वे अभ्यासस्य सत्वे हलादिशेषे 'रधादिभ्यश्च' इति परिभाषया इटि अनुबन्धलोपे 'थलि च सेटि' इति एत्वे अभ्यासलोपे च कृते 'मस्जिनशोर्झलि' इति नुमि, तस्यानुस्वारे व्रश्चभ्रस्ज्' इति शस्य षत्वेन 'ननंष्ठ' इति।

दिदीये—'दीङ्' धातोर्लिटि आत्मनेपदे ते 'लिटि धातोरनन्यासस्ये'ति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इति ह्रस्वे 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' इति तस्य एशि अनुबन्धलोपे 'दीङो युङचि क्ङिति' इति युटि तस्यासिद्धत्वात् 'एरनेकाचः' इति परत्वाद् यणि प्राप्ते 'वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ' इति वार्तिकेनासिद्धत्वाऽभावात् युटि उटि गते 'दिदीये' इति।

---

३३८. झल् परे मस्ज् तथा नश् धातु को नुम् का आगम होता है।

६३९. अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक को युट् का आगम होता है दीङ् धातु पर में हो तब।

वा०—वुक् तथा युक् सिद्ध ही कहना चाहिए उवङ् या यण् करना हो तब।

६४०. मीञ्, मिञ् एवं दीङ् धातुओं को आत्व होता है ल्यप् प्रत्यय पर में हो तब।

(वा०)–स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः। अदास्त। डीङ् विहायसा गतौ। डीयते। डिड्ये। डयिता। पीङ् पाने। पीयते। पेता। अपेष्ट। माङ् माने। मायते। ममे। जनी प्रादुर्भावे।

६४१. ज्ञाजनोर्जा ७।३।७९॥

अनयोर्जादेशः स्याच्छिति। जायते। जज्ञे। जनिता। जनिष्यते।

६४२. दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने तशब्दे परे।

६४३. चिणो लुक् ६।४।१०४॥

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात्।

६४४. जनिवध्योश्च ७।३।३५॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। अजनि। अजनिष्ट। दीपी दीप्तौ। दीप्यते। दिदीपे। अदीपि-अदीपिष्ट। पद गतौ।

अदास्त—दीङ् धातोर्लुङि आत्मनेपदे ते 'लुङ् लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे 'मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च' इति आत्वे 'दाधाघ्वदाप्' इति घुसंज्ञायां 'स्थाघ्वोतिच्च' इति इत्वे प्राप्ते 'स्थाघ्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः' इति तन्निषेधे 'अदास्त' इति।

जायते—'जन्' धातोर्लटस्तादेशे टेरेत्वे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'दिवादिभ्यः श्यन्' इति श्यनि अनुबन्धलोपे 'ज्ञाजनोर्जा' इति जादेशे 'जायते' इति।

अदीपि—दीप् धायोर्लुङस्तादेशे 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे च्लौ

वा०—'स्थाघ्वोरिच्च' से प्राप्त इत्व दीङ धातु को नहीं होता है।

६४१. शित् परे ज्ञा और जन् धातु को जा आदेश होता है।

६४२. दीप, जन, बुध, पूरी, तायि, प्यायि धातुओं के बाद च्लि को चिण् होता है एकवचनान्त 'त' परे रहते।

६४३. चिण् परे 'त' का लोप होता है।

६४४. जन् और वध् के उपधा रूप अच् की वृद्धि नहीं होतो है चिण्, ञित् या कृत् प्रत्यत पर में हो तो।

पद्यते। पदे। पत्ता। पत्सीष्ट।

६४५. चिण् ते पदः ३।१।६०॥

पदश्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे। अपादि। अपत्साताम्। अपत्सत। विद सत्तायाम्। विद्यते। वेत्ता। अवित्त। बुध् अवगमने। बुध्यते। बोद्धा। भोत्स्यते। भुत्सीष्ट। अबोधि—अबुद्ध। अभुत्साताम्। युध् सम्प्रहारे। युयुधे। योद्धा। अयुद्ध। सृज विसर्गे। सृज्यते। ससृजे। ससृजिषे।

६४६. सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८॥

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति। स्रष्टा। स्रक्ष्यते। सृक्षीष्ट। असृष्ट। असृक्षाताम्। मृष तितिक्षायाम्। मृष्यति-मृष्यते। ममर्ष। ममर्षिथ। ममृषिषे। मर्षितासि। मर्षितासे। मर्षिष्यति—मर्षिष्यते। णह बन्धने। नह्यति। नह्यते। ननाह। नेहिथ—ननद्ध। नेहे। नद्धा। नत्स्यति। अना-

---

'दीपजनबुध–' इति विभाषया च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे 'चिणो लुक्' इति चिणः परस्य तशब्दस्य लुकि 'अदीपि' इति। चिणभावपक्षे च्लेः सिचि इटि षत्वे ष्टुत्वे 'अदीपिष्ट' इति च भवति।

अपादि—'पद् गतौ' इति धातोर्लुङस्तादेशे अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'चिण् ते पदः' इति च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे 'चिणो लुक्' इति चिणः परस्य तशब्दस्य लुकि 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'अपादि' इति।

अबोधि—बुधधातोर्लुङस्तादेशे 'लुङ् लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'दीपजनबुध–' इति च्लेश्चिणि 'चिणो लुक्' इति तशब्दस्य लुकि 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे अबोधि इति।

ननद्ध—णह धातोर्लिटि 'णो नः' इति धातोर्णस्य नत्वे लिटः सिपि सिपस्थलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्याससम्बन्धिहस्य लोपे 'ऋतो भारद्वाजस्य' इति इटि 'थलि च सेट्' इति एत्वेऽभ्यास-

---

६४५. 'त' शब्द पर में हो तो पद धातु से परे च्लि को चिण् होता है।

६४६. सृज्, दृश् धातु को अम् का आगम कित् भिन्न झलादि परे होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में दिवादिप्रकरण समाप्त हुआ॥

त्सीत् । अनद्ध ।

॥ इति दिवादिप्रकरणम् ॥

●

लोपे च कृते 'नेहिथ' इति। इडभावपक्षे 'नहो धः' इति हस्य धत्वे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति थस्य धत्वे 'झलां जश् झशि' इति जश्त्वेन पूर्वधकारस्य दकारे 'ननद्ध' इति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां दिवादिप्रकरणम् ॥

●

अथ तिङन्ते स्वादिप्रकरणम्

षुञ् अभिषवे ।

६४७. **स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३॥**

स्वादिभ्यः श्नुः स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । शपोऽपवादः । सुनोति । सुनुतः । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः—सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे–सुनुवहे । सुषाव–सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ।

६४८. **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२॥**

एभ्यस्सिच् इट् स्यात्परस्मैपदेषु । असावीत् । असीष्ट । चिञ् चयने । चिनोति । चिनुते ।

६४९. **विभाषा चेः ७।३।५८॥**

अभ्यासात्परस्य कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च । चिकाय—चिचाय । चिक्ये-चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । स्तृञ् आच्छादने । स्तृणोति । स्तृणुते ।

सुनोति—'षुञ् अभिषवे' इति धातोर्लटि 'धात्वादेः षः सः' इति सत्त्वे लटस्तिपि 'स्वादिभ्यः श्नुः' इति श्नौ अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे 'सुनोति' इति ।

चिकाय—'चिञ्' धातोर्लिटि तिपि णलि 'लिटि धातोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'विभाषा चेः' इति अभ्यासात् परस्य चकारस्य कुत्वे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आयादेशे 'चिकाय' इति । कुत्वाऽभावे 'चिचाय' इति ।

---

६४७. स्वादिगणपठित धातुओं से 'श्नु' प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तब ।

६४८. स्तु, सु, धूञ् धातुओं से परे सिच् को इडागम होता है परस्मैपद में ।

६४९. अभ्यास से परे चिञ् धातु को कुत्व होता है सन् एवं लिट् परे रहते बिकल्प से ।

६५०. शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते। तस्तार। तस्तरतुः। तस्तरे। गुणोर्तीति गुणः। स्तर्यात्।

६५१. ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि। स्तरिषीष्ट। स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट—अस्तृत। धूञ् कम्पने। धूनोति। धूनुते। दुधाव। स्वरतीति वेट्। दुधविथ—दुधोथ।

६५२. श्र्युकः किति ७।२।११॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न स्यात्। परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते, क्रादिनियमान्नित्यमिट्। दुधुविव। दुधुवे। अधावीत्। अधविष्ट—अधोष्ट। अधविष्यत्—अधोष्यत। अधविष्यताम्—अधोष्यताम्। अधविष्यत—अधोष्यत। ॥ इति स्वादिप्रकरणम् ॥

स्तर्यात्—स्तृधातोराशीर्लिङि तिपि यासुटि उटि गते 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः' इति गुणे रपरत्वे 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'स्तर्यात्' इति।

दुधुविव—ञकारेत्संज्ञकधूधातोर्लिटः स्थाने वसि 'वसोः०' इति 'व' आदेशे धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासधकारस्य जश्त्वे 'श्र्युकः किति' इति 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' इति न्यायेन 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' इति परत्वात् विभाषया प्राप्तस्येटो निषेधेऽपि क्रादिनियमान्नित्यमिटि अनुबन्धलोपे 'अचिश्नुधातुभ्रुवाम्' इति उवङि अनुबन्धलोपे 'दुधुविव' इति। ॥ इति 'ललिता' टीकायां स्वादिप्रकरणम् ॥ ●

---

६५०. अभ्यास के शर्-पूर्वक जो खय् वह शेष रह जाता है और अन्य हलों का लोप होता है।

६५१. लिङ् और सिच् को इट् का आगम होता है ऋदन्त संयोगादि धातु पूर्व में हो तब तथा तङ् बाद में हो तब।

६५२. श्रिञ् तथा एकाच् उगन्त धातु को इट् नहीं होता गित् कित् परे रहते।

इसप्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में स्वादिप्रकरण समाप्त हुआ।

●

अथ तिङन्ते तुदादिप्रकरणम्

तुद् व्यथने ।

६५३. तुदादिभ्यः शः ३।१।७७॥

तुदादिभ्यः शः स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे शपोऽपवादः । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत् । अतुत्त । णुद प्रेरणे । नुदति । नुदते । नुनोद । नोत्ता । भ्रस्ज पाके । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति । भृज्जते ।

६५४ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६।४।४७॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ-बभर्ष्ठ । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । स्कोरिति सलोपः, व्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभर्जे-बभ्रज्जे । भर्ष्टा—भ्रष्टा । भर्क्ष्यति—भ्रक्ष्यति ।

बभर्जिथ—भ्रस्ज् धातोर्लिटि तत्स्थाने सिपि थलि अनुबन्धलोपे 'लिटि धातोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इति अभ्याससम्बन्धिरेफस्य लोपे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्' इति रमागमे अमावितौ स्थानषष्ठीनिर्देशात् रेफस्योपधाभूतस्य च निवृत्तौ 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इतीटि प्राप्ते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति निषेधे भारद्वाजनियमात् विकल्पेन इटि अनुबन्धलोपे 'बिभर्जिथ' इति । इडभावे तु द्वित्वादिकार्ये 'भ्रस्जो रोपधयोः' इति रमि रोपधयोश्च निवृत्तौ 'ब्रश्चभ्रस्ज' इति जस्य षत्वे ष्टुत्वे 'बभर्ष्ठ' इति । रमभावपक्षे—द्वित्वादिकार्ये कृते भारद्वाजनियमात् विकल्पेनेटि अनुबन्धलोपे सस्य श्चुत्वेन शत्वे 'झलां जश् झशि' इति शस्य जत्वे 'बभ्रज्जिथ' इति । रमभावे इडभावे च पक्षे पूर्ववद् द्वित्वादिकार्ये 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति सलोपे 'व्रश्चभ्रस्ज' इति जस्य षत्वे ष्टुत्वे 'बभ्रष्ठ' इति चतुर्थं रूपं भवति ।

---

६५३. तुदादिगण पठित धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे हों तो ।

६५४. यदि आर्धधातुक बाद में हो तो भ्रस्ज् धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम होता है विकल्प से ।

(वा०) क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन। भृज्ज्यात्। भृज्ज्यास्ताम्। भृज्ज्यासुः। भर्क्षीष्ट–भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्—अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट-अभ्रष्ट। कृष विलेखने। कृषति। कृषते। चकर्ष। चकृषे।

६५५. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।५९॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याऽम्वा स्याज्झलादावकिति। क्रष्टा–कर्ष्टा। कृक्षीष्ट।

(वा०)—स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः।

अक्राक्षीत्—अकार्क्षीत्—अकृक्षत्। अकृष्ट। अकृक्षाताम्। अकृक्षत। क्सपक्षे—अकृक्षत। अकृक्षाताम्। अकृक्षन्त। मिल सङ्गमे। मिलति–मिलते। मेलिता। अमेलीत्। मुच्लृ मोचने।

६५६. शे मुचादीनाम् ७।१।५९॥

मुच्-लिप्-विद्-लुप्-सिच्-कृत्-खिद् पिशां मुम् स्यात् शे परे। मुञ्चति।

भर्क्षीष्ट—भ्रस्ज्धातोराशीर्लिङि आत्मनेपदे तप्रत्यये 'लिङः सीयुट्' इति सीयुटि अनुबन्धलोपे 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'सुट् तिथोः' इति तस्य सुटि उटि गते 'भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्' इति रमागमे अमावितौ स्थानषष्ठीनिर्देशात् रेफस्योपधाभूतसकारस्य च निवृत्तौ 'व्रश्चभ्रस्ज' इति जस्य षत्वे पुनः 'आदेशप्रत्यययोः' इति सुटः सस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते 'भर्क्षीष्ट' इति। रमोऽभावपक्षे 'भ्रक्षीष्ट' इति, अत्र 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' इति संयोगादेः सस्य लोप एव विशेष इत्यवसेयम्।

वा०—रमागम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध से सम्प्रसारण ही होता है कित् या ङित् पर में हो तब।

६५५. उपदेश में अनुदात्त ऋदुपध धातु को 'अम्' का आगम विकल्प से होता है कित् भिन्न झलादि पर में हो तब।

वा०—स्पृश्, मृश्, कृष्, तृप्, दृप् धातुओं से परे च्लि को विकल्प से सिच् होता है।

६५६. 'श' पर में हो तो मुचादि धातुओं से नुम् का आगम होता है।

मुञ्चते। मोक्ता। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत। अमुक्त। अमुक्षाताम्। लुप्लृ छेदने। लुम्पति। लुम्पते। लोप्ता। अलुपत्। अलुप्त। विद्लृ लाभे। विन्दति। विन्दते। विवेद–विविदे। व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता। भाष्यमतेऽनिट्। परिवेत्ता। षिच क्षरणे। सिञ्चति। सिञ्चते।

६५७. लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। असिचत्।

६५८. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४॥

लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा स्यात् तङि। असिचत–असिक्त। लिप उपदेहे। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति। लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्। अलिपत। अलिप्त।

॥ इत्युभयपदिनः ॥

कृति च्छेदने। कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति-कर्त्स्यति। अकर्तीत्। खिद परिघाते। खिदति। चिखेद। खेत्ता। पिश अवयवे पिशति। पेशिता। ओव्रश्चू छेदने। व्रश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ—वव्रष्ठ। व्रश्चिता–

अमुचत्—'मुच्' धातोर्लुङि लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु' इति च्लेरङि ङित्वात् गुणाऽभावे 'अमुचत्' इति। आत्मनेपदे तु 'अमुक्त' इति।

अमुक्त—मुच्धातोरात्मनेपदे लुङस्तादेशे अटि मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'झलो झलि' इति सलोपे 'चोः कुः' इति कुत्वे 'अमुक्त' इति।

असिचत—सिच् धातोर्लुङस्तादेशे अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्' इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे ङित्वाद् गुणाऽभावे 'असिचत' इति। अङभावे लुङस्तादेशे अटि च्लौ च्लेः सिचि 'झलो झलि' इति सिचः सस्य लोपे 'चोः कुः' इति कुत्वे 'असिक्त' इति।

---

६५७. लिप्, सिच् तथा ह्वेञ् धातु के बाद जो च्लि उसको अङ् होता है।

६५८. लिप्, सिच् और ह्वे धातु के बाद च्लि को अङ् होता है विकल्प से यदि तङ् पर में हो तब।

व्रष्टा । व्रश्चिष्यति–व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् । अव्राक्षीत् । व्यच व्याजीकरणे । विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचिष्यति । विच्यात् । अव्यचीत्—अव्याचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् । उछि उञ्छे । उञ्छति । उञ्छः कणशआदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम् इति यादवः । ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । ऋच्छति । ऋच्छत्यृतामिति गुणः । द्विहल्ग्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । ऋच्छिता । उज्झ उत्सर्गे । उज्झति । लुभ् विमोहने । लुभति ।

६५९. **तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८॥**

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् । लोभिता–लोब्धा । लोभिष्यति । तृप तृम्फ तृप्तौ । तृपति । ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति ।

(वा०) शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः । आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृफ्यात् । मृड पृड सुखने । मृडति । पृडति । शुन गतौ । शुनति । इषु इच्छायाम् । इच्छति । एषिता–एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । कुट कौटिल्ये । गाङ्कुटादीति ङित्वम् । चुकुटिथ । चुकोट––चुकुट । कुटिता । पुट संश्लेषणे । पुटति पुटिता । स्फुट

अव्याचीत्—'व्यच्' धातोर्लुङि तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि 'अतो हलादेर्लघोः' इति वृद्धौ 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अव्याचीत्' इति । वृद्ध्यभावे 'अव्यचीत्' इति ।

लोभिता—लुभ्धातोर्लुटि तिपि तासि 'तीषसहलुभरुषरिषः' इति विकल्पेन इटि अनुबन्धलोपे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे तिपो डादेशे 'डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः' 'लोभिता' इति । इडभावे 'झषस्तथोर्धोधः' इति सस्य धत्वे 'झलां जश् झशि' इति भस्य बत्वे गुणे 'लोब्धा' इति ।

---

६५९. तादि सार्वधातुक को विकल्प से इट होता है इच्छत्यादि (इष्, सह्, लुभ्, रुष्, रिष्) धातु पूर्व में हो तब ।

वा०—श पर में हो तो तृम्फादि धातुओं को नुम् का आगम होता है ।

विकसने। स्फुटति। स्फुटिता। स्फुर स्फुल सञ्चलने। स्फुरति—स्फुलति।

६६०. स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८।३।७६॥

षत्वं वा स्यात्। निःस्फुरति–निःष्फुरति। णू स्तवने परिणूतगुणोदयः। नुवति। नुनाव। नुविता। टुमस्जो शुद्धौ। मज्जति। ममज्ज। ममज्जिथ। मस्जिनशोरिति नुम्।

(वा०)—मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः। संयोगादिलोपः। ममङ्क्थ। मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्। अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः। रुजो भङ्गे। रुजति। रोक्ता। रोक्ष्यति। अरौक्षीत्। भुजो कौटिल्ये। रुजिवत्। विश् प्रवेशने। विशति। मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः। 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्।' अम्राक्षीत्-अमार्क्षीत्। अमृक्षत्। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। सीदतीत्यादि। शद्लृ शातने।

६६१. शदेः शितः १।३।६०॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत। शशाद। शत्ता। शत्स्यति। अशदत्। अशत्स्यत्। कृ विक्षेपे।

६६२. ऋत इद्धातोः ७।१।१००॥

अम्राक्षीत्—'मृश्' धातोर्लुङि लुङस्तिपि अटि अनुबन्धलोपे मध्ये 'च्लौ' 'स्पृशमृशकृषतृपदृशां च्लेः सिज्वा वाच्यः' इति च्लेः सिचि इचि गते 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' इति अभिमलोपे ऋकारस्य यणि तिपः इकारलोपे 'व्रश्चभ्रस्ज—' इति शस्य षत्वे 'वदव्रजहलन्तस्याचः' इति वृद्धौ 'षढोः कः सि' इति षस्य कत्वे 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि अनुबन्धलोपे 'अम्राक्षीत्' इति।

---

६६०. निर, नि वा वि उपसर्ग से परे स्फुर् और स्फुल् धातु के सकार को विकल्प से षत्व होता है।

वा०—'मस्ज' धातु के अन्त्य (जकार) से पूर्व नुम् होता है।

६६१. शिद्भावी जो शद् धातु उसे तङ् और आन् होता है।

६६२. ऋदन्त धातु के अङ्ग को इत् होता है।

ऋदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात्। किरति। चकार। चकरतुः। चकरुः। करीता-करिता। कीर्यात्।

६६३. किरतौ लवने ६।१।१४०॥

उपात्किरतेः सुट् स्याच्छेदने। उपस्किरति। अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट्कात् पूर्व इति वक्तव्यम्। उपस्किरत्। उपचस्कार।

६६४. हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्याद्धिंसायाम्। उपस्किरति। प्रतिस्किरति। गॄ निगरणे।

६६५. अचि विभाषा ८।२।२१॥

गिरते रेफस्य लो वा स्यादजादौ प्रत्यये। गिरति-गिलति। जगार-जगाल। जगरिथ। गरीता-गरिता। गलीता-गलिता। प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। पृच्छति। पप्रच्छ। पप्रच्छतुः। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत्। मृङ् प्राणत्यागे।

किरति—'कॄ विक्षेपे' अस्माद्धातोर्लटस्तिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'तुदादिभ्यः शः' इति शप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'ॠत इद्धातोः' इति ॠकारस्य इत्वे रपरत्वे 'किरति' इति।

चकरतुः—कॄधातोर्लिटस्तसि तसोऽतुसि धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे 'उरत्' इत्यत्त्वे रपरत्वे हलादिशेषे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणे रपरे सस्य रुत्वे विसर्गे 'चकरतुः' इति।

गिलति—'गॄ निगरणे' इति धातोर्लटस्तिपि शप् प्रत्यये 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे रपरत्वे 'अचि विभाषा' इति वैकल्पिके लत्वे 'गिलति' इति। लत्वाऽभावे 'गिरति' इति।

---

६६३. छेदन अर्थ में उप उपसर्ग से पर 'कॄ' धातु को सुडागम होता है।

६६४. उप और प्रति से परे 'कॄ' धातु को सुट् का आगम होता है हिंसा अर्थ में।

६६५. गॄ धातु के रेफ को लकार होता है अजादि प्रत्यय पर में हो तब।

६६६. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ५।३।६१॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र रिङ्। इयङ्। म्रियते। ममार। मर्ता। मरिष्यति। मृषीष्ट। अमृत। पृङ् व्यायामे। प्रायेणाऽयं व्याङ्पूर्वः। व्याप्रियते। व्यापप्रे। व्यापप्राते। व्यापरिष्यत्। व्यापृत। व्यापृषाताम्। जुषी प्रीतिसेवनयोः। जुषते। जुजुषे। ओविजी भयचलनयोः। प्रायेण।यमुत्पूर्वः। उद्विजते।

५६७. विज इट् १।२।६२॥

विजः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्स्यात्। उद्विजिता।

॥ इति तुदादिप्रकरणम् ॥

उद्विजिता—उत् पूर्वात् 'ओविजी भयचलनयोः' इत्यस्माद्धातोर्लुटि लुटस्तादेशे तासिप्रत्यये इडागमे अनुबन्धलोपे 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' इति डादेशे 'डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे' इति 'विज इट्' इति गुणाऽभावे 'उद्विजिता' इति।

इति 'ललिता' टीकायां तिङन्ते तुदादिप्रकरणम् ॥

---

६६६. मृङ् धातु से आत्मनेपद होता है केवल लुङ् या शित् पर में हो तब, अन्यत्र नहीं।

६६७. विज् धातु के बाद इडादि प्रत्यय ङित् के समान होता है।

इसप्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में तुदादिप्रकरण समाप्त हुआ।

अथ तिङन्ते रुधादिप्रकरणम्

६६८. रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८।।

शपोऽवादः। रुणद्धि। श्नसोरल्लोपः। रुन्धः। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्धः। रुन्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे। रुन्ध्वे। रुन्धे। रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे। रुरोध-रुरुधे। रोद्धासि-रोद्धासे। रोत्स्यति-रोत्स्यते। रुणद्धु-रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्धाम्। रुन्धाताम् रुन्धताम्। रुन्त्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्-अरुणद्। अरुन्धाम्। अरुन्धन्। अरुणः। अरुणद्। अरुन्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत। अरुन्धाः। रुन्ध्यात्—रुन्धीत। रुध्यात्-रुत्सीष्ट। अरुधत्-अरौत्सीत्। अरुद्ध। अरुत्साताम्। अरुत्सत। अरोत्स्यत्-अरोत्स्यत। भिदिर-विदारणे। छिदिर् द्वैधीकरणे। युजिर् योगे। रिचिर् विरेचने। रिणक्ति रिङ्क्ते। रिरेच। रेक्ता। रेक्ष्यति। अरिणक्। अरिचत्। अरैक्षीत्। अरिक्त। विचिर पृथग्भावे। विनक्ति-विङ्क्ते। क्षुदिर् सम्प्रेषणे। क्षुणत्ति-क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्-अक्षौत्सीत्-

---

रुणद्धि—'रुध' धातोर्लटस्तिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य 'रुधादिभ्यः श्नम्' इति श्नमि अनुबन्धलोपे 'अट्कुप्वाङ्' इति नस्य णत्वे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तस्य धत्वे 'झलां जश् झशि' इति धस्य दत्वे 'रुणद्धि' इति।

रुन्धः—रुधधातोर्लटस्तसि शपमपवाद्य श्नमि अनुबन्धलोपे 'श्नसोरल्लोपः' इति श्नङि अनुबन्थलोपे 'अट्कुप्वाङ्' इति नस्य णत्वे 'झषस्यथोर्धोऽधः' इति तस्य धत्वे 'झलां जश् झशि' इति धस्य दत्वे 'रुणद्धि' इति।

रुन्धः—रुधधातोर्लटस्तसि शपमपवाद्य श्नमि अनुबन्धलोपे 'श्नसोरल्लोपः' इति श्नमो नकारान्तर्गताकारस्य लोपे 'झषस्तथोर्धोऽधः' इति तसस्तकारस्य धत्वे 'झरो झरि सवर्णे' इति धातोर्धस्य लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'रुन्धः' इति।

---

६६८. रुधादि-गण पठित धातुओं से श्नम् प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तब।

अक्षुत्त। उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। छृणत्ति-छृन्ते। चच्छर्द। सेऽसिचीति वेट्। चच्छृदिषे-चच्छृत्से। छर्दिष्यति-छर्त्स्यति। अच्छृदत्-अच्छर्दीत् अच्छर्दिष्ट। अच्छर्दिष्यत्। उतृदिर् हिंसानादरयोः। तृणत्ति। तृन्ते। कृती वेष्टने। कृणत्ति। तृह हिसि हिंसायाम्।

६६९. तृणह इम् ७।३।९२॥

तृहः श्नमि कृते इमागमः स्याद्धलादौ पिति। तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। अतृणेट्।

६७०. श्नान्नलोपः ६।४।२३॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात्। हिनस्ति। जिहिंस। हिंसिता।

६७१. तिप्यनस्तेः ८।२।७३॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः। ससजुषोरुरित्यस्यापवादः। अहिनत्-अहिनद्। अहिंस्ताम्। अहिंसन्।

६७२. सिपि धातो रुर्वा ८।२।७४॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा सिपि। पक्षे दः। अहिनः—अहिनत्—अहिनद्। उन्दी क्लेदने। उनत्ति। उन्तः। उन्दन्ति। उन्दाञ्च-

---

तृणेढि—'तृह्' धातोर्लटस्तिपि शपमपवाद्य श्नमि अनुबन्धलोपे 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' इति श्नमो नस्य णत्वे 'तृणह इम्' इति इमि 'आद्गुणः' इति गुणे 'होढः' इति हस्य ढत्वे 'झषस्तथोऽर्धोऽधः' इति तिपस्तकारस्य धकारे धस्य ष्टुत्वेन ढकारे 'ढो ढे लोपः' इति पूर्वढकारस्य लोपे 'तृणेढि' इति।

हिनस्ति—'हिंस्' धातोर्लटस्तिपि 'इदितो नुम्धातोः' इति धातोरिदित्वान्नुमि अनुबन्धलोपे 'श्नान्नलोपः' इति श्नमः परस्य नस्य लोपे 'हिनस्ति' इति।

---

६६९. तृह धातु से श्नम् होने पर इमागम होता है हलादि पित् पर में हो तब।

६७०. श्नम् के बाद नकार का लोप होता है।

६७१. पदान्त सकार को दकार होता है अस् धातु को छोड़कर 'तिप्' पर में हों तब।

६७२. पदान्त 'स' को रु विकल्प से होता है सिप् पर में हो तब।

कार। औनत्-औनद्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः-औनत्। औनदम्। अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। आनञ्ज। आनञ्जिथ-आनङ्क्थ। अञ्जिता-अङ्क्ता। अङ्ग्धि। अनजानि। आनक्।

६७३. अञ्जेः सिचि ७।२।७१॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात्। आञ्जीत्। तञ्चू संकोचने। तनक्ति। तञ्चिता-तङ्क्ता। ओविजी चलनयोः। विनक्ति। विङ्क्तः। विज इडिति ङित्वम्। विविजिथ। विजिता। अविनक्। अविजीत्। शिष्लृ विशेषणे। शिनष्टि। शिष्टः। शिषन्ति। शिनक्षि। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। हेर्धिः। शिण्ड्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिष्यात्। अशिषत्। एवं पिष्लृ सञ्चूर्णने। भञ्जो आमर्दने। श्नान्नलोपः। भनक्ति। बभञ्जिथ—बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्। भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्।

औनत्—'उन्दी क्लेदने' अस्माद्धातोर्लङि तिपि शपमपवाद्य श्नमि अनुबन्धलोपे 'आडजादीनाम्' इत्यादि अनुबन्धलोपे 'आटश्च' इति वृद्धौ 'श्नान्नलोपः' इति धातोर्नस्य लोपे 'इतश्च' इति तिपः इकारलोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति तलोपे 'वाऽवसाने' इति दस्य चर्त्वे 'औनत्' इति। चर्त्वाऽभावे 'औनद्' इति।

आनक्—अञ्जूधातोर्लङस्तिपि श्नमि अनुबन्धलोपे 'श्नान्नलोपः' इति नलोपे 'आडजादीनाम्' इत्यादि 'आटश्च' इति वृद्धौ 'इतश्च' इति तिपः इकारलोपे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति तलोपे 'चोः कुः' इति जस्व कुत्वेन गकारे 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे 'आनक्' इति। चर्त्वाभावे 'आनग्' इति।

शिण्ड्ढ—ऌकारेत्संज्ञकशिष्धातोर्लोटः सिपि शपमपवाद्य श्नमि अनुबन्धलोपे 'सेर्ह्यपिच्च' इति सेर्ह्यादेशे 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' इति हेर्धित्वे 'श्नसोरल्लोपः' इत्यलोपे 'झलां जश् झशि' इति षस्य जश्त्वेन डकारे 'ष्टुनाष्टुः' इति सस्य षत्वे 'झरो झरि सवर्णे' इति डलोपे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते 'शिण्ढि' इति। डलोपाभावे तु 'शिण्ड्ढि' इति।

---

६७३. अञ्ज् धातु-परक सिच् को नित्य इट् होता है।

६७४. भुजोऽनवने १।३।६६॥

तङानौ स्तः। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम् ? महीं भुनक्ति। ञि इन्धी दीप्तौ। इन्धे। इन्धाते। इन्त्से। इन्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धाताम्। इनधै। एन्ध। ऐन्धाताम्। ऐन्धाः। विद् विचारणे। विन्ते। वेत्ता।

॥ इति रुधादिप्रकरणम् ॥

भुजोनवने—'भुजः अनवने' इति पदच्छेदः। अवनं = रक्षणं, तद्भिन्ने अर्थे भुज्धातोरात्मनेपदं स्यादित्यर्थः। तेन भोजनेऽर्थे भुज्धातोरात्मनेपदं सति 'ओदनं भुङ्क्ते' इति भवति। रक्षणे तु 'महीं भुनक्ति (रक्षति)' इति परस्मैपदं भवति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां रुधादिप्रकरणम् ॥

---

६७४. भोजन अर्थ में भुज् धातु से तङ् तथा आन होता है रक्षा अर्थ को छोड़कर आत्मनेपद में।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में रुधादिप्रकरण समाप्त हुआ।

अथ तिङन्ते तनादिप्रकरणम्

तनु विस्तारे।

६७५. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उप्रत्ययः स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे। शपोऽपवादः। तनोति–तनुते। ततान-तेने। तनितासि—तनितासे। तनिष्यति—तनिष्यते। तनोतु—तनुताम्। अतनोत्–अतनुत। तनुयात्—तन्वीत्। तन्यात्-तनिषीष्ट। अतानीत्—अतनीत्।

६७६. तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः। अतत-अतनिष्ट। अतथाः—अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्-अतनिष्यत। षणु दाने। सनोति-सनुते।

६७७. ये विभाषा ६।४।४३॥

जनसनखनामात्वं वा स्याद्यादौ ङ्किति। सायात्—सन्यात्।

अतानीत्—तन् धातोर्लुङि लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्' इति अडागमे अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अतो हलादेर्लघोः' इति विकल्पेन वृद्धौ 'अतानीत्' इति। वृद्ध्यभावे 'अतनीत्' इति।

तनु = विस्तार, फैलाना।

६७५. तनादिगण पठित तथा कृञ् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तब।

६७६. तनादि धातु से पर में जो सिच्, उस सिच् का लोप होता है विकल्प से त या थास् प्रत्यय पर में हो तो।

६७७. जन्, सन्, खन् धातुओं को आत्व होता है यकारादि कित् या ङित् पर में हो तब।

६७८. जनसनखनां सञ्झलोः ६।४।४२॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात्, सनि झलादौ क्ङिति। असात—असनिष्ट। असाथाः—असनिष्ठाः। क्षणु हिंसायाम्। क्षणोति-क्षणुते। ह्म्यन्तेति न वृद्धिः! अक्षणीत्। अक्षत-अक्षणिष्ट। अक्षथाः—अक्षणिष्ठाः। क्षिणु च। उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। क्षेणोति-क्षिणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्—अक्षित-अक्षेणिष्ट। तृणु अदने। तृणोति-तर्णोति। तृणुते-तर्णुते। डुकृञ् करणे। करोति।

६७९. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उः स्यात्। कुरुतः।

६८०. न भकुर्छुराम् ८।२।७९॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात्। कुर्वन्ति।

६८१. नित्यं करोतेः ६।४।१०८॥

असात—उकारेत्संज्ञक षण्धातोर्लुङि 'धात्वादेः षः सः' इति सत्वे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति परिभाषया षस्य सत्वे णत्वस्यापि निवृत्तौ लुङस्तादेशे अटि अनुबन्धलोपे सच्वे च्लौ च्लेः सिचि 'तनादिभ्यस्तथासोः' इति विभाषया सिचो लोपे 'जनसनखनां सञ्झलोः' इति 'अलोन्त्यस्ये'ति सहकारेण तस्यात्वे सवर्णदीर्घे 'असात' इति।

कुर्वन्ति—कृधातोर्लटि तत्स्थाने झौ झस्य अन्तादेशे शपं प्रबाध्य 'तनादिकृञ्भ्य उः' इत्युप्रत्यये 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे 'अत उत्सार्वधातुके' इति कृञोऽकारस्य उत्वे 'इको यणचि' इति यणि 'हलि च' इति रेफान्तस्योपधाया दीर्घत्वे प्राप्ते 'न भकुर्छुराम्' इति निषेधे 'कुर्वन्ति' इति।

---

६७८. जन्, सन्, खन् धातुओं को आकार अन्तादेश होता है सन् पर में हो और झलादि कित् या ङित् पर में हो तब।

६७९. उ प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार को उकार होता है कित् ङित् सार्वधातुक पर में हो तो।

६८०. भसंज्ञक कुर् (कृ) छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है।

६८१. कृ धातु के प्रत्ययरूप उकार का नित्य ही लोप होता है वकार या

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्याम्वोः परयोः। कुर्वः। कुर्मः। कुरुते। चकार-चक्रे। कर्तासि। कर्त्तासे। करिष्यति-करिष्यते। करोतु। कुरुताम्। अकरोत्। अकुरुत।

६८२. ये च ६।४।१०९॥

कृञ उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये। कुर्यात्—कुर्वीत। क्रियात्—कृषीष्ट। अकार्षीत्-अकृत। अकरिष्यत्—अकरिष्यत।

६८३. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७॥

६८४. समवाये च ६।१।१३८॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्यात् भूषणे सङ्घाते। चार्थे। संस्करोति। अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति। सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्, 'संस्कृतं भक्षा' इति ज्ञापनात्।

६८५. उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु, चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाऽऽ-

---

कुर्यात्—कृधातोर्विधिलिङि लिङः स्थाने तिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'तनादिकृञ्भ्यः उः' इत्युप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात्तस्मिन् परे कृञो ऋकारस्य गुणे रपरत्वे 'अत उत्सार्वधातुके' इति उत्वे यासुटि उटि गते 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपे तिपः इकारलोपे 'ये च' इति उकारस्य लोपे 'कुर्यात्' इति।

अकार्षीत्—कृधातोर्लुङस्तिपि 'लुङ्लङ्' इत्यडागमें अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते सस्यार्धधातुकत्वादिटि प्राप्ते 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति निषेधे 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इति तस्य ईटि 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इति वृद्धौ 'आदेशप्रत्यययोः' इति सस्य षत्वे 'अकार्षीत्' इति।

मकार पर में हो तब।

६८२. कृ धातु के उकार का लोप होता है यकारादि प्रत्यय पर में हो तब।

६८३-८४. संपूर्वक एवं परिपूर्वक जो 'कृ' धातु उसे सुट् का आगम होता है भूषण एवं संघात अर्थ में।

६८५. प्रतियत्न (अनेक यत्न) वैकृत (विकाराभाव) का यदि वाक्या-

धानम् । विकृतमेव वैकृतं—विकारः । वाक्याध्याहारः—आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणाः । एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं भुङ्क्ते । उपस्कृतं ब्रूते । वनु याचने । वनुते । ववने । मनु अवबोधने । मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट । अमत-अमनिष्ट । अमनिष्यत ।

॥ इति तनादयः ॥

उपस्कुरुते—उपपूर्वकात् कृधातोरात्मनेपदे लटि तत्स्थाने तप्रत्यये एत्वे शपं प्रबाध्य 'तनादिकृञ्भ्य उः' इति उप्रत्यये 'अत उत्सार्वधातुके' इति कृञो ऋकारस्य उत्वे 'उप कुरुते' इति स्थिते 'उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च' इति चकारानुगृहीतभूषणेऽर्थे सुटि उटि गते 'उपस्कुरुते' इति । अलङ्करोतीत्यर्थः ।

उपस्कृतं ब्रूते—अत्र 'उपात्प्रतियत्ने'ति सूत्रेण वाक्याध्याहारार्थे सुट् । वाक्याध्याहारेण व्रते इत्यर्थः । 'एधोदकस्योपस्कुरुते' इत्यत्र तु प्रतियत्नेर्थे सुट् भवति । प्रतियत्नः = गुणोपधानमिति मूले स्पष्टम् ।

इति 'ललिता' टीकायां तनादिप्रकरणं समाप्तम् ॥

ध्याहार हो तो इन दोनों अर्थों से परे 'कृ' को सुट् का आगम होता है ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में तनादिप्रकरण समाप्त हुआ ।

*

अथ तिङन्ते क्र्यादिप्रकरणम्

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।

६८६. क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१॥

एभ्यः श्ना स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । शपोऽपवादः । क्रीणाति । 'ई हल्यघोः ।' क्रीणीतः । श्नाभ्यस्तयोरातः । क्रीणन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथः । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीवः । क्रीणीमः । क्रीणीते क्रीणाते । क्रीणते । क्रीणीषे । क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रियुः चिक्रयिथ-चिक्रेथ । चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यति-क्रेष्यते । क्रीणातु-क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात् । अक्रीणीत । क्रीणीयात्—क्रीणीत । क्रीयात् । क्रैषीष्ट । अक्रैषीत्—अक्रेष्ट । अक्रेष्यत्-अक्रेष्यत । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च । प्रीणाति-प्रीणीते । श्रीञ् पाके । श्रीणाति-श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् ।

६८७. हिनुमीना ८।४।१५॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात् । प्रमीणाति-प्रमीणीते ।

प्रमीणिते—प्रोपसर्गात् 'मीञ् हिंसायाम्' इति धातोः लटि तत्स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये टेरेत्वं शपं प्रबाध्य 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'हिनुमीना' इत्यनेन णत्वे 'ई हल्यघोः' इति ईत्वे 'प्रमीणीते' इति ।

मीञ्धातोर्लुङि रूपाणि—

परस्मैपदे

अमासीत्	अमासिष्टाम्	अमासिषुः
अमासीः	अमासिष्टम्	अमासिष्ट
अमासिषम्	अमासिष्व	अमासिष्म

---

६८६. क्र्यादि धातुओं से 'श्ना' प्रत्यय होता है कर्त्रर्थक सार्वधातुक पर में हो तब ।

६८७. उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु और मीना के नकार को णकार होता है ।

मीनातीत्यात्वम्। ममौ । मिम्यतुः। ममिथ-ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्–मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। षिञ् बन्धने। सिनाति। सिनीते। सिषाय–सिष्ये। सेता। स्कुञ् आप्लवने।

६८८. स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३।१।८२

एभ्यः श्नुः स्यात् चात् श्ना। स्कुनोति-स्कुनाति। स्कुनुते-स्कुनीते। चुस्काव। चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्–अस्कोष्ट। स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः।

६८९. हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे। स्तभान।

६९० जॄस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३।१।५८॥

एभ्यश्च्लेरङ् वा स्यात्।

आत्मनेपदे

अमास्त	अमासाताम्	अमासत
अमास्थाः	अमासाथाम्	अमाध्वम्
अमासि	अमास्वहि	अमास्महि

स्तभान—उकारेत्संज्ञक रोधनार्थक 'स्तन्भ' धातुः सौत्रः। उपदेशे स्तम्भ इति, तस्माल्लोटि तत्स्थाने सिपि सिपः सार्वधातुकत्वात् शपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'स्तन्भुस्तुन्भु'–सूत्रेण चकारात् 'श्ना' प्रत्यये अनुबन्धलोपे सेर्ह्यादेशे 'स्तन्भ ना हि' इति स्थिते 'हलः श्नः शानज्झौ' इति नाशब्दस्य शानजादेशे अनुबन्धलोपे शित्त्वात्सार्वधातुकत्वेन 'सार्वधातुकमपित्' इति ङित्वे सति 'अनिदिताम्' इति धातोर्नस्य लोपे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'स्तम्भान' इति।

---

६८८. स्तन्भु, स्तुन्भु, स्कन्भु, स्कुन्भु—इन धातुओं से पर में 'श्नु' प्रत्यय होता है, और चकारात् 'श्ना' प्रत्यय भी होता है।

६८९. हल् से परे 'श्ना' को 'शानच्' आदेश होता है हि पर में हो तब।

६९०. जॄ, स्तन्भु, म्रुचु, म्लुचु ग्रुचु, ग्लुचु ग्लुञ्चु एवं श्वि इन धातुओं से परे जो च्लि उसी विकल्प से 'अङ्' होता है।

६९१. स्तन्भेः ८।३।६७॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्। युञ् बन्धने। युनाति-युनीते। योता। क्नूञ् शब्दे। क्नूनाति। क्नूनीते। क्नविता द्रूञ् हिंसायाम्। द्रुणाति-द्रूणीते। दृ विदारणे। दृणाति-दृणीते। पूञ् पवने।

६९२ प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०॥

पूञ्-लूञ्-स्तृञ्-कृञ्-धूञ्-शॄ-पॄ-वॄ-भॄ-मॄ-दॄ-जॄ-झॄ-धॄ-नॄ-कॄ-ऋॄ-गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-वृञ्-प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः स्यात्। पुनाति—पुनीते। पविता। लूञ् छेदने। लुनाति-लुनीते। स्तृञ् आच्छादने। स्तृणाति। शर्पूर्वाः खयः। तस्तार। तस्तरतुः। तस्तरुः। तस्तरे। स्तरीता-स्तरिता। स्तृणीयात्। स्तृणीत। स्तीर्यात्।

६९३. लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिङ् वा स्यात्तङि।

६९४. न लिङि ७।२।३९॥

वृत इटो लिङि न दीर्घः। स्तरिषीष्ट। उश्चेति कित्त्वम्। स्तीर्षीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत्। अस्तारिष्टाम्। अस्तारिषुः। अस्त-

---

व्यष्टभत्—विपूर्वकात् 'स्तन्भ' धातोर्लुङि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'जॄस्तन्भुम्रुचु'—इत्यादिना अङि अनुबन्धलोपे यणि 'अनिदिताम्—' इति नलोपे 'स्तन्भेः' इति सस्य षत्वे ष्टुत्वे 'व्यष्टभत्' इति।

स्तरिषीष्ट—स्तृधातोराशीर्लिङि लिङ स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये 'लिङः सीयुट्'

---

६९१. सूत्र में पठित 'स्तन्भु' धातु के 'सकार' को 'षकार' होता है।

६९२. पूञ् आदि चौबीस धातुओं को ह्रस्व होता है शित प्रत्यय पर में हो तब।

६९३. तङ् परे रहते वृङ्, वृञ् एवं ऋदन्त धातुओं से परे लिङ् सिच् को इट् का आगम होता है विकल्प से।

६९४. यदि लिङ् पर में हो तो वृञ्, वृङ् और ऋदन्त धातु से किये गये इट् को दीर्घ नहीं होता है।

रीष्ट-अस्तरिष्ट-अस्तीर्ष्ट। कृञ् हिंसायाम्। कृणाति-कृणीते। चकार-चकरे। वृञ् वरणे। वृणाति-वृणीते। ववार-ववरे। वरिता-वरीता। उदोष्ठ्येत्युत्वम्। वूर्यात्। वरिषीष्ट-वूर्षीष्ट। अवूर्ष्ट। धूञ् कम्पने। धुनाति-धुनीते। धविता-धोता। अधावीत्। अधविष्ट-अधोष्ट। ग्रह उपादाने। गृह्णाति। गृह्णीते। जग्राह। जगृहे।

६९५. ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७।२।३७॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि। ग्रहीता। गृह्णातु। हलः श्नः शानज्झाविति श्नः शानजादेशः। गृहाण। गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट। ह्म्यन्तेति न वृद्धिः। अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम्। अग्रहीष्ट। अग्रहीषाताम्। कुष निष्कर्षे। कुष्णाति। कोषिता। अश-भोजने। अश्नाति। आश। अशिता। अशिष्यति। अश्नातु। अशान। मुष स्तेये। मोषिता। मुषाण।

इति सीयुटि उटावितौ लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'स्तृसीत' इति स्थिते 'सुट् तिथोः' इति सुटि उटि गते 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' इति विभाषया इटि अनुबन्धलोपे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे रपरत्वे 'स्तरि सी स् त' इति स्थिते 'वृतो वा' इति इटो दीर्घे प्राप्ते 'न लिङि' इति निषेधे उभयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे 'स्तरिषीष्ट' इति।

अग्रहीत्—ग्रहधातोर्लुङि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये च्लौ च्लेः सिचि इचि गते 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति सस्य इटि 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति सस्य च ईटि 'इट ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'वदव्रजे'ति प्राप्तदीर्घस्य 'नेटी'त्यनेन 'अतो हलादेर्लघोः' इति प्राप्त वृद्धस्य 'ह्म्यन्ते'त्यनेन निषेधे 'अग्रहीत्' इति।

अशान—'अश्' धातोर्लोटः स्थाने सिपि सेर्ह्यादेशे 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति श्नाप्रत्यये 'हलः श्नः शानज्झौ' इति श्नः शानजादेशे अनुबन्धलोपे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'अशान' इति।

मुषाण—मुष् धातोर्लोटः स्थाने सिपि सेर्ह्यादेशे 'क्र्यादिभ्यः श्ना' इति

---

६९५. एकाच 'ग्रह' धातु से विहित 'इट्' को दीर्घ होता है लिट् लकार पर में हो तब।

इसप्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में क्र्यादिप्रकरण समाप्त हुआ।

ज्ञा अवबोधने । जज्ञौ । वृङ् सम्भक्तौ । वृणीत । ववृढ्वे । वरिता-वरीता अवरीष्ट-अवरिष्ट-अवृत ।

॥ इति क्र्यादयः ॥

श्नाप्रत्यये 'हलः श्नः शानज्झौ' इति श्नः शानजादेशे अनुबन्धलोपे 'अतो हेः' इति हेर्लुकि 'रषाभ्याम्' इति णत्वे 'मुषाण' इति ।

इति 'ललिता' टीकायाम् तिङन्ते क्र्यादिप्रकरणम् ॥

अथ तिङन्ते चुरादिप्रकरणम्

चुर स्तेये ।

६९६. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५॥

एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि । गुणाऽयादेशौ । चोरयति ।

६९७. णिचश्च १।३।७४॥

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम् । हलादिः शेषः । दीर्घोलघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत । कथ वाक्यप्रबन्धे । अल्लोपः ।

अचूचुरत—चुर्धातोः 'सत्यापपाश—' इत्यादिसूत्रेण चुरादित्वात् स्वार्थे णिचि अनुबन्धलोपे णिच इकारस्य 'आर्धधातुकं शेषः' इत्यार्धधातुकत्वे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे चोरि इति जाते 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुसंज्ञायां धातुत्वाल्लुङि लङ् स्थाने तिपि तिप इकारलोपे 'लुङ्लङ्—' इत्यडागमे अनुबन्धलोपे मध्ये च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः' इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे 'णेरनिटि' इति णिलोपे । 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधाह्रस्वे 'चङि' इति द्वित्वे 'पूर्वोऽभ्यासः' इत्यभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्यासरेफस्य लोपे 'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे' इति सन्वद्भावे 'दीर्घो लघोः' इति अभ्यासस्य दीर्घे 'अचूचुरत्' इति । आत्मनेपदे 'अचूचुरत' इत्यपि पूर्ववदेव सिद्धं भवति ।

---

६९६. चुर=चोरी करना । सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, इन प्रातिपदिकों तथा चुरादिगण पठित धातुओं से णिच् प्रत्यय होता है, स्वार्थ में ।

६९७. णिच् प्रत्ययान्त धातु से आत्मनेपद होता है यदि क्रियाफल कर्तृगामी हो तब ।

६९८ अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७॥

अल्विध्यर्थमिदम् । परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वात् नोपधावृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् ।

गण संख्याने । गणयति ।

६९९. ई च गणः ७।४।९७॥

गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ् परे णौ, चदात् । अजीगणत् । अजगणत् ।

॥ इति चुरादयः ॥

कथयति—अजन्तात् 'कथ' धातोः 'सत्यापपाशे'ति स्वार्थे णिचि तस्यार्धधातुकत्वात्तस्मिन्परे 'अतो लोपः' इति अलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ प्राप्तायाम् 'अचः परस्मिन्' इत्यल्लोपस्य स्थानिवद्भावात्तदभावे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणे अयादेशे तत् सिद्धिः ।

गणयति—अजन्तात् 'गण संख्याने' इत्यस्माद्धातोः 'सत्यापपाशे'ति स्वार्थे णिचि तस्यार्धधातुकत्वात् 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे स्थानिवद्भावात् उपधावृद्धयभावे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि गुणेऽयादेशे तत्सिद्धिः ।

अजीगणत्—अजन्तात् 'गण' धातोः 'सत्यापपाशे'ति स्वार्थे णिचि आर्धधातु-

---

६९८. पर को निमित्त मानकर होनेवाले अच् के स्थान में जो आदेश हो वह स्नानिवत् हो, स्थानिभूत अच् से पूर्व दृष्ट यदि विधि करना हो तब ।

६९९. 'गण' धातु के अभ्यास को ईकार होता है और चकारात् अकार भी, चङ्परक 'णि' पर हो तब ।

इसप्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में चुरादिप्रकरण समाप्त हुआ ।

●

नोट—भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च ।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनुक्र्यादिचुरादयः ।
एते दश गणाः प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

कत्वेन 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे तस्य स्थानिवत्त्वात् वृद्ध्यभावे धातुत्वाल्लुङ्स्तिपि अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः' इति च्लेश्चङि 'णेरनिटि' इति इकारलोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्यासम्बन्धिगकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति अभ्यासगकारस्य जकारे अग्लोपित्वाद् दीर्घसन्वद्भावयोरभावे 'ई च गणः' इति ईत्वे 'अजीगणत्' इति । पक्षे 'अजगणत्' इति ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां चुरादिप्रकरणम् ॥

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

७००. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

७०१. तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५॥

कर्तुः प्रयोजको हेतु संज्ञः कर्तृसंज्ञकश्च स्यात् ।

७०२. हेतुमति च ३।१।२६॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेरयति—भावयति ।

७०३. ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्ग-यण्-जकारेष्ववर्णपरेषु परतः । अबीभवत् । ष्ठा गतिनिवृत्तौ ।

भावयति—भूधातोः 'हेतुमति च' इति प्रेरणार्थे णिचि अनुबन्धलोपे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ आवादेशे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे गुणे अयादेशे 'भावयति' इति ।

ओः पुयण्ज्यपरे—'उ' इत्यस्य 'ओः' इति षष्ठी, 'पुयण्जि' इति छेदः । पुश्च यण् च ज् चेति समाहारद्वन्द्वात् सप्तमी । अः परो यस्मादिति बहुव्रीहिः । 'सन्यतः' इत्यस्मात् सनीत्यनुवर्तते । अङ्गस्येत्यधिकृतम् । 'अत्र लोपः' इत्यस्मादभ्यासस्येति, 'भृञामित्' इत्यस्मादिति चानुवर्तते । ततश्च 'सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्येत्वं स्यात् 'पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः' इत्यर्थो भवति । उदाहरणं तु 'अबीभवत्' इति ।

---

७००. क्रिया में स्वतंत्र रूप से विवक्षित अर्थ कर्तृ-संज्ञक होता है ।

७०१. कर्त्ता के जो प्रयोजक उसका नाम हेतु, तथा कर्तृ भी होता है ।

७०२. प्रयोजक का प्रेरणादि व्यापार वाच्य रहने पर धातु से 'णिच्' प्रत्यय होता है ।

७०३. सन् परे रहते अङ्गावयव अभ्यास के उकार को इकार आदेश होता है अवर्णपरक पवर्ग, यण् या जकार पर में हो तब ।

७०४. अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ ७।३।३६॥

स्थापयति ।

७०५. तिष्ठतेरित् ७।४।५॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ् परे णौ । अतिष्ठिपत् । घट चेष्टायाम् ।

७०६. मितां ह्रस्वः ६।४।९२॥

घटादीनां ज्ञपादीनां चोपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ । घटयति । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञापयति । अजिज्ञपत् ।

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥

अतिष्ठिपत्—'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' इति धातुः, अत्र 'धात्वादेः षः सः' इति षस्य सत्वे ष्टुत्वनिवृत्तौ 'स्था' इति, तस्मात् 'हेतुमति च' इति णिचि 'अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ' इति पुकि उकि गते धातुत्वाल्लुङस्तिपि अटि अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे मध्ये च्लौ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः' इति च्लेश्चङि 'णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये' इति निषेधात् इत्वाऽपेक्षया पूर्वं द्वित्वे अभ्यासत्वे 'शर्पूर्वाः खयः' इति सलोपे अभ्यासह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति चर्त्वे 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युपधाह्रस्वे 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे' इति सन्वद्भावे 'सन्यतः' इति इत्वे ष्टुत्वे 'तिष्ठतेरित्' इतीत्वे 'अतिष्ठिपत्' इति ।

ज्ञापयति—ज्ञप्धातोः हेत्वर्थे णिचि 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ ज्ञपादेर्मित्त्वात् 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वे धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि गुणेऽयादेशे तत्सिद्धिः ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां ण्यन्तप्रक्रिया ॥

---

७०४. अर्ति, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी एवं आदन्त धातुओं को पुक् का आगम होता है णि पर में हो तब ।

७०५. स्था धातु की उपधा के स्थान में इकार होता है चङ्परक णि पर में हो तो ।

७०६. घटादि एवं ज्ञपादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है णि पर में हो तब ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में ण्यन्तप्रक्रिया समाप्त हुई ।

●

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

७०७. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७॥

इषिकर्मण इषिणैकर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्। पठ व्यक्तायां वाचि।

७०८. सन्यङोः ६।१।९॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य। सन्यतः। पठितुमिच्छति पिपठिषति। कर्मणः किम्? गमनेनेच्छति। समानकर्तृकात् किम्? शिष्यः पठन्त्वितीच्छति गुरुः। वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। लुङ्सनोर्घस्लृ।

७०९. स स्यार्धधातुके ७।४।४९॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति जिघत्सति। 'एकाच' इति नेट्।

पिपठिषति—पठ्धातोरिच्छार्थे 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' इति सनि सनः आर्धधातुकत्वात् इटि अनुबन्धलोपे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'सन्यतः' इतीत्वे षत्वे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इति पररूपे उक्तं रूपं सिद्धम्।

जिघत्सति—अत्तुमिच्छतीत्यर्थे 'अद्' धातोः 'धातोः कर्मणः' इति सनि 'लुङ्सनोर्घस्लृ' इति अदो घस्लादेशे अनुबन्धलोपे 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इति इटो निषेधे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्याससकारस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इत्यभ्यासघकारस्य झत्वे 'अभ्यासे चर्च' इति झस्य जत्वे 'सन्यतः' इत्यभ्यासाऽकारस्य इत्वे 'सस्यार्धधातुके' इति सस्य तकारे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति

---

७०७. इष् धातु का जो कर्म तद्बोधक और इष् धातु के समास कर्तृक अर्थात् इष् धातु का जो कर्त्ता वही कर्त्ता हो जिसका ऐसे धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है।

७०८. सन्नन्त यङन्त धातु के प्रथम एकाच को तथा अजादि धातु के द्वितीय एकाच को द्वित्व होता है।

७०९. सकार के स्थान पर तकार होता है सादि आर्धधातुक पर में हो तो।

७१०. अज्झनगमां सनि ६।४।१६॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि।

७११. इको झल् १।२।९॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति।

७१२. सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात्। बुभूषति।

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥

धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे 'अतोगुणे इति पररूपे उक्तं रूपं सिद्धम्।

चिकीर्षति—कर्तुमिच्छतीति विग्रहे कृधातोः 'धातोः कर्मणः' इति सनि अनुबन्धलोपे 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इतीण्निषेधे 'अज्झनगमां सनि' इति दीर्घे 'इको झल्' इति कित्वाद् गुणाऽभावे 'ऋत इद्धातोः' इति इत्वे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'हलादिः शेषः' इत्यभ्यासरेफस्य लोपे 'कुहोश्चुः' इति चुत्वे 'हलि च' इति दीर्घे षत्वे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे पररूपे 'चिकीर्षति' इति।

बुभूषति—भूधातोः इच्छार्थे सनि 'सनिग्रहगुहोश्च' इति इण्निषेधे 'इको झल्' इति कित्वाद् गुणाऽभावे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'ह्रस्वः' इत्यभ्यासोकारस्य ह्रस्वे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे षत्वे 'सनाद्यन्ताः' इति धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे पररूपे 'बुभूषति' इति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां सन्नन्तप्रक्रिया ॥

---

७१०. अजन्त धातु, हन् धातु एवं अजादेश गम् धातु को दीर्घ होता है, झलादि सन् प्रत्यय पर हो तो।

७११. इगन्त धातु से परे झलादि सन् कित् होता है।

७१२. ग्रह, गुह् एवं उगन्त धातु के बाद सन् को इट् नहीं होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में सन्नन्तप्रक्रिया समाप्त हुई।

अथ यङन्तप्रक्रिया

७१३. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२॥

पौनः-पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ।

७१४. गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि परतः। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनः पुनरतिशयेन वा भवतीति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट।

७१५. नित्यं कौटिल्ये गतौ ३।१।२३॥

गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे।

७१६. दीर्घोऽकितः ७।४।८३॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्याद्यङ्यङ्लुकोः। कुटिलं व्रजति-वाव्रज्यते।

बोभूयते—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवतीति विग्रहे भूधातोः 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' इति यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासोकारस्य गुणे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुत्वाल्लटि ङित्वादात्मनेपदे तप्रत्यये शपि अनुबन्धलोपे पररूपे टेरेत्वे उक्तं रूपं सिद्धम्।

अबोभूयिष्ट—भूधातोः 'धातोरेकाचः—' इति यङि 'सन्यङोः' इति द्वित्वे ह्रस्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इति अभ्यासस्य गुणे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लुङि ङित्वादात्मनेपदे तप्रत्यये अटि च्लौ च्लेः सिचि इटि अनुबन्धलोपे 'आतो लोपः' इत्यल्लोपे षत्वे ष्टुत्वे तत्सिद्धिः।

---

७१३. पौनःपुन्य (बार-बार) भृश (अधिकाधिक) अर्थ यदि द्योत्य हो तो हलादि एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता हैं।

७१४. यङ् यदि बाद में हो या यङ्लुक् का विषय रहने पर अभ्यास को गुण होता है।

७९५. कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है, क्रियासमभिहार अर्थ को छोड़कर।

७१६. किद् भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् प्रत्यय पर में हो या यङ्लुक् का विषय हो तब।

७१७. नस्य हलः ६।४।४९॥

यस्येति संघातग्रहणम्। हलः परस्य य-शब्दस्य लोपः स्यादार्धधातुके। आदेः परस्य। अतो लोपः। वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता।

७१८. रीगृदुपधस्य च ७।४।९०॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुकोः। वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवर्तिता।

७१९. क्षुम्नादिषु च ८।४।३९॥

णत्वं न। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते।

॥ इति यङन्तप्रक्रिया ॥

वाव्रजाञ्चक्रे—व्रज्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासकार्ये 'दीर्घोऽकितः' इत्यभ्यासस्य दीर्घे 'सनाद्यन्ताः—' इति धातुत्वाल्लिटि अनेकाच्त्वादाम्प्रत्यये 'आदेः परस्ये'ति सहकारेण 'यस्य हलः' इति यलोपे 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'आमः' इति लिटो लुकि लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटो लस्थाने तप्रत्यये तस्य एशि 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति कृञो द्वित्वे अभ्यासकार्ये मस्यानुस्वारे परसवर्णे यणि 'वाव्रजाञ्चक्रे' इति।

वरीवृत्यते—वृत्धातोर्यङि द्वित्वे अभ्यासत्वे 'उरत्' इत्यत्वे रपरे हलादिशेषे 'रीगृदुपधस्य च' इत्यभ्यासस्य रीगागमे धातुत्वाल्लटि तप्रत्यये शपि पररूपे टेरेत्वे तत्सिद्धिः।

इति 'ललिता' टीकायां यङन्तप्रक्रिया समाप्ता।

---

७१७. हल के बाद यदि य मिले तो उसका लोप हो जाता है आर्धधातुक पर में हो तो।

७१८. यङ् पर में हो या यङ्लुक का विषय हो तो ऋत् उपधावाले धातु (ऋदुपधक) के अभ्यास को रीक् का आगम होता है।

७१९. क्षुम्नादिगणपठित धातुओं के नकार को णकार होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में यङन्तप्रक्रिया समाप्त हुई।

अथ यङ्लुक्प्रक्रिया

७२०. यङोऽचि च २।४।७४॥

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनाऽपि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यादौ पाठाच्छपो लुक्।

७२१ यङो वा ७।३।९४॥

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात्। बोभवीति-बोभोति। बोभूतः।

अदभ्यस्तात्। बोभुवति। बोभवाञ्चकार। बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु-बोभोतु बोभूतात्। बोभूताम्। बोभुवतु। बोभूहि।

बोभवितिः—अतिशयेन पुनः पुनर्वा भवतीति विग्रहे भूधातोर्यङि 'यङोऽचि च' इति द्वित्वापेक्षया आदौ यङो लुकि ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासोकारस्य गुणे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बकारे 'बोभू' इति, तस्माद्धातुत्वाल्लटि तिपि शपि च 'चर्करीतञ्च' इति यङ्लुगन्तस्यादादौ पाठाच्छपो लुपि 'यङो वा' इति पाक्षिके इडागमे अनुबन्धलोपे 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् 'भूसुवोस्तिङि' इति गुणनिषेधस्य यङ्लुकि भाषायामप्रवृत्त्या गुणेऽवादेशे 'बोभवीति' इति। इड् भावपक्षे गुणे 'बोभोति' इति।

बोभूयात्—भू धातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङ्ङन्तत्वाद् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'गुणो यङ्लुको' इत्यभ्यासस्य गुणे 'अभ्यासे चर्च' इति

---

७२०. यङ् का लोप होता है अच् प्रत्यय पर में हो तब।

७२१. यङ् लुगन्त के बाद हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् होता है, विकल्प से।

बोभवानि। अबोभवीत्-अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयुः। बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासुः। गातिस्थेति सिचो लुक्। यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् बुक्। अबोभूवीत्—अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभूवुः। अबोभविष्यत्।

॥ इति यङ्लुक्प्रक्रिया ॥

अभ्यासभकारस्य बत्वे धातुत्वात् विधिलिङि तिपि यासुटि अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपे 'बोभूयात् इति।

अबोभूवुः—भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङ्न्तत्वाद् द्वित्वे अभ्यासत्वे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यभ्यासगुणे 'अभ्यासे चर्च' इति भस्य बत्वे धातुत्वाल्लुङि तत्स्थाने झिप्रत्यये अटि च्लौ च्लेः सिचि 'गातिस्थे'ति सिचो लुकि गुणं बाधित्वा नित्यवाद् वुकि 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति झेर्जुसादेशे सस्य रुत्वे विसर्गे 'अबोभूवुः' इति।

अबोभविष्यत्–भूधातोर्यङि यङो लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङ्न्तत्वाद् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासगुणे 'अभ्यासे चर्च' इति अभ्यासभकारस्य बत्वे धातुत्वाल्लृटि तिपि अडागमे अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे स्यप्रत्यये 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इति इटि अनुबन्धलोपे गुणेऽवादेशे सस्य षत्वे उक्तं रूपं सिद्धम्।

॥ इति 'ललिता' टीकायां यङ्लुक्प्रक्रिया ॥

अथ नामधातवः

४२२. सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात्।

७२३. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७२॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्।

७२४. क्यचि च ७।४।३३॥

अवर्णस्य ईत्स्यात्। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति।

७२५. नः क्ये १।४।१५॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नाऽन्यत्। नलोपः। राजीयति। नान्तमेवेति किम्? वाच्यति। हलि च। गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव। नेह—दिवमिच्छति दिव्यति।

पुत्रीयति—आत्मनः पुत्रमिच्छति इति विग्रहे 'पुत्र अम्' इति सुबन्तात् 'सुप् आत्मनः क्यच्' इति क्यचि अनुबन्धलोपे 'सनाद्यन्ता धातवः' इति धातुसंज्ञायां 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इति अमो लुकि 'क्यचि च' इति अकारस्य ईत्वे 'पुत्रीय' इति तस्माद्धातुत्वाल्लटि तिपि शपि पररूपे 'पुत्रीयति' इति निष्पन्नम्।

वाच्यति—वाचमिच्छतीति विग्रहे द्वितीयान्तात् वाच् शब्दात् क्यचि धातुत्वात्सुपो लुकि 'नः क्ये' इति नान्तस्यैव पदत्वनियमात् 'वाच्' इत्यस्य पदत्वाऽभावात् कुत्वाऽभावे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि पररूपे 'वाच्यति' इति।

---

७२२. इष् धातु के कर्म में तथा इच्छा करनेवाले कर्ता के सम्बन्धिवाचक सुबन्त से इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय होता है।

७२३. धातु एवं प्रातिपदिक का अवयव जो 'सुप्' उसका लोप होता है।

७२४. अवर्ण को 'ईकार' आदेश होता है क्यच् प्रत्यय पर में हो तो।

७२५. क्यच् या क्यङ् प्रत्यय यदि पर में हो तो नान्त की पद संज्ञा होती है।

७२६. क्यस्य विभाषा ६।४।५०॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वाऽऽर्धधातुके। आदेः परस्य। अतो लोपः। तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न। समिधिता। समिध्यिता।

७२७. काम्यच्च ३।१।९॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति। पुत्रकाम्यिता।

७२८. उपमानादाचारे ३।१।१०॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्। पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्।

(वा०)—सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः। अतो गुणे। कृष्ण इवाचरति कृष्णति। स्व इवाचरति स्वति। सस्वौ।

समिधिता—समिधमिच्छति इत्यस्मिन् विग्रहे द्वितीयान्त समिधशब्दात् 'क्यच्' प्रत्ययः धातुत्वात् सुब्लुकि 'नः क्ये' इति नान्तस्यैव पदत्वनियमात् पदत्वाऽभावेन जश्त्वाऽभावे धातुत्वाल्लुटि लुटस्तिबादिकार्ये 'समिध्य ता' इत्यवस्थायामिटि 'क्यस्य विभाषा' इति यकारलोपे 'अतो लोपः' इति अल्लोपे अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाद् लघूपधगुणाऽभावे 'समिधिता' इति। 'यलोपाऽभावपक्षे 'समिध्यिता' इति भवति।

सस्वौ—स्व इव आचरतीति विग्रहे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः'

---

७२६. आर्धधातुक पर में हो तो हल् से परे 'क्यच्' का लोप विकल्प से होता है।

७२७. उक्त विषय में 'क्यच्' प्रत्यय होता है (इषु इच्छायां धातु का कर्म तथा कर्ता का सम्बन्ध इच्छा हो तद्वाचक सुबन्त से इच्छा अर्थ में ही क्यच् प्रत्यय होता है।)

७२८. उपमानार्थक कर्मसंज्ञक सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है।

वा०—आचार अर्थ में प्रातिपदिक मात्र से वैकल्पिक क्विप् प्रत्यय होता है।

७२९. अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६।४।१५॥

अनुनासिकान्तस्योपाधाया दीर्घः स्यात्क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति इदामति। राजेव राजानति। पन्था इव पथीनति।

७३०. कष्टाय क्रमणे ३।१।१४॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्। कष्टाय क्रमते कष्टायते। पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः।

७३१. शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ३।१।१७॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। शब्दं करोति शब्दायते। (ग० सू०) तत्करोति तदाचष्टे—इति णिच्।

(वा०)—प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् इष्टे। यथा–प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लो-

---

इति क्विपि लोपे धातुत्वाल्लिटस्तिपि तिपो णलि द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'सस्व अ' इति दशायाम् 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ 'आत औ णलः' इति णलः औकारे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धौ 'सस्वौ' इति जातम्।

राजानति—राजा इव आचरतीति विग्रहे 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः' इति क्विपि क्विपः सर्वापहारे धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि 'अनुनासिकस्य' इति दीर्घे तत्सिद्धम्।

कष्टायते—'कष्टाय क्रमते' इति विग्रहे चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दात् 'कष्टाय क्रमणे' इति क्यङि धातुत्वात् सुपो लुकि ङित्वादात्मनेपदे लटः स्थाने तप्रत्यये

---

७२९. अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ होता है क्विप् और झलादि कित् ङित् परे।

६३०. चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता है उत्साह अर्थ में।

७३१. कर्मवाचक शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ-शब्दों से करोति अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है।

वा०—प्रातिपदिक से धातु अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय होता है और वह बहुल प्रकार से इष्ठवत् होता है। (इष्ठत्—इष्ठन् प्रत्यय)

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में नामधातुप्रकरण समाप्त हुआ।

प-यणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेशे-भसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः। इत्यल्लोपे। घटं करोत्याचष्टे वा घटयति।

॥ इति नामधातवः ॥

टेरेत्वे शपि पररूपे 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इति दीर्घे उक्तं रूपं सिद्धम्।

॥ इति 'ललिता' टीकायां नामधातवः ॥

अथ कण्ड्वादयः

७३२ः कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे । कण्डूञ् गात्रविघर्षणे । कण्डूयते इत्यादि ।

॥ इति कण्ड्वादयः ॥

---

७३२. कण्ड्वादि गण में पठित धातुओं से स्वार्थ में यक् प्रत्यय नित्य ही होता है ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में कण्ड्वादिप्रकरण समाप्त हुआ ।

अथात्मनेपदप्रक्रिया

७३३. कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम्। व्युतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनमन्यः करोतीत्यर्थः।

७३४. न गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५॥

व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति।

७३५. नेर्विशः १।३।१८॥

निविशते।

७३६. परिव्ययेभ्यः क्रियः १।३।१७॥

परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते।

७३७. विपराभ्यां जेः १।३।१९॥

विजयते। पराजयते।

निविशते—नि उपसर्गपूर्वकाद् विश्धातोरात्मनेपदं स्यात् इत्यर्थक 'नेर्विशः' इति आत्मनेपदे लडादिकार्ये तत्सिद्धिः।

विजयते—विपूर्वक 'जि' धातोः 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदे लडादिके कार्ये विहिते उक्तं रूपं सिद्धम्।

---

७३३. क्रिया का बदलाव (आदान-प्रदान) गम्यमान हो तो कर्ता अर्थ में धातु से आत्मनेपद होता है।

७३४. गत्यर्थक एवं हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है।

७३५. नि उपसर्गयुक्त 'विश्' धातु का प्रयोग जहाँ मिले वहाँ आत्मनेपद होता है।

७३६. परि, वि या अव उपसर्गयुक्त क्रीञ् धातु से आत्मनेपद होता है।

३३७. वि या परा उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु से आत्मनेपद होता है।

७३८. समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२॥
सन्तिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते।

७३९. अपह्नवेज्ञः १।३।४४॥
शतमपजानीते। अपलपतीत्यर्थः।

७४०. अकर्मकाच्च १।३।४५॥
सर्पिषो जानीते। सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इत्यर्थः।

७४१. उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३॥
धर्ममुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः।

७४२. समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४॥
रथेन सञ्चरते।

७४३. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५॥
सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्, तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे। दास्या संयच्छते कामी।

७४४. पूर्ववत्सनः १।३।६२॥
सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। एदिधिषते।

७४५. हलन्ताच्च १।२।१०॥

रथेन सञ्चरते—संपूर्वकात् 'चर्' धातोः 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यनेनात्मनेपदे लडादिकार्ये तत्सिद्धिः।

---

७३८ सम्, अव, प्र, वि उपसर्गपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता है।

७३९. अपह्नव (छिपाना) अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है।

७४०. अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है?

७४१. उत् उपसर्गयुक्त सकर्मक 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है।

७४२. सम् उपसर्गपूर्वक तृतीयान्त युक्त 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है।

७४३. तृतीया विभक्ति चतुर्थी अर्थ में प्रयुक्त रहे तो तृतीयान्त युक्त सम् पूर्वक 'दाण्' धातु से आत्मनेपद होता है।

७४४. सन् से पूर्व जो धातु उसके समान सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है।

७४५. इक् समीपस्थ हल् से झलादि सन् प्रत्यय कित् संज्ञक होता है।

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्स्यात्। निविविक्षते।

७४६. गन्धनाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२॥

गन्धनं—सूचनम्। उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणं-भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपस्कुरुते। सेवते इत्यर्थः। परदारान्प्रकुरुते। तेषु सहसा प्रवर्तते। एधोदकस्योपस्कुरुते। गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते। प्रकथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते। धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्? कटं करोति।

७४७. भुजोऽनवने १।३।६६॥

ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति।

॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥

निविविक्षते—निपूर्वकाद् विश्धातोः सनि 'हलन्ताच्च' इति सनः कित्वाद् गुणाऽभावे 'सन्यङोः' इति द्वित्वे अभ्यासत्वे हलादिशेषे 'व्रश्चे'ति षत्वे षस्य कत्वे सनः षत्वे 'निविविक्ष' इति सन्नन्तस्य धातुसंज्ञायां 'पूर्ववत्सनः' इत्यात्मनेपदे लटस्तप्रत्यये शपि पररूपे टेरेत्वे उक्तं रूपं सिद्धम्।

॥ इति 'ललिता' टीकायां आत्मनेपदप्रकरणम् ॥

---

७४६. गन्धन, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन, उपयोग अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद होता है।

७४७, 'भुज्' धातु से भोजनार्थ में आत्मनेपद होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में आत्मनेपदप्रक्रिया समाप्त हुई।

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

७४८. अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९।।

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ।

७४९. अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०।।

क्षिप प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।

७५०. प्राद्वहः १।३।८१।।

प्रवहति ।

७५१. परेर्मृषः १।३।८२।।

परिमृषति ।

७५२. व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३।।

रमु क्रीडायाम् । विरमति ।

अनुकरोति—अनु उपसर्गपूर्वकात् कृधातोः 'अनुपराभ्यां कृञः' इति परस्मैपदत्वाल्लटस्तिबादिकार्ये तत्सिद्धिः ।

अभिक्षिपति—अभ्युपसर्गात् क्षिप्धातोः 'अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः' इति परस्मैपदत्वाल्लटस्तिबादिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम् ।

प्रवहति—प्र उपसर्गात् वह् धातोः 'प्राद्वहः' इति परस्मैपदत्वाल्लटः स्थाने तिबादिकार्ये तत्सिद्धिः ।

विरमति—वीत्युपसर्गात्—रम् धातोः 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपद-

---

७४८. क्रिया का फल कर्तृगामी हो तथा गन्धनादि अर्थ गम्यमान हो तो अनु और परा उपसर्गयुक्त कृ से परस्मैपद होता है ।

७४९. अभि, प्रति या अति उपसर्गयुक्त क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है ।

७५०. प्र उपसर्ग से परे 'वह्' धातु से परस्मैपद होता है ।

७५१. परि उपसर्ग से पर में मृष् धातु से परस्मैपद होता है ।

७५२. वि, आङ् या परि उपसर्ग से पर में रम् धातु से परस्मैपद होता है ।

७५३. उपाच्च १।३।८४॥

यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥

॥ इति पदव्यवस्था ॥

त्वाल्लिटस्तिपि शपि 'विरमति' इति ।

॥ इति 'ललिता' टीकायां परस्मैपदप्रक्रिया ॥

---

७५३. उप् उपसर्ग से परे 'रम्' धातु से परस्मैपद होता है ।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में परस्मैपदप्रक्रिया समाप्त हुई ।

अथ भावकर्मप्रक्रिया

७५४. भावकर्मणोः १।३।१३॥

भावे कर्मणि च धातोः लस्यात्मनेपदम्।

७५५. सार्वधातुके यक् ३।१।६७॥

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके। भावः—क्रिया, सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते। युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याऽभावात्प्रथमः पुरुषः। तिङ्वाच्यप्रक्रियाया अद्रव्यरूपत्वे द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किं त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे।

७५६ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाऽङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः। भाविता-भविता। भाविष्यते—भविष्यते। भूयताम्।

भूयते—भूधातोर्भावे लटि 'भावकर्मणो' इत्यात्मनेपदे लटस्तप्रत्यये टेरेत्वे सार्वधातुकसंज्ञायां 'सार्वधातुके यक्' इति यकि कित्त्वाद् गुणाभावे 'भूयते' इति।

भाविता—भूधातोर्भावे लुटि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे लुटस्तप्रत्यये तासि डादेशे डित्त्वसामर्थ्याद्भस्याऽपि टेर्लोपे 'स्यसिच् सीयुट्तासिषु'—इति विभाषया

---

७५४. धातु के लकार को आत्मनेपद होता है भाव एवं कर्म में प्रत्यय होने पर।

७५५. भाव एवं कर्मवाची सार्वधातुक यदि पर में हो तो धातु से। यक् प्रत्यय होता है।

७५६. स्य, सिच्, सीयुट् या तास् प्रत्यय पर में हो और लकार यदि भाव या कर्म में हुआ है तब उपदेश में जो अच् तदन्त जो धातु उनको हो एवं हन्, ग्रह्, दृश् धातुओं को विकल्प से चिण्वत् 'चिण् के समान अङ्गकार्य होता है और स्यादियों को इट् का आगम होता है।

अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट—भविषीष्ट ।

७५७. च्विण् भावकर्मणोः ३।१।३६॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे । अभावि । अभाविष्यत । अभविष्यत ।

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्कर्मकः । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम् - अन्वभविषाताम् । णिलोपः । भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । चिण्वदिट् । आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वाण्णिलोपः । भाविता-भावयिता । भाविष्यते—भावयिष्यते । अभाव्यत । भाव्येत । भाविषीष्ट–भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम्—अभावयिषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । बोभूय्यते । बोभूयते । अकृत्सार्वधातुकयोदीर्घः । स्तूयते विष्णुः । स्ताविता-स्तोता । स्ताविष्यते-स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम् ।

चिण्वद्भावे इटि च कृते चिण्वद्भावाद् वृद्धौ आवादेशे 'भाविता' इति । चिण्वदभाव-पक्षे इटि गुणे अवादेशे भवितेति । ण्यन्तात् 'भावि' इत्यस्मात् कर्मणि प्रत्ययेऽपि 'भाविता' इति भवति ।

भाविषीष्ट—भूधातोर्भावे आशीर्लिङि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदत्वाल्लिङ-स्तप्रत्यये सीयुटि 'सुट तिथोः' इति सुटि 'लोपो व्योर्वलि' इति यलोपे 'स्यसिच्सीयुट्-तासिषु' इति विभाषया चिण्वद्भावे इटि च कृते वृद्धौ आवादेशे उभयोः सका-रयोः षत्वे 'ष्टुत्वे' भविषीष्ट' इति ।

भावयाञ्चक्रे—ण्यन्ताद् 'भावि' इस्यस्माद्धातोः कर्मणि लिटि कास्यनेकाजि-त्यामि णिलोपं प्रबाध्य 'अयामन्ते'ति णेरयादेशे 'आमः' इति लिटो लुकि आमन्त-लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे लिटस्तादेशे तस्य एशि द्वित्वादिकार्ये मस्यानुस्वारे परसवर्णे यणि 'भावयाञ्चक्रे' इति ।

अस्तावि—'ष्टु' इत्यत्र षस्य सत्वे ष्टुत्वनिवृत्तौ 'स्तु' इति तस्मात् कर्मणि

---

७५७. च्लि के स्थान में चिण् होता है भाव-कर्म-वाची 'त' शब्द पर में हो तब ।

ऋ गतौ। गुणोऽर्तीति गुणः अर्यते। स्मृ स्मरणे। स्मर्यते। सस्मरे। उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता-अर्ता। स्मारिता-स्मर्ता। अनिदितामिति नलोपः। स्रस्यते इदितस्तु नन्द्यते। सम्प्रसारणम्–इज्यते।

७५८. तनोतेर्यकि ६।४।४४॥

तेनोतेर्यकि आकारोऽन्तादेशो वा स्यात्। तायते-तन्यते।

७५९. तपोऽनुतापे च ३।१।६५॥

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। घुमास्थेतीत्त्वम्। दीयते। धीयते। ददे।

लुङि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदत्वाल्लुङ्स्तप्रत्यये अटि च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि वृद्धौ अवादेशे 'चिणो लुक' इति तस्य लुकि 'अस्तावि' इति।

आरिता—ऋधातोः कर्मणि लुटि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदत्वाल्लुटः स्थाने तप्रत्यये तासि 'स्यसिच्' इति चिण्वदिटि चिण्वद्भावात् 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे तस्य डादेशे डित्त्वादभस्यापि टेर्लोपे 'आरिता' इति। चिण्वदिडभावपक्षे गुणे 'अर्ता' इति।

इज्यते—यज्धातोः कर्मणि लटि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे लटस्तप्रत्यये टेरेत्वे 'सार्वधातुके यक्' इति यकि 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'इज्यते' इति।

तायते—तन् धातोः कर्मणि लटस्तप्रत्यये यकि 'तनोतेर्यकि' इत्यात्वे सवर्णदीर्घे 'तायते' इति। आत्वाऽभावपक्षे 'तन्यते' इति।

अन्वतप्त—'अनु' पूर्वात् तप्धातोः कर्मणि लुङस्तप्रत्यये अटि यणि च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि प्राप्ते 'तपोऽनुतापे च' इति तन्निषेधे च्लेः सिचि 'झलो झलि' इति सलोपे 'अन्वतप्त पापेन' इति। पापेनेति कर्तरि तृतीया।

---

७५८. तन धातु को आकार अन्तादेश विकल्प से होता है यक् प्रत्यय पर में हो तब।

७५९. कर्म ही हो कर्त्ता जिसमें ऐसे या अनुपात अर्थ गम्यमान रहने पर तप् धातु के बाद च्लि उसको चिथ् नहीं होता है।

७६०. आतो युक् चिण्कृतोः ७।३।३३॥

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। दायिता-दाता। दायिषीष्ट-दासीष्ट। अदायिषाताम्। भज्यते।

७६१. भञ्जेश्च चिणि ६।४।३३॥

न लोपो वा स्यात्। अभाजि-अभञ्जि। लभ्यते।

७६२. विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात्। अलम्भि-अलाभि।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

ननु अनुपूर्वस्य तपेः पश्चात्तापार्थकत्वे असगतिः नहि पापस्य सूर्यादिवत्तपनशक्तिरस्ति, शोकार्थकत्वे तु अकर्मकत्वापत्त्या कर्मणि लकार एव च स्यादिति चेन्न, अनुपूर्वकस्य तप्धातोः उपसर्गवशात् अभिहननार्थके प्रवर्तमानत्वेन सकर्मकत्वस्य आगमरूपकत्वात्।

दायिषीष्ट—दाधातोः कर्मणि आत्मनेपदे आशिर्लिङस्तप्रत्यये सीयुटि सुटि 'स्यसिच्सीयुट्तासिषु—' इति चिण्वदिटि 'आतो युक् चिण्कृतोः' इति युकि द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे 'दायिषीष्ट' इति। पक्षे 'दासीष्ट' इति।

अभाजि—भञ्ज्धातोः कर्मणि आत्मनेपदे लुङस्तप्रत्यये अटि च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि 'भञ्जेश्च 'चिणि' इति पाक्षिके नलोपे 'अत उपधायाः' इति वृद्धौ 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'अभाजि' इति।

अलम्भि—लभ्धातोः कर्मणि आत्मनेपदे लुङ्स्तप्रत्यये अटि च्लौ 'चिण् भावकर्मणोः' इति च्लेश्चिणि 'चिणो लुक्' इति तलोपे 'विभाषा चिण्णमुलोः' इति नुमि अनुस्वारे परसवर्णे 'अलम्भि' इति। नुमभावे उपधावृद्धौ 'अलाभि' इति।

इति 'ललिता' टीकायां भावकर्मप्रक्रिया।

---

७६०. आदन्त धातुओं को युक् का आगम होता है चिण् एवं ञित् णित् या कृत् प्रत्यय पर में हो तो।

७६१. भञ्ज् धातु के नकार का लोप होता है विकल्प से चिण् पर में हो तो।

७६२. लभ् धातु को नुमागम होता है विकल्प से चिण् या णमुल् प्रत्यय पर में हो तो।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में भावकर्मप्रक्रिया समाप्त हुई। ●

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः।

७६३. कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत्स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण् चिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे तु भिद्यते काष्ठेन।

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥

पच्यते फलम्—गोपालः फलं पचतीत्यत्र गोपालस्य कर्तृत्वेन अविवक्षायां फलरूपस्य कर्मण एव कर्तृत्वेन विवक्षायां 'पच्' धातोरकर्मकत्वात् कर्तरि लटि लटा कर्तुरुक्तत्वात् प्रथमायां 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः' इति फलस्य कर्तुः कर्मवद्भावात् 'भावकर्मणोः' इति आत्मनेपदे लटस्तप्रत्यये टेरेत्वे 'सार्वधातुके यक्' इति यकि 'पच्यते फलम्' इति सिद्धम्।

भिद्यते काष्ठम्—रथकारः काष्ठं भिनत्तीत्यत्र रथकारस्य कर्तृत्वेन अविवक्षायां काष्ठरूपस्य कर्मण एव कर्तृत्वेन विवक्षायां 'भिद्' धातोरकर्मकत्वात् कर्तरि लटि लटा कर्तुरुक्तत्वाद् प्रथमायां 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' इति काष्ठस्य कर्तुः कर्मवद्भावाद् 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे लटः स्थाने तप्रत्यये टेरेत्वे 'सार्वधातुके यक्' इति यकि 'भिद्यते काष्ठम्' इति जातम्। (भावे तु काष्ठस्य कर्तुरनुक्तत्वात्तत्र तृतीयायां 'भिद्यते काष्ठेन' इति भवति।

॥ इति 'ललिता' टीकायां कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥

यदा—सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाते हैं और उनसे भाव तथा कर्ता में लकार होता है जब कर्म की ही कर्तृत्वेन विवक्षा को जाय तब।

७६३. कर्मस्थान क्रिया के तुल्य क्रियावाला कर्ता कर्म के सदृश होता है। अर्थात् कर्म में ही कर्तृत्व की इच्छा।

इस प्रकार 'ललिता' हिंदी टीका में कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्त हुई।

●

अथ लकारार्थप्रक्रिया

७६४. अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। वस निवासे। स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। एवं 'बुध्यसे' 'चेतयसे' इत्यादिप्रयोगेऽपि।

७६५. न यदि ३।२।११३॥

यद्योगे उक्तं न। अभिजानामि कृष्ण! यद्वने अभुञ्ज्महि ?

७६६ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः। कदाऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि; अयमागमं वा। कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गमिष्यामि। वा।

स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः—स्मरसीत्युपपदात् 'वस्' धातोर्भूतानद्यतने लङि प्राप्ते तम्प्रबाध्य 'अभिज्ञावचने लृट्' इति लृटि तत्स्थाने मसि 'स्यतासी लृलुटोः' इति स्यप्रत्यये 'सः स्यार्धधातुके' इति सस्य तकारे 'अतो दीर्घो यञि' इति दीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धिः।

कदा आगतोऽसि—कदा आगतोऽसि ? इति प्रश्ने अयमागच्छामि इत्युत्तरम्। अत्र गम्धातोर्भूते लुङि प्राप्ते वर्तमानसामीप्यात्तं प्रबाध्य 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा' इति वर्तमानवद्भावात् लटि तिबादिकार्ये 'अयम् आगच्छामि' इति भवति। लटोऽभावपक्षे तु लुङि 'अयम् आगमम्' इत्यपि सिद्धं भवति।

---

७६४. स्मृतिबोधक शब्द धातु के उपपद में रहे तो भूत अनद्यतन अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है।

७६५. यक् शब्द के योग में धातु से लृट् लकार होता है स्मृतिबोधक पद उपपद में हो तो।

७६६. भूतकाल में स्म के योग में धातु से लट् लकार होता है लिट् के विषय में। (लिट् का बाधक है)

७६७. हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६॥

हेतुहेतुमतोर्लिङ् वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह हन्तीति पलायते।

विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं-नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। इहाऽऽसीत। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। सम्प्रश्नः सम्प्रसारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्? प्रार्थनं याच्ञा। भो भोजनं लभेय। एवं लोट्।

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया ॥

॥ इति तिङन्तप्रकरणम् ॥

कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्—अत्र कृष्णनमस्कारः सुखहेतुरिति हेतुहेतुमद्भावसत्त्वात् 'नम्' धातोः 'या' धातोश्च भविष्यति लृटि प्राप्ते तम्बाधित्वा 'हेतुहेतुमतोर्लिङ्' इति लिङि तिबादिकार्ये तत्सिद्धिः।

॥ इति 'ललिता' टीकायां लकारार्थप्रक्रिया ॥

॥ इति तिङन्तप्रकरणम् ॥

---

७६७. कार्य-कारणभाव अर्थ में वर्तमान जो धातु उससे भविष्यत् अर्थ में विकल्प से लिङ् लकार होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में लकारार्थप्रक्रिया समाप्त हुई।

●

अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया

७६८. धातोः ३।१।९१॥

आतृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङिति कृत्संज्ञा।

७६९. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४॥

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

७७०. कृत्याः ३।१।९५॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

७७१. कर्तरि कृत् ३।४।६७॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते—

७७२. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

७७३. तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च। चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया।

एधितव्यम्—एधधातोः 'कर्तरि कृत्' इति सूत्रं प्रबाध्य 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' इति नियमाद्भावे 'तव्यतव्यानीयरः' इति तव्यप्रत्यये 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'

---

७६८. 'धातोः' सूत्र से लेकर तृतीय अध्याय के समाप्ति पर्यन्त जितने प्रत्यय होंगे वे धातु से परे होंगे।

७६९. 'धातोः' इस सूत्र के अधिकार में असमानरूप जो अपवाद प्रत्यय वह उत्सर्ग का बाधक विकल्प से होता है 'स्त्रियाम्' सूत्र में कहे गये अधिकार को छोड़-कर।

७७०. 'ण्वुलतृचौ' इस सूत्र से पूर्व के प्रत्ययों की 'कृत्य' संज्ञा होती है।

७७१. कर्त्ता में कृत्य प्रत्यय होता है।

७७२. कृत्य, क्त एवं खलर्थ प्रत्यय भाव एवं कर्म में होता है।

७७३. धातु से तव्यत्, तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

(वा०)—केलिमर उपसंख्यानम् ।

पचेलिमा माषाः । पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमाः सरलाः । भेतव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ।

७७४. कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३॥

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ।

७७५. अचो यत् ३।३।९७॥

अजन्ताद्धातोर्यत् । चेयम् ।

७७६. ईद्यति ६।४।३५॥

यति परे आत ईत्स्यात् । देयम् । ग्लेयम् ।

७७७. पोरदुपधात् ३।१।९८॥

पवर्गान्ताददुपधाद्यत्स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् ।

इति इटि 'एधितव्य' इति स्थिते 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ 'भावे औत्सर्गिकं क्लीबत्वम्' इति क्लीबत्वात् सोरमि पूर्वरूपे 'एधितव्यम्' इति ।

चेयम्—चेतुं योग्यं चेयम् । चिधातोः 'अचो यत्' इति यत्प्रत्यये 'आर्धधातुकं शेषः' इति स्यार्धधातुकत्वे गुणे कृदन्तत्वात् सौ सोरमि पूर्वरूपे तत्सिद्धिः ।

ग्लेयम्—ग्लातुं योग्यं ग्लेयम् । ग्लैधातोः'अचो यत्' इति भावे यत्प्रत्यये 'आदेच उपदेशेऽशिति' इति ग्लैधातोराकारान्तादेशे 'ईद्यति' इति ईत्वे तत आर्धधातुकत्वात् गुणे कृदन्तत्वात् सौ अमि पूर्वरूपे 'ग्लेयम्' इति ।

वा०—केलिमर प्रत्यय धातु से होता है—ऐसा समझे ।

७७४. बहुलता से कृत्य एवं ल्युट् प्रत्यय होते हैं । बाहुलक चार प्रकार का होता है ।

७७५. अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है ।

७७६. यत् प्रत्यय पर में हो तो आदन्त धातु के आकार को ईकार आदेश होता है ।

७७७. अदुपध जो पवर्गान्त धातु उससे यत् प्रत्यय होता है ।

७७८. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ३।१।१०९॥

एभ्यः क्यप् स्यात् ।

७७९. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१॥

इत्यः । स्तुत्यः । शासु अनुशिष्टौ ।

७८०. शास इदङ्हलोः ६।४।३४॥

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति । शिष्यः। वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः ।

७८१. मृजेर्विभाषा ३।१।११३॥

मृजेः क्यब्वा स्यात् । मृज्यः ।

७८२. ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् । कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ।

७८३. चजोः कुघिण्यतोः ७।३।५२॥

चजोः कुत्वं स्याद्घिति ण्यति च परे ।

शिष्यः—शासितुं योग्यः शिष्यः । शास्धातोः 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' इति कर्मणि क्यपि 'शास इदङ्हलोः' इत्युपधाया इत्वे 'शासिवसिघसीनां च' इति सस्य षत्वे विभक्तिकार्ये 'शिष्यः' इति ।

आदृत्यः—आदर्तुं योग्यः—आदृत्यः । 'आङ्' उपसर्गकदृधातोः 'एतिस्तुशास्' इति क्यपि 'ह्रस्वस्य' इति तुकि विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

कार्यम्—कर्तुं योग्यम् कार्यम् । कृधातोः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत्प्रत्यये 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

---

७७८. इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ एवं जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है ।

७७९. ह्रस्व को तुक का आगम होता है पित् एवं कृत् प्रत्यय पर हो तब ।

७८०. शास् धातु की उपधा को इकारादेश होता है अङ् पर में हो या हलादि कित् ङित् पर में हो तब ।

७८१. मृज् धातु से विकल्प से 'क्यप्' प्रत्यय होता है ।

७८२. ऋवर्णान्त एवं हलन्त धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है ।

७८३. च एवं ज को कुत्व होता है घित् या णित् प्रत्यय पर में हो तब ।

७८४. मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४॥
मृजेरिको वृद्धि स्यात्सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।
७८५. भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९॥
भोग्यमन्यत्।

॥ इति कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ॥

मार्ग्यः—मार्जितुं योग्यः मृज्यः, मार्ग्यः। मृज् धातोः 'मृजेर्विभाषा' इति विकल्पेन क्यपि कित्वाद् गुणाऽभावे विभक्तिकार्ये 'मृज्यः' इति। क्यपोऽभावे 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यति 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' इति जस्य कुत्वे 'मृजेर्वृद्धिः' इति वृद्धौ रपरत्वे विभक्तिकार्ये 'मार्ग्य' इति सिद्धम्।

॥ इति 'ललिता' टीकायां कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ॥

---

७८४. मृज् धातु के इक् की वृद्धि होती है सार्वधातुक पर में हो तो।
७८५. भक्षण अर्थ में कुत्वाभाव का निपातन होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में कृत्यप्रक्रिया समाप्त हुई॥

अथ पूर्वकृदन्तम्

७८६. ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३॥

धातोरेतौ स्तः। कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे।

७८७. युवोरनाकौ ७।१।१ ॥

'यु' 'वु' एतयोरनाऽकौ स्तः। कारकः। कर्त्ता।

७८८. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४॥

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। पचादिराकृतिगणः।

७८९. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३।१।१३५॥

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

७९०. आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६॥

प्रज्ञः। सुग्लः।

कारकः—करोतीति' कारकः। कृधातोः 'ण्वुल्तृचौ' इति कर्तरि अर्थे ण्वुलि अनुबन्धलोपे 'युवोरनाकौ' इति 'वु' इत्यस्य अकादेशे 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धौ रपरत्वे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'कारकः' इति।

नन्दनः—नन्दयतीति नन्दनः। 'टुनदि समृद्धौ' इत्यस्माद्धातोः इदित्वान्नुमि णिचि नन्दि' इति तस्मात् 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इति ल्युप्रत्यये अनुबन्धलोपे 'युवोरनाकौ' इति योरनादेशे णिलोपे विभक्तिकार्ये 'नन्दनः' इति।

प्रज्ञः—प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः। प्रोपसर्गक ज्ञाधातोः 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्यये 'आतो लोप इटि च' इत्यालोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

---

७८६. कर्त्ता अर्थ में धातु से ण्वुल् एवं तृच् प्रत्यय होते है।

७८७. 'यु' को अन एवं 'वु' को अक आदेश होते हैं।

७८८. नन्द्यादि धातु से ल्यु, ग्रह्यादि से णिनि एवं पचादि धातु से अच् प्रत्यय होता है।

७८९. इगुपध एवं ज्ञा, प्री, कृ धातुओं से 'क' प्रत्यय होता है।

७९०. उपसर्गयुक्त आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है।

७९१. गेहे कः ३।१।१४४॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

७९२. कर्मण्यण् ३।२।१॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुभं करोतीति कुम्भकारः।

७९३. आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। आतो लोप इटि च। गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्? गोसन्दायः।

(वा०) मूलविभुजादिभ्यः कः। मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः।

७९४. चरेष्टः ३।२।१६॥

अधिकरण उपपदे। कुरुचरः।

७९५. भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७॥

भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्। आदायचरः।

७९६. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्।

भिक्षाचरः—भिक्षां चरतीति विग्रहे 'भिक्षासेनादायेषु च' इति टप्रत्यये 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्याम् 'उपपदमतिङ्' इति समासे विभक्तिकार्ये 'भिक्षाचरः' इति।

---

७९१. गेह, यदि कर्ता हो तो ग्रह् धातु से 'क' प्रत्यय होता है।

७९२. पदसमीपस्थ 'कर्मकारक' यदि हो तो धातु से अण् होता है।

७९३. आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है उपसर्गभिन्न कर्म उपपद रहे तो।

वा०—विभुजादिगण पठित मूल धातुओं से 'क' प्रत्यय होता है।

७९४. चर् धातु से ट प्रत्यय होता है अधिकरण उपपद रहने पर।

७९५. भिक्षा, सेना या आदाय शब्द उपपद रहने पर चर् धातु से 'ट' प्रत्यय होता है।

७९६. कृ धातु से ट प्रत्यय होता है हेतु ताच्छील्य या आनुलोम्य अर्थ द्योत्य हो तो।

७९७. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६॥

आदुत्तरस्याऽनव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात् करोत्यादिषु परेषु। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरी। वचनकरः।

७९८. एजेः खश् ३।२।२८॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्।

७९९. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य। शित्त्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः।

८००. प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८॥

प्रियंवदः। वशंवदः।

८०१. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः।

यशस्करी—विद्यायाः यशो हेतुत्वात् यशः करोतीति विग्रहे कृधातोः 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' इति टप्रत्यये गुणे रपरे 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठ्यां 'गतिकारके'ति प्रागेव 'यशस् अस् कर' इति स्थिते 'अतः कृकमि—' इति विसर्गस्य सत्वे स्त्रीत्वविवक्षायां 'टिड्ढाणञ्'—इति टित्त्वाद् ङीपि भत्वाद् 'यस्येति च' इत्यलोपे ङ्यन्तत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे उक्तं रूपं सिद्धम्।

जनमेजयः—जनमेजयतीति विग्रहे ण्यन्तादेज्धातोः। 'एजेः खश्' इति खशि अनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां शपि गुणे अयादेशे पूर्वरूपे कर्मणि षष्ठ्यां 'जन अस् एजय' इत्यलौकिविग्रहे सुबुत्पत्तेः प्रागेव उपपदसमासे सुब्लुकि 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमि विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

---

७९७. अवर्ण से परे अव्ययभिन्न विसर्ग को नित्य सकार आदेश होता है समासकर्तव्यता में कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा या कर्णी शब्द पर में हों तब।

७९८. खश् प्रत्यय ण्यन्त एज् धातु से होता है।

७९९. अव्यय को छोड़कर खित् प्रत्ययान्त धातु पर में हो तो अरुष्, द्विषत् एवं अजन्त को मुम् का आगम होता है।

८००. वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है प्रिय या वश उपपद हो तब।

८०१. धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप् एवं विच् प्रत्यय होता है।

८०२ नेड् वशि कृति ७।२।८॥

वशादेः कृतः इण् न स्यात् । शृ हिंसायाम् । सुशर्मा । प्रातरित्वा ।

८०३. विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१॥

अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात् । विजायते इति विजावा । ओणृ अपनयने । अवावा । विच् । रुष रिष हिंसायाम् । रोट् । रेट् । सुगण् ।

८०४. क्विप् च २।२।७६॥

अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ।

८०५ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिरस्ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी ।

८०६. मनः ३।२।८२॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्शनीयमानी ।

सुशर्मा—सुष्ठु शृणोतीति विग्रहे सुपूर्वकात् शृधातोः 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति मनिन् प्रत्यये अनुबन्धलोपे गुणे रपरत्वे 'नेड्वशि कृति' इतीड्निषेधे सौ दीर्घे सुलोपे 'सुशर्मा' इति ।

अवावा—ओणृधातोः 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति वनिपि 'विड्वनोः' इत्यात्वे अवादेशे 'अवावन्' इति, तस्मात् सौ दीर्घे सुलोपे नलोपे 'अवावा' इति ।

उखास्रत्—उखायाः स्रंसते इति विग्रहे 'क्विप् च' इति क्विपि सर्वापहारे 'अनिदिताम्—' इति नलोपे प्रातिपदिकत्वात् सौ पंचमीसमासे सुब्लुकि एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात् सौ 'वसुस्रंसु—' इति दत्वे सुलोपे चर्त्वे तत्सिद्धिः ।

---

८०२. वशादि कृत् को इट् का आगम नहीं होता ।

८०३. विट् या वन् प्रत्यय पर में रहे तो अनुनासिक के स्थान में आकार आदेश होता है ।

८०४. धातु से क्विप् प्रत्यय भी होता है ।

८०५. ताच्छील्य अर्थ में धातु से णिनि प्रत्यय होता है जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहते ।

८०६. मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है सुबन्त उपपद रहते ।

८०७. आत्ममाने खश्च ३।२।८३॥

स्वकर्मके मनने वर्त्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् । चाण्णिनिः । पण्डितम्मन्यः । पण्डितमानी ।

८०८. खित्यनव्ययस्य ६।३।६६॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः । ततो मुम् । कालिम्मन्या ।

८०९. करणे यजः ३।२।८५॥

करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः स्यात्कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ।

८१०. दृशेः क्वनिप् ३।२।९४॥

कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान्—पारदृश्वा ।

८११. राजनि युधि कृञः ३।२।९५॥

क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवात् राजयुध्वा । राजकृत्वा ।

८१२. सहे च ३।२।९६॥

कर्मणीति निवृत्तम् । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहकृत्वा ।

कालिम्मन्या—कालीमात्मानं मन्यते इति विग्रहे 'आत्ममाने खश्च' इति खशि श्यनि पररूपे कर्मषष्ठ्यामुपपदसमासे सुब्लुकि 'खित्यनव्ययस्य' इति ह्रस्वे 'अरुर्द्विष–' इति मुमि अजन्तत्वेन स्त्रीत्वाट्टापि विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

---

८०७. स्वकर्म मनन 'अहङ्कार' में वर्तमान मन् धातु से खश् प्रत्यय होता है सुबन्त उपपद रहते और चकारात् णिनि प्रत्यय भी होता है ।

८०८. अव्ययभिन्न पूर्वपद को ह्रस्व होता है खिदन्त पर में हो तो ।

८०९. यज् से णिनि प्रत्यय कर्ता में होता है, करण उपपद हो एवं भूतकालिक अर्थ गम्यमान हो तो ।

८१०. दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है भूतकाल अर्थ में कर्म उपपद रहते ।

८११. भूतकाल अर्थ में युध् एवं कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है कर्मसंज्ञक राजन् शब्द उपपद रहे तो ।

८१२. युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय सह उपपद रहने पर भी होता है ।

८१३. सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७॥

८१४. तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४॥

ङेरलुक्। सरसिजम्। सरोजम्।

८१५. उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९॥

प्रजा स्यात्सन्ततौ जने।

८१६. क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

८१७. निष्ठा ३।२।१०२॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः। कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

८१८. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्। ॠत् इत्। रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

सरसिजम्—सरसि जातमिति विग्रहे सप्तम्यन्तसरःशब्दोपपदाज्जनधातोः 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डप्रत्यये डित्वाट्टिलोपे उपपदसमासत्वात् सप्तम्याः लुकि प्राप्ते 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति तन्निषेधे कृदन्तत्वात् सौ सोरमि पूर्वरूपे 'सरसिजम्' इति। लुकि तु रुत्वे गुणे 'सरोजम्' इति।

शीर्णः—शॄ धातोः कर्मणि 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये 'ॠत इद्धातोः' इति इत्वे

---

८१३. सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन् धातु से ड प्रत्यय होता है।

८१४. सप्तमी एकवचन का अलुक (लोप का अभाव) होता है विकल्प से तत्पुरुष समास में कृत्प्रत्ययान्त उत्तरपद पर में हो तो।

८१५. उपसर्ग उपपद रहने पर संज्ञार्थ में ड प्रत्यय होता है जन् धातु से।

८१६. क्त एवं क्तवतु प्रत्यय निष्ठासंज्ञक होते हैं।

८१७ निष्ठासंज्ञक प्रत्यय भूतकालार्थ वृत्ति धातु से होते हैं।

८१८. रेफ और दकार के बाद निष्ठा के त को न हो तथा निष्ठापूर्व धातु सम्बन्धी दकार को भी नकार होता है।

८१९. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३॥

निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

८२०. ल्वादिभ्यः ८।२।४४॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या धातुः। ग्रहिज्येति संप्रसारणम्।

८२१. हलः ६।४।२॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

८२२. ओदितश्च ८।२।४५॥

भुजो–भुग्नः। टुओश्वि–उच्छूनः।

८२३. शुषः कः ८।२।५१॥

निष्ठातस्य कः। शुष्कः।

रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घे 'रदाभ्याम्' इति नत्वे णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

लूनः—अलावीति-लूनः। लूधातोः कर्मणि क्तप्रत्यये 'ल्वादिभ्यः' इति निष्ठातकारस्य नकारे विभक्तिकार्ये 'लूनः' इति।

उच्छूनः—उदश्वित् इति उच्छूनः। उत्पूर्वकात् 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' इति धातोः 'निष्ठा' इति क्तप्रत्यये 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे 'श्विदितो निष्ठायाम्' इतीण्निषेधे 'हलः' इति दीर्घे 'ओदितश्च' इति निष्ठा तकारस्य नत्वे श्चुत्वे छत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

---

८१९. संयोग हो आदि में जिसके ऐसे यण्वान् अकारान्त धातु से पर में निष्ठा के तकार को भी नकार होता है।

८२०. लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से पर में निष्ठासम्बन्धी तकार को नकार हो जाता है।

८२१. अङ्गावयव हल् से परे जो सम्प्रसारण तदन्त को दीर्घ होता है।

८२२. ओदित धातु के बाद में भी निष्ठा के त को न होता है।

८२३. सुष् धातु के बाद निष्ठा के तकार को ककार आदेश होता है।

८२४. पचो वः ८।२।५२॥

पक्वः। क्षै क्षये।

८२५. क्षायो मः ८।२।५३॥

क्षामः।

८२६. निष्ठायां सेटि ६।४।५२॥

णेर्लोपः। भावितः। भावितवान्। दृह हिंसायाम्।

८२७. दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०॥

स्थूले बलवति च निपात्यते।

८२८. दधातेर्हिः ७।४।४२॥

तादौ किति। हितम्।

८२९. दोदद् घोः ७।४।४६॥

घुसंज्ञकस्य 'दो' इत्यस्य दद् स्यात् किति। चर्त्वम्। दत्तः।

८३०. लिटः कानज्वा ३।२।१०६॥

८३१. क्वसुश्च ३।२।१०७॥

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः। तङानावात्मनेपदम्। चक्राणः।

भावितः—चन्द्रशेखरः गोपालम् अबीभवत्, चन्द्रशेखरेण गोपालः अभावि-इत्यर्थे 'भावितः' इति। भावयतेः 'निष्ठा' इति कर्मणि क्तप्रत्यये इटि 'निष्ठायां सेटि' इति णेर्लोपे विभक्तिकार्ये 'भावितः' इति।

---

८२४. पच् धातु के बाद निष्ठा के तकार को 'व' आदेश होता है।

८२५. क्षै धातु के बाद निष्ठा के तकार को मकार होता है।

८२६. णि का लोप सेट् इट्सहित निष्ठासंज्ञक-प्रत्यय पर में हो तो होता है।

८२७. दृढ का निपातन स्थूल एवं बलवान् अर्थ में हो।

८२८. तकार हो आदि में जिसके ऐसा कित् पर में हो तो धा धातु को हि आदेश होता है।

८२९. घुसंज्ञक दा धातु को दध् आदेश होता है तादि कित् पर हो तो।

८३०–८३१. लिट् के स्थान से विकल्प से कानच् एवं क्वसु प्रत्यय होता है।

८३२. म्वोश्च ८।२।६५॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।

८३३. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य।

८३४. आने मुक् ७।२।८२॥

अदन्ताऽङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य, लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात्प्रथमासमानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् द्विजः।

८३५. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।

जगन्वान्—जगाम इति। 'जगन्वान्'। गम्धातोर्लिटि 'क्वसुश्च' इति लिटः स्थाने क्वसुप्रत्यये द्वित्वादिकार्ये 'जगम् वस्' इति स्थिते 'म्वोश्च' इति मस्य नत्वे कृदन्तत्वात् सौ उगित्वान्नुमि 'सान्त महतः संयोगस्य' इति मस्य नत्वे कृदन्तत्वात् सौ उगित्वान्नुमिन 'सान्त महतः संयोगस्य' इति दीर्घे सुलोपे संयोगान्तलोपे 'जगन्वान् इति।

सन द्विजः—'वर्तमाने लट्' इत्यतो लडित्यनुवर्तमाने 'लटः शतृशानचाविति सूत्रे पुनर्लग्रहणात् प्रथमासमानाधिकरणेऽपि क्वचित् शतृशानचोर्विधानात् 'अस्' धातोर्लटः शतृप्रत्यये शपो लुकि 'श्नसोरल्लोपः' इत्यल्लोपे प्रातिपदिकत्वात् सौ नुमि सुलोपे संयोगान्तलोपे 'सन्' इति।

---

८३२. मकारान्त धातु को नकार आदेश होता है मकार या वकार पर हों तब।

८३३. लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् प्रत्यय होते हैं, अप्रथमान्त के साथ समानाधिकरण्य हो तो।

८३४. अदन्त अङ्ग को मुम् का आगम होता है आन पर हो तो।

८३५. विद् धातु से पर में रहनेवाला शतृ के स्थान में विकल्प से वसु आदेश होता है।

८३६. तौ सत् ३।२।१२७॥

तौ=शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

८३७. लृटः सद्वा ३।३।१४॥

(लृटः शतृशानचौ वास्तः। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाऽप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।

८३८. आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

८३९. तृन् ३।२।१३५॥

कर्ता कटान्।

८४०. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५॥

८४१. षः प्रत्ययस्य १।३।६॥

प्रत्ययस्याऽऽदिः ष इत्संज्ञः स्यात्। जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

जल्पाकः – जल्पतीति विग्रहे जल्पधातोः 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्' इति षाकनि 'षः प्रत्ययस्य' इति प्रत्ययस्यादिषकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धिः।

---

८३६. शानच् 'सत्' संज्ञक होते हैं।

८३७. लृट् के स्थान में सत् संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होता है।

८३८. इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय पर्यन्त कहे जानेवाले सभी प्रत्यय तच्छील आदि अर्थों में होते हैं।

८३९. तृन्प्रत्यय तच्छील अर्थ में धातुओं से होता है।

८४०. तच्छीलादि अर्थों में षाकन् प्रत्यय जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट एवं वृङ् धातुओं से होता है।

८४१. प्रत्यय के आदि में रहनेवाला मूर्धन्य षकार की 'इत्' संज्ञा होती है तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप भी।

८४२. सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८॥

चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ।

८४३. भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७॥

विभ्राट् । भाः ।

८४४. राल्लोपः ६।४।२१॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्याऽपकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः । ग्रावस्तुत् ।

(वा०) क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च । वक्तीति वाक् ।

८४५. च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् 'श्' 'ऊठ्' इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । पृच्छतीति प्राट् । आयतं स्तौतीति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जूहक्त श्रयति हरिं श्रीः ।

८४६. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे । दात्यनेन दात्रम् । नेत्रम् ।

आयतस्तूः—आयतं स्तौतीति विग्रहे 'क्विब्वचिप्रच्छ्या यतास्तु—' इति क्विपि दीर्घे विभक्तिकार्ये कर्मषष्ठ्या समासः ।

---

८४२. सन्नन्त आशंस् और भिक्ष् धातु से 'उ' प्रत्यय होता है ।

८४३. क्विप् प्रत्यय भ्राज आदि धातुओं से होता है ।

८४४. रेफ से परे छकार वकार का लोप क्विप् झलादि कित् ङित् परे होता है ।

(वा०) क्विप् प्रत्यय वच् प्रच्छ आदि धातुओं से होता हैं और दीर्घ तथा सम्प्रसारण का अभाव भी होता है ।

८४५. तुक् विशिष्ट छ् तथा व् को क्रम से श् तथा ऊठ् आदेश होता है, अनुनासिक एवं क्विप् या झलादि कित् ङित् पर हो तब ।

८४६. दाप्, नी, शस, यु, युज्, ष्टु, तुद षिञ्, षिच्, मिह्, पत्, दश्, णह्—इन धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है करण अर्थ में ।

८४७. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

८४८. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३।२।१८४॥

[अर्त्यादिभ्यः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे] अरित्रम्। लवित्रम्। धुवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

८४९. पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५॥

[करणे पुवः ष्ट्रन् स्यात्संज्ञायाम्] पवित्रम्।

॥ इति पूर्वकृदन्तम् ॥

खनित्रम्—खनत्यनेनेति विग्रहे 'अर्तिलघू–' इति करणेऽर्थे इत्रप्रत्यये विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। एवं चरत्यनेनेति 'चरित्रम्'।

इति 'ललिता' टीकायां पूर्वकृदन्तम्।

---

८४७. ति, तु—आदि इन दस कृत्प्रत्ययों को इट् नहीं होता।

८४८. ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह्, चर धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है करण अर्थ में।

८४९. संज्ञा में पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में पूर्वकृदन्त समाप्त हुआ।

उणादिप्रकरणम्

८५०. कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् १॥

करोतीति कारुः। वातीति वायुः। पायुर्गुदम्। जायुरौषधम्। मायुः पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्यम् इति साधुः। आशु शीघ्रम्।

८५१, उणादयो बहुलम् ३।३।१॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः।

"संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥"

॥ इति उणादिप्रकरणम् ॥

संज्ञासु—'उणादयो बहुलम्' इत्युक्त्वा केचिदविहिता अप्यूह्याः इत्युक्तं मूले, तदेव प्रतिपादयति=संज्ञास्विपि। संज्ञासु=संज्ञाशब्देषु (डित्थादिषु) धातुरूपाणि उह्याणि, ततः परं प्रत्ययाश्च ऊहनीयाः=कल्पनीयाः=प्रत्ययेष्वपि गुणवृद्ध्यभावादिकार्यं दृष्ट्वा अनुबन्धम्=ञित्-णित्-कित् ङिदित्याद्यनुबन्धं विद्यात्=कल्पयेत्, एतत्=एतावदेव, उणादिषु, शास्त्रम्=अनुशासनमस्तीत्यर्थः। उदाहरणं यथा 'ऋफिड्डः' इति। अथ ऋधातुः प्रकृतिः तस्मात् फिड्डः प्रत्ययः ततो गुणाऽभावदर्शनात् प्रत्ययस्य कित्त्वमूह्यते।

इति 'ललिता' टीकायां उणादिप्रकरणम्।

---

८५०. कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साधु एवं अश् धातुओं से उण् प्रत्यय होता है।

८५१. ये उणादि प्रत्यय वर्तमान काल में विकल्प से होते हैं।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में उणादिप्रकरण समाप्त हुआ।

उत्तरकृदन्तम्

२६४ ८५२. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

२६ ८५३. कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७॥

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

२२ ८५४. भावे ३।३।१८॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

२६ ८५५. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्।

३० ८५६. घञि च भावकरणयोः ६।४।२७॥

भोक्तुम्—भुज्धातोः 'कालसमयवेलासु तुमुन्' इति तुमुनि अनुबन्धलोपे। 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति गुणे 'चोकुः' इति जस्य कुत्वेन गकारे 'खरि चे'ति चर्त्वेन ककारे 'कृन्मेजन्तः' इति मान्तत्वादव्ययसंज्ञायां सुब्लुकि 'भोक्तुम्' इति।

पाकः—पच्धातोः 'भावे' इति घञि अनुबन्धलोपे उपधावृद्धौ 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' इति चस्य कुत्वे विभक्तिकार्ये 'पाकः' इति।

---

८५२. भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् एवं ण्वुल् प्रत्यय होता है क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तब।

८५३. कालार्थक उपपद रहे तब धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

८५४. सिद्धावस्थापन्न धातु अर्थ में वाच्य रहे तब धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

८५५. संज्ञा अर्थ गम्यमान हो तब कर्ता से भिन्न कारक में घञ् प्रत्यय होता है।

८५६. रञ्ज् के नकार का लोप होता है भाव या करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय पर में हो तब।

रञ्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम् ? । रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ।

८५७. निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१॥

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः ।

(वा०) **उपसमाधानं** राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः ।

८५८. एरच् ३।३।५६॥

इवर्णान्तादच् । चयः । जयः ।

८५९. ऋदोरप् ३।३।८७॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाऽप् । करः । गरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ।

(वा०) **घञर्थे कविधानम्** । प्रस्थः । विघ्नः ।

८६०. ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८॥

८६१. क्त्रेर्मम् नित्यम् ४।४।२०॥

निकायः— निपूर्बकात् चिधातोः 'निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः' इति घञि अनुबन्धलोपे चस्य कत्वे वृद्धौ आयादेशे विभक्तिकार्ये 'निकायः' इति ।

चयः—चिधातोः 'ऋदोरप्' इत्यपि अनुबन्धलोपे गुणे अवादेशे विभक्तिकार्ये 'चयः' इति ।

पवः—'पुञ् पवने' इति धातोः 'ऋदोरप्' इत्यपि अनुबन्धलोपे गुणेअवादेशे विभक्तिकार्ये 'पवः' इति ।

---

८५७. निवास, चिति, शरीर एवं उपसमाधान अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है तथा चिञ् के आदि चकार को ककार भी होता है ।

८५८ इवर्णान्त जो धातु उससे अच् प्रत्यय होता है ।

८५९. अप् प्रत्यय ऋवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातु से होता है ।

८६०–८६१. ड्वित (डु-इत्संज्ञक) धातु से क्त्रि प्रत्यय तथा निर्वृत अर्थ में, क्त्रि–प्रत्ययान्त धातु से मप् प्रत्यय होता है ।

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप्स्यान्निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् डुवप्–उप्त्रिमम्।

८६२. ड्वितोऽथुच् ३।३।८९॥

(ट्वितोऽथुच् स्याद्भावे) टुवेपृ प्रकम्पने। वेपथुः।

८६३. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०॥

यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्षणः।

८६४. स्वप्ने नन् ३।३।९१॥

स्वप्नः।

८६५. उपसर्गे घोः किः ३।३।९२॥

प्रधिः। उपधिः।

321 ८६६. स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्। घञोऽपवादः। कृतिः। स्तुतिः।

उप्त्रिमम्—वापेन निर्वृतम् 'उप्त्रिमम्'। 'डुवप् बीजसन्ताने' इत्यस्माद्धातोः 'ड्वितः क्त्रिः' इति क्त्रौ 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' इति निर्वृत्तेर्थे मपि अनुबन्धलोपे 'वचिस्वपि—' इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

वेपथुः—'टुवेपृ कम्पने' इति धातोः 'ट्वितोऽथुच्' इत्यथुचि अनुबन्धलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

याच्ञा—याच्धातोः 'यजयाच–' इति नङि अनुबन्धलोपे नस्य श्चुत्वेन ञकारे स्त्रीत्वाट्टापि विभक्तिकार्ये 'याच्ञा' इति।

---

८६२. अथुच् प्रत्यय ट्वित् धातु से होता है।

८६३. यज्, याच्, विच्छ, प्रच्छ एवं रक्ष् धातु से नङ् प्रत्यय होता है।

८६४. नन् प्रत्यय स्वप् धातु से होता है।

८६५. घुसंज्ञक धातु से 'कि' प्रत्यय होता है उपसर्ग उपपद रहे तब।

८६६. धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग भाव द्योत्य हो तब।

(वा०) ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। तेन नत्वम्। कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

(वा०) सम्पदादिभ्यः क्विप्। सम्पत्। विपत्। आपत्।

(वा०) क्तिन्नपीष्यते। सम्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः।

८६७. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७॥

एते निपात्यन्ते।

८६८. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०॥

एषामुपधावकारयोरूठ् स्यादनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च। अतः क्विप्। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः।

'ऊतियूति'—एते स्त्रियां क्तिन्नन्ता निपात्यन्ते इत्यर्थः। तथाहि—'अव रक्षणे' इति धातोः क्तिनि तस्य निपातनादुदात्तत्वे 'ज्वरत्वर—' इत्यकारवकारयोरूठि 'ऊतिः' इति युधातेर्जुधातोर्वा क्तिनि निपातनाद् दीर्घे यूतिः, जूतिरिति च। 'षोऽन्तकर्मणि' इत्यस्मात् क्तिनि 'धात्वादेः' इति सत्वे 'आदेच उपदेशेऽशिति' इत्यात्वे 'द्यतिस्यति—' इतीत्वे प्राप्ते निपातनात्तदभावे सातिरिति। अथवा सन् धातोः क्तिनि 'जनसन—' इत्यात्वम्। हनः क्तिनिगकारस्य निपातनादित्वे 'आद्गुण.' इति गुणे हेतिरिति। अथवा हिधातोः क्तिनि निपातनाद् गुणः। 'ण्यन्तकृतधातोः 'ण्यासश्रन्थो युच्' इति युचं प्रबाध्य निपातनात् क्तिनि इत्वे रपरत्वे दीर्घे 'झरो झरि' इति तलोपे कीर्तिरिति।

(वा०) निष्ठा की तरह ऋल्वादि से विहित क्तिन् प्रत्यय होता है।

(वा०) सम्पदादियों से क्विप् प्रत्यय होता है।

(वा०) सम्पदादियों से क्तिन् प्रत्यय भी होता है।

८६७. ऊति-यूति-जूति-सति-हेति तथा कीर्ति—ये निपातनात सिद्ध होते हैं।

८६८. ज्वर-त्वर-स्रिवि-अवि-मव धातुओं के उपधा एवं वकार को ऊठ् होता है अनुनासिक और क्विप् या झलादि कित्, ङित् पर हो तब।

८६९. इच्छा ३।३।१०१॥

इषेर्निपातोऽयम् ।

८७०, अप्रत्ययात् ३।३।१०२॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः स्यात् । चिकीर्षा। पुत्रकाम्या ।

८७१. गुरोश्च हलः ३।३।१०३॥

गुरुमतो हलन्तात्स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । ईहा ।

८७२. ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७॥

अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ।

८७३. नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४॥

८७४. ल्युट् च ३।३।११५॥

हसितम् । हसनम् ।

८७५ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८॥

चिकीर्षा—कृधातोः सनि द्वित्वादिकृते 'चिकीर्ष' इत्यस्य धातुत्वेन तस्मात् 'अ प्रत्ययात्' इत्यप्रत्यये 'अतो लोपः' इति सनोऽकारलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन स्त्रीत्वे टापि सवर्णदीर्घे हल्ङ्यादिना सुलोपे उक्तं रूपं सिद्धम् ।

हारणा—हृधातोर्णिचि 'हारि' इत्यस्मात् 'ण्यासश्रन्थो युच्' इति युचि योरनादेशे णिलोपे णत्वे टापि विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

---

८६९. इच्छा का निपातन होता है 'इष्' धातु से ।

८७० स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय प्रत्ययान्त धातु से होता है ।

८७१. स्त्रीलिङ्ग में गुरुमान् हलन्त धातुओं से अकार प्रत्यय होता है ।

८७२. ण्यन्त, आस्, श्रन्थ धातुओं से युच् प्रत्यय होता है ।

८७३. नपुंसक लिङ्ग में भाव में धातु से 'क्त' प्रत्यय होता है ।

८७४. नपुंसक लिङ्ग में भाव में धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय भी होता है ।

८७५. पुल्लिङ्ग में तथा संज्ञा में धातु से 'घ' प्रत्यय बहुलता से होता है ।

८७६. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६॥

द्विप्रभृत्युपसर्गस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः।

८७७. अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३।३।१२०॥

अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका।

८७८. हलश्च ३।३।१२१॥

हलन्ताद्घञ्। घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः।

८७९. ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६॥

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे–दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे–ईषत्करः। सूकरः।

दुष्करः– दुस्पूर्वात् कृञ्धातोः 'ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' इति खलि अनुबन्धलोपे गुणे रपरे 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' इति सस्य षत्वे कृदन्तत्वात् सौ सस्य रुत्वे विसर्गे उक्तं रूपं सिद्धम्।

---

८७६. घ' प्रत्यय पर में हो तो द्विप्रभृति उपसर्ग से रहित छादि धातु को ह्रस्व होता है।

८७७. अव उपपद रहते स्तृ धातु से घञ् प्रत्यय होता है। पुंलिङ्ग में और संज्ञा में।

८७८. करण तथा अधिकरण अर्थ में हलन्त धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है।

८७९. कृच्छ्र (दुःख अर्थ में), अकृच्छ्र (सुख अर्थ में), ईषत्, दुस्, सु- इन सबों को उपपद रहते धातु से खल् प्रत्यय होता है।

नोट—क्तो ल्युट् नपुंसके भावे स्त्रियां क्तिन्नादयो यतः।
अतो घञजपः पुंसि परिशेषादिति स्थितिः॥

८८०. आतो युच् ३।३।१२८॥

खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।

८८१. अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८॥

प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवात्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः दो दद्घोः । अलं दत्त्वा । घुमास्थेतीत्त्वम् । पीत्वा खलु । अलङ्खल्वोः किम् ? मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् ? अलङ्कारः ।

८८२. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

८८३. न क्त्वा सेट् १।२।१८॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् ? कृत्वा ।

८८४. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । द्युतित्वा-द्योतित्वा । लिखित्वा-लेखित्वा व्युपधात्किम् ?

लिखित्वा—लिख् धातोः क्त्वाप्रत्यये इटि अनुबन्धलोपे 'न क्त्वा सेट्' इति प्राप्तकित्त्वनिषेधं प्रबाध्य 'रलो व्युपधात्—' इति पाक्षिककित्त्वाद् गुणनिषेधे 'लिखित्वा' इति । पक्षे गुणे 'लेखित्वा' इति ।

---

८८०. यदि ईषदादि कोई भी उपपद में हो तब आदन्त धातु से युच् प्रत्यय होता है ।

८८१. प्राचीनों के मत से निषेधार्थक अलं या खल उपपद हो तो क्त्वा प्रत्यय होता है ।

८८२. पूर्वकालिक क्रिया में तथा समान एककर्तृक धात्वर्थ में वर्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

८८३. इट् के साथ क्त्वा कित् नहीं होता है ।

८८४. ऐसे रलन्त धातु जिसके उपधा में इवर्ण या उवर्ण हो तो उससे परे इट् के साथ क्त्वा एवं सन् विकल्प से कित् होते हैं ।

वर्तित्वा । रलः किम् ? सेवित्वा । हलादेः किम् ? एषित्वा । सेट् किम् ? भुक्त्वा ।

८८५. उदितो वा ७।२।५६॥

उदितः परस्य क्त्व इड् वा । शमित्वा-शान्त्वा । देवित्वा-द्युत्वा । दधातेर्हिः । हित्वा ।

८८६. जहातेश्च क्त्वि ७।१।४३॥

हित्वा । हाङस्तु हात्वा ।

८८७. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् । तुक् । प्रकृत्य । अनञ् किम् ? अकृत्वा ।

८८८. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२॥

आभीक्ष्ण्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च ।

८८९. नित्यवीप्सयोः ८।१।४॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये वीप्सायां च पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं

हित्वा—धा इत्यस्मात् 'समानकर्तृकयोः—' इति क्त्वा प्रत्यये, ककारलोपे 'जहातेश्च क्त्वि' इति ह्यादेशे 'हित्वा' इति ।

प्रकृत्य—प्रपूर्वात् कृधातो, 'समानकर्तृकयोः—' इति क्त्वा प्रत्यये 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति ल्यपि अनुबन्धलोपे 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इति तुकि अनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वाद् सौ 'क्त्वातोसुन्—इत्यव्ययत्वात् सुब्लुकि तत्सिद्धिः ।

---

८८५. उदित् धातुओं स परे क्त्वा को इट वैकल्पिक होता है ।

८८६. ओहाक् धातु को हि आदेश होता है क्त्वा प्रत्यय पर हो तब ।

८८७. पुवपद यदि अव्यय हो तो नञ् से भिन्न समास में क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है ।

८८८. आभीक्ष्ण्य अर्थ द्योत्य रहे तो क्त्वा की जगह ल्यप् आदेश होता है ।

८८९. आभीक्ष्ण्य एवं वीप्सा अर्थ द्योत्य हो तो पद को द्वित्व होता है ।

तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च । स्मारं-स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा -स्मृत्वा । पायं--पायम् । भोजं--भोजम् । श्रावं--श्रावम् ।

८९०. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७॥

एषु कृञोणमुल् स्यात्सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्हं इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । कथङ्कारम् । इत्थङ्कारं भुङ्क्ते । सिद्धेति किम् ? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।

॥ उत्तरकृदन्तप्रकरणम् ॥

भोजं भोजम् —भुज् धातोः 'आभीक्ष्ण्ये णमुल च' इति णमुलि अनुबन्धलोपे गुणे 'नित्यवीप्सयोः' इति द्वित्वे प्रातिपदिकत्वात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि पूर्वमकारस्यानुस्वारे तत्सिद्धिः । भुक्त्वा भुक्त्वा इत्यर्थः ।

इत्थङ्कारं भुङ्क्ते —इत्थमित्यस्य प्रयोगे 'अन्यथैवंकथमित्थसुसिद्धाप्रयोगश्चेत्' इति कृञ्धातोर्णमुलि अनुबन्धलोपे वृद्धौ रपरत्वे कृदन्तत्वात् सौ मान्तत्वात् अव्ययत्वे सुब्लुकि इत्थमित्येतद्घटकस्य मस्यानुस्वारे परसवर्णे 'इत्थङ्कारम्' इति ।

इति 'ललिता' टीकायां उत्तरकृदन्तप्रकणम् ।

---

८९०. अन्यथा, कथं या इत्थं उपपद हो तब कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। अर्थात् सिद्धावस्था में कृञ् का प्रयोग व्यर्थ हो तो णमुल् होता है।

इस प्रकार 'ललिता' हिन्दी टीका में
उत्तरकृदन्तप्रकरण समाप्त ।

अथ विभक्त्यर्थाः—(कारकप्रकरणम्)

८९१. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये, उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे-तटः तटी, तटम्। परिमाणमात्रे- द्रोणो व्रीहिः। वचनं सङ्ख्या। एकः, द्वौ, बहवः।

८९२. सम्बोधने च २।३।४७।

प्रथमा स्यात्। हे राम ! इति प्रथमा।

८९३. कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९।।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

प्रातिपदिकार्थेति—पदं पदम् इति प्रतिपदम्, प्रतिपदे भवं प्रातिपदिकम्, तस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। स च लिङ्गं च परिमाणं च वचनं चेति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि। तानि एवं लिङ्गपरिमाणवचनमात्रे इति विग्रहे मयूरव्यंसकादित्वात्समासे वचनशब्दान्ते द्वन्द्वे कृते मात्रान्तरयोर्नित्यसमासवचनं क्लीबत्वञ्चेति।

नियतोपस्थितिकः—नियता व्यापिका उपस्थितिर्यस्य स नियतोपस्थितिकः। यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेन यस्यार्थस्योपस्थितिः स नियतोपस्थितिकः।

कर्तुरीप्सिततमं कर्म-अत्र सूत्रे 'कारके' अनुवर्तते तत्र च प्रथमा परिणम्यते। 'कर्तु' इत्यत्र 'क्तस्य च वर्तमाने' इति कर्तरि षष्ठी। आप्तुमिष्यमाणमीप्सितम्, अतिशयेनेप्सितमीप्सिततमम्। धातूपात्तव्यापाराश्रयः कर्ता। केनाप्तुमित्याकाङ्क्षायां कर्तृविशेषणीभूतव्यापारेत्यर्थं लभ्यते। ततश्च कर्त्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यादित्यर्थः सम्पद्यतेति।

---

८९१. नियत अर्थात् व्यापक, उपस्थिति जिसकी है वह प्रातिपदिकार्थ कहलाता है।

८९२. सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

८९३. क्रिया के द्वारा कर्त्ता के प्राप्त करने के लिए अत्यन्त अभिलषित कारक की कर्मसंज्ञा होती है।

८९४. कर्मणि द्वितीया २।३।२॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा--हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः।

८९५. अकथितञ्च १।४।५१॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥ १॥

गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। इति द्वितीया।

गां दोग्धि पयः—'गोः दोग्धि पयः' इति विग्रहे 'गोः अपादानत्वाऽविवक्षया कर्मत्वविवक्षायाम् 'अकथितं च' इति कर्मसंज्ञायां "कर्मणि द्वितीया" इति द्वितीयायां 'गां दोग्धिः पयः इति भवति।

अर्थनिबन्धनेयम् अर्थात् अर्थाश्रितेत्यर्थः। दुहादिपरिगणितधातूनामर्थो गृह्यते नतु दुहादयो धातवः एवेति। तथा च दुहाद्यथकधात्वन्तरसंयोगेऽपि द्विकर्मकत्वं लभ्यते इति बोध्यम्।

---

८९४. अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है।

८९५. अपादान आदि विशेषों से अविवक्षित जो कारक उसकी कर्म संज्ञा होती है।

दुह्, याच् आदि मुष् पर्यन्त बारह धातुओं मुख्य कर्म के साथ क्रिया से संबन्ध्यमान जो कारक वह अकथित होता है और इन्हीं धातुओं के मुख्य कर्म के योग में अपादानादि से अविवक्षित कारकों की कर्म संज्ञा होती है।

नोट—'गौणे कर्मणि दुह्यादे प्रधाने नीहृकृष्वहाम्' इस नियम से कर्म दो प्रकार' का होता है—(१) गौण, (२) प्रधान।

८९६. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

८९७. साधकतमं करणम् १।४।४२॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ।

८९८. कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो बाली । इति तृतीया ।

८९९. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ।

९००. चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३॥

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् । विप्राय गां ददाति ।

९०१. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २।३।१६॥

एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि । इति चतुर्थी ।

कर्मणा यमभिप्रैतीति—दानार्थे चतुर्थ्यर्थं प्रयोगो भवति यथा—'विप्राय गां ददाति' वाक्येऽस्मिन् 'दा' धातोः अर्थास्ति यत्—'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पादानानुकूलव्यापरः' इति । कर्ता क्रियामात्रस्य कर्मणा सह सम्बन्धं यं पदार्थमभिप्रैति स सम्बन्धोद्देश्यः सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ।

करणस्य परिभाषा—क्रियायाः फलनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् ।
विवक्ष्यते यदा तत्र करणं तत्तथा स्मृतम् ॥

८९६. क्रिया में स्वतंत्र रूप से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है ।

८९७. क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त जो उपकारक उसकी करण संज्ञा होती है ।

८९८. कर्त्ता एवं करण अनुक्त रहे तो तृतीया विभक्ति होती है ।

८९९. दानरूपी कर्म से जो अभिप्रेत है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होवे ।

९००. सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है ।

९०१. नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा-अलम्-वषट्—इनके योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

९०२. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४॥

अपायो—विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवम्-अवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्।

९०३. अपादाने पञ्चमी २।३।२८॥

अपादाने पञ्चमी स्यात्। ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पततीत्यादि। इति पञ्चमी।

९०४. षष्ठी शेषे २।३।५०॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिःसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात्। राज्ञः पुरुषः। कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः। इति षष्ठी।

ध्रुवमपायेऽपादानम्—अपायो=विश्लेषः इत्यर्थः, अपादानस्य लक्षणम् यत् विभागजनकव्यापारानाश्रयत्वे सति विभागाश्रयत्वमपादानत्वमिति।

अपादाने—प्रकृतधात्वर्थानाश्रयत्वे सति तज्जन्यविभागाश्रयत्वं ध्रुवत्वम्। अपादानत्वन्तु 'विभागजनकव्यापारानाश्रयत्वे सति विभागाश्रयत्वम् इति।

शेषे षष्ठी—'कर्मणि द्वितीया' इत्यादिसूत्रेषु द्वितीयादिविधिषु हि कर्मकर्तृकरणसम्प्रदानाऽपादानाधिकरणकारकाण्यनुक्रान्तानि, प्रथमाविधौ प्रातिपदिकार्थोऽनुक्रान्तः, एतेभ्योऽन्यः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः 'शेषः' तत्र षष्ठी स्यादिति 'शेषे षष्ठी'ति सूत्रस्यार्थः।

---

९०२. अपाय = विश्लेष, बिलगाव अर्थ में कूटस्थभूत जो कारक वह अपादान संज्ञक होता है।

९०३. अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है।

९०४. कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न जन्यजनकभावादि (स्वस्वामिभावादि) सम्बन्ध 'शेष' कहलाता है और उस शेष में षष्ठी विभक्ति होती है।

९०५. आधारोऽधिकरणम् १।४।४५॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ।

९०६. सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा । इति सप्तमी ।

॥ इति विभक्त्यर्थाः ॥

(इति कारकप्रकरणं समाप्तम्)

आधारोऽधिकरणमि'ति—अत्र सूत्रे 'औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । उपसमीपे, श्लेषः = सम्बन्धः, उपश्लेषः तत्कृतमौपश्लेषिकम् । अस्योदाहरणम् ।

कटे आस्ते —इति । विषये भावो 'वैषयिकः' अस्योदाहरणम् 'मोक्ष इच्छाऽस्ति' इति । अत्र कर्तृभूतेच्छागतां सत्तां क्रियां प्रति मोक्षस्य विषयता सम्बन्धपुरस्कारेण इच्छाद्वाराऽधारत्वादधिकरणम् । अभि=सर्वतोभावेन, व्याप्नोति इति 'अभिव्यापकः—य आधारः सर्वमभिव्याप्नोति सः अभिव्यापक इत्युच्यते । अस्योदाहरणम्—सर्वस्मिन्नात्मास्ति, सर्वस्मिन्नभिव्याप्य आत्मा वर्तत इत्यर्थः । आत्मरूपकर्तृगतां सतां क्रियां प्रति कृत्स्नव्याप्ति पुरस्कृत्य आत्मद्वारा सत्ताधारत्वात् सर्वस्याधिकरणत्वम् ।

---

९०५. कर्त्ता-कर्म के द्वारा कर्तृ-कर्मनिष्ठ क्रिया के आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है ।

९०६. अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है ।

इति कारकप्रकरणम् ।

अथ समासप्रकरणम्

तत्रादौ केवलसमासः ।

९०७. समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः। स च विशेष-संज्ञा-विनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः ॥१॥ प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः ॥ २ ॥ प्रायेणोत्तर- पदार्थप्रधान-स्तत्पुरुषस्तृतीयः। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः ॥३॥ प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः।।४।। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥५॥

९०८. समर्थः पदविधिः २।१।१॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः।

९०९. प्राक्कडारात्समासः २।१।३॥

कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्राक् 'समास' इत्यधिक्रियते।

९१०. सह सुपा २।१।४।

सुप् सुपा सह वा समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो-

प्रकृतसमासप्रकरणे एषः नियमः स्मरणीयः—

चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्मधारयः।
यस्य येषां बहुव्रीहिः शेषस्तत्पुरुषः स्मृतः ॥

---

९०७. समास पाँच प्रकार के होते हैं (१) केवलसमास, (२) अव्ययीभाव समास, (३) तत्पुरुष समास, (४) बहुव्रीहि समास, (५) द्वन्द्व समास।

समास की परिभाषा--पृथक्-पृथक् अर्थोपस्थापकत्वेन दृष्टानां पदानामेकार्थोपस्थितिजनकत्वं ;एकार्थीभावरूपं समसनं समासः।

भावार्थ– दो या अधिक पदों के मेल को समास कहते हैं।

९०८. पद संबंधी जो विधि वह समर्थाश्रित होता है।

९०९. 'कडारा कर्मधारय' इस सूत्र से पहले तक 'समास' का अधिकार रहता है।

९१०. सुबन्त का समास सुबन्त के साथ होता है, विकल्प से।

लुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थाऽवबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूतो भूतपूर्व इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात् भूतशब्दस्य पूर्वं निपातः । (वा०)—इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च । वागर्थौ इव वागर्थाविव ।

॥ इति केवलसमासः ॥१॥

भूतपूर्वः—पूर्वं भूतः भूतपूर्वः, 'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'सह सुपा' इति समासे 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इति सुब्लुकि 'पूर्वभूत' इति जाते 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इति पूर्वभूतशब्दयोरुभयोरप्युपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति विनिगमकाऽभावादुभयोरपि पूर्वनिपाते प्राप्ते 'भूतपूर्वे चरट्' इति निर्देशात् भूतशब्दस्य पूर्वनिपाते एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धिः ।

> द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गृहे नित्यमव्ययीभावः ।
> तत्पुरुषकर्मधारयौ येनाऽहं स्यां बहुव्रीहिः ॥

(वा०)—'इव' शब्द के साथ समास होता है तथा विभक्ति का लोप भी नहीं होता है ।

इति केवल समासः ।

अथाव्ययीभावसमासः

९११. अव्ययीभावः २।१।५॥

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात्।

९१२. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावाऽत्ययाऽसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २।१।६॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाऽविग्रहो नित्यसमासः प्रायेणाऽस्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ 'हरि ङि। अधि' इति स्थिते—

९१३. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

९१४. उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०॥

समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक् प्रयोगः। सुपो लुक्। एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुपो लुक्। अधिहरि।

अधिहरि—हरौ इति 'अधिहरि'। 'हरि ङि अधि' इति स्थिते 'अव्ययम्—' इति अव्ययीभावसमासे समासविधायकसूत्रेऽव्ययमिति प्रथमान्तपदनिर्दिष्टस्य 'अधीत्यस्य 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इत्यनेन उपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति तस्य पूर्वनिपाते 'अधिहरि ङि' इति जाते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वे 'सुपो धातु—' इति सुब्लुकि एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सौ 'अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सोर्लुकि 'अधि हरि' इति।

---

९११. 'तत्पुरुषः' सूत्र के पहले तक अव्ययीभाव का अधिकार है।

९१२. विभक्ति-समीप आदि अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास नित्य होता है।

९१३. प्रथमानिर्दिष्ट पद की उपसर्जन संज्ञा समासशास्त्र में होती है।

९१४. समास में उपसर्जन का पूर्वप्रयोग होता है।

९१५. अव्ययीभावश्च २।४।१८॥

अयं नपुंसकं स्यात्।

९१६. नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः २।४।८३।

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात्। गाः पातीति गोपस्तस्मिन्नित्यधिगोपम्।

९१७. तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्। मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

सुमद्रम्—मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् 'मद्र अम् सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'अव्ययम्—' इति समासे 'सु' इत्यस्य प्रथमानिर्दिष्टम्—इत्युपसर्जनसंज्ञायाम् 'उपसर्जनं पूर्वम्' इति तस्य पूर्वनिपाते समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि समुदायाट्टाविभक्तौ 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' इत्यमादेशे पूर्वरूपे 'सुमद्रम्' इति।

अतिहिमम्—हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् अव्ययार्थक 'अति' इति अव्ययेन सह 'अव्ययम्—' इति समासे 'प्रथमानिर्दिष्ट—' इत्यनेन उपसर्जनसंज्ञायां पूर्वनिपाते समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि समुदायात् सौ अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुब्लुकि प्राप्ते 'नाव्ययीभावात्—' इति तन्निषेधे सोरमि पूर्वरूपे उक्तं रूपं सिद्धम्। तृतीयाविभक्तौ तु 'तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्' इत्यमादेशे पूर्वरूपे 'अतिहि मम्' इति। पक्षे इनादेशे गुणे 'अतिहिमेन' इति च भवति।

---

९१६. नपुंसकलिङ्ग में अव्ययीभाव समास होता है।

९१७. अदन्त अव्ययीभाव से सुप् का लोप नहीं होता, किन्तु पञ्चमी को छोड़कर उसको अमादेश भी होता है।

९१८. अव्ययीभावे चाऽकाले ६।३।८१॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साऽग्नि।

९१९. नदीभिश्च २।१।२०॥

नदीभिः सह संख्या समस्यते।

(वा०) **समाहारे चायमिष्यते**। पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्।

९२०. तद्धिताः ४।१।७६॥

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

पञ्चगङ्गम्—पञ्चानां गङ्गानां समाहारः पञ्चगङ्गम्। अत्र 'पञ्चन् आम्' गङ्गा आम्' इत्यलौकिकविग्रहे 'समाहारे चायमिष्यते, इति वार्तिकबलात् 'नदीभिश्च इति समासे सुब्लुकि 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपे 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इति 'गङ्गा' इत्यस्योपसर्जनत्वाद् 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इति ह्रस्वे समुदायात् सौ 'अव्ययीभावश्च' त्यव्ययत्वात् सोर्लुकि प्राप्ते 'नाव्ययीभावात्—' इति तन्निषेधे सोरमि पूर्वरूपे तत्सिद्धिः, तृतीयाविभक्तौ तु 'तृतीयासप्तम्योः—'इति अमादेशे पूर्वरूपे 'पञ्चगङ्गम्' इति। पक्षे इनादेशे गुणे 'पञ्चगङ्गेन' इति। सप्तमीविभक्तौ तु पञ्चगङ्गम्—पञ्चगङ्गे इति रूपद्वयं भवति।

---

९१८. काल को छोड़कर अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होता है।

९१९. संख्यावाचकों का नदी वाचक समर्थ सुबन्तों के साथ समास होता है।

(वा०)—यह सूत्र समाहार में भी होता है।

९२०. पञ्चमाध्याय समाप्ति पर्यन्त 'तद्धिताः' सूत्र का अधिकार रहता है।

९२१. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्। [ग] जराया जरश्च उपजरसमित्यादि।

९२२. अनश्च ५।४।१०८॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच्।

९२३. नस्तद्धिते ६।४।१४४॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।

९२४. नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९॥

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात्। उपचर्मम्। उपचर्म।

उपराजम्—राज्ञः समीपमुपराजमिति लौकिकविग्रहः। 'राजन् ङस् उप' इत्यलौकिकविग्रहे सामीप्यार्थक 'उप' इत्यव्ययेन सह 'अव्ययम्—' इति सूत्रेण समासे 'प्रथमानिर्दिष्टम्—' इत्युपसर्जनसंज्ञायां पूर्वप्रयोगे 'अनश्च' इति टचि अनुबन्धलोपे सुब्लुकि भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे समुदायात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि प्राप्ते 'नाव्ययीभावादिति तन्निषेधे सोरमि पूर्वरूपे 'उपराजम्' इति। तृतीयासप्तमी विभक्तौ तु तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' इत्यम्भावे उपराजम्— उपराजेन, उपराजम्— उपराजे, इति रूपाणि भवन्ति।

उपचर्मम्—'चर्मन् ङस् उप' इति अलौकिकविग्रहे 'अव्ययम्—इति समासे 'उपे' त्यस्योपसर्जनसंज्ञायां पूर्वप्रयोगे सुप् लुकि 'नपुंसकादन्यतर-

---

६२१. अव्ययीभावसमास में समासान्त टच् प्रत्यय होता है, शरदादिगण-पठित शब्दों से।

६२२. अन्नन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय होता है।

६२३. नकारान्त भसंज्ञक के टि का लोप होता है तद्धित प्रत्यय पर में हो तब।

६२४. अन्नन्त जो क्लीबलिङ्ग तदन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय विकल्प से होता है।

९२५. झयः ५।४।१११

झयन्तादव्ययीभावाट्टज् वा स्यात् । उपसमिधम् । उपसमित् ।

॥ इत्यव्ययीभावसमासः ॥

स्याम्' इति पाक्षिके टचि' नस्तद्धिते इति टिलोपे समुदायात् सौ 'नाव्ययी-भावात्—' इति सोरमि पूर्वरूपे तत्सिद्धिः टजभावे तु 'अव्ययादाप्सुपः' इति सुलोपे 'उपचर्म' इति ।

॥ इति अव्ययीभावः समाप्तः ॥

---

९२५. झयन्त अव्ययीभाव से विकल्प से 'टच्' प्रत्यय होता है ।

॥ इति अव्ययीभाव समाप्त ॥

अथ तत्पुरुषसमासः

९२६. तत्पुरुषः २।१।२२॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः।

९२७. द्विगुश्च २।१।२३॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।

९२८ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः कृष्णश्रित इत्यादि।

८२९. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनाऽर्थेन च सह वा प्राग्वत्। शंकुलया खण्डः शंकुलाखण्डः। धान्येनाऽर्थो धान्यार्थः। तत्कृतेति किम्? अक्ष्णा काणः।

कृष्णश्रितः—'कृष्ण अम् श्रित सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'द्वितीया श्रिते'-ति समासे सुप्विभक्तौ सुब्लुकि समासशास्त्रघटकद्वितीये' ति प्रथमान्तपद-निर्दिष्टं कृष्णेत्यस्योपसर्जनसंज्ञायां पूर्वनिपाते एकदेशविकृतन्यायेन समुदायात् प्रातिपदिकत्वेन सौ सस्य रुत्वे 'खरवसानयोर्विजंनीयः' इति रुत्वविसर्गे तत्सिद्धिः इति कृष्णश्रितः'

शङ्कुलाखण्डः—शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः। 'शङ्कुला य खण्ड सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'तृतीयातत्कृतेति समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुब्लुकि समुदायात् सौ रुत्वे विसर्गे तत्सिद्धम्।

---

९२६. 'शेषे बहुव्रीहिः' सूत्र से पूर्व तक 'तत्पुरुषः' सूत्र का अधिकार होता है।

९२७. तत्पुरुष का भेद ही द्विगु है।

९२८. द्वितीयान्त पद का श्रित-अतीत-आदि का विकल्प से समास होता है प्रकृति समर्थ सुबन्त के साथ और वह तत्पुरुष संज्ञक ही होता है।

९२९. तृतीयान्त पद विकल्प से समस्त हो तृतीयान्तार्थकृत गुणवचन के साथ और अर्थशब्द के साथ।

९३०. कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखैर्भिन्नो नखभिन्नः।

(वा०)—कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। नखनिर्भिन्नः।

९३१. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २।१।३६॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना, अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु यूपदारु।

(१) (वा०) **(क) तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः।** तेनेह न रन्धनाय स्थाली।

(२) (वा०) **(ख) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्।** द्विजायायं द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः। भूतबलिः। गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्।

९३२. पञ्चमी भयेन २।१।३७॥

द्विजार्थः सूपः—द्विजाय अयमिति द्विजार्थः। 'द्विज ङे अर्थ सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन नित्यसमासे सूपशब्दलिङ्गत्वे च विहिते सुब्लुकि सवर्णदीर्घे स्त्रीत्वाट्टापि समुदायात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे तत्सिद्धम् समासविधायकवार्तिकबलादेवाऽत्र 'परवल्लिङ्गम्—' इत्यस्य च प्रवृत्तिः।

---

९३०. कर्ता या करण में तृतीया जो पद उसका बहुलता से कृदन्त के साथ समास होता है।

९३१. अर्थ, बलि आदियों के साथ विकल्प से चतुर्थ्यन्त के लिए तद्वाचक शब्द का समास होता है।

(१) वा०—तदर्थ से प्रकृति-विकृतिभाव इष्ट है। इसलिए 'रन्धनाय स्थाली' में समास नहीं हुआ। क्योंकि बटूली का रूप परिवर्तन नहीं होता।

(२) वा०—चतुर्थ्यन्त सुबन्त का अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास कहना चाहिए और विशेष का लिङ्ग भी कहना चाहिए।

९३२. भाववाचक समर्थ सुबन्त के साथ पञ्चम्यन्त का समास होता है।

चोराद्भयं चोरभयम् ।

९३३. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९॥

९३४. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२॥

अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । कृच्छ्रादागतः ।

९३५. षष्ठी २।२।८॥

षष्ठ्यन्तं सुबन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुषः ।

९३६. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २।२।१॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः । एकाधिकरणे किम् ? पूर्वश्छात्राणाम् ।

९३७ अर्धं नपुंसकम् २।२।२॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली ।

९३८. सप्तमी शौण्डैः २।१।४०॥

चोरभयम्--अत्र 'पञ्चमीभयेन' इति समासे सुलुकि समुदायात् सौ 'परवल्लिङ्गम्--' इति नपुंसकत्वात् सोरमि पूर्वरूपे तत्सिद्धम् ।

---

९३३. क्तान्त-प्रकृतिक के साथ स्तोक-अन्तिक एवं दूरार्थक तथा कृच्छ्र प्रकृति पञ्चम्यन्त का समास होता है ।

९३४. स्तोकादि शब्दों से पञ्चमी का लोप नहीं होता है उत्तरपद पर हो तब ।

९३५. सुबन्त समर्थ के साथ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक का समास होता है ।

९३६. एकत्वसंख्या-विशिष्ट अवयवी का समास पूर्वादि शब्दों के अवयवी के साथ होता है ।

९३७. नित्य नपुंसक समांश वाचक अर्ध-शब्द का उसके अवयवी के साथ समास होता है ।

९३८. शौण्डादिगणपठित शब्दों के साथ सप्तम्यन्त सुबन्त का समास होता है ।

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः। इत्यादि। द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादि-विभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः।

९३९. दिक्संख्ये संज्ञायाम् २।१।५०॥

संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः तेनेह न। उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः।

९४०. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१॥

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः पूर्वशाला इति समासे जाते–

(वा०) **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः।**

९४१. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ४।२।१०७॥

अस्माद् भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्।

पौर्वशालः—पूर्वस्यां शालायां भवः इति लौकिकविग्रहे 'पूर्वा ङि शाला ङि' इति जाते 'तद्धितार्थोत्तरपद--' इति समासे समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इति पूर्वाशब्दस्य पुंवद्भावे 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' इति ञप्रत्यये अनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि 'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धौ समुदायात् सौ विभक्तिकार्यें तत्सिद्धम्।

---

९३९. दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का संज्ञा अर्थ में ही समास होता है।

९४०. दिशावाचक तथा संज्ञावाचक सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, तद्धितार्थ का विषय हो या उत्तर पद का समाहार हो तब।

(वा०)—वृत्तिसमास मात्र में सर्वनाम को पुंवद्भाव होता है।

९४१. संज्ञाभिन्नार्थं में दिक्पूर्वपद समास से भाव आदि अर्थों में 'ञ' प्रत्यय होता है।

९४२. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति च । पौर्वशालः । पञ्चगावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ ।

(वा०) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ।

९४३. गोरतद्धितलुकि ५।४।९२॥

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः ।

९४४. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२।

९४५ संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ।

पञ्चगवधनः—पञ्च गावो धनं यस्य स 'पञ्चगवधनः । 'पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' इत्यलोकिकविग्रहे, पूर्वम् अन्यपदार्थप्रधानत्वात् 'अनेकमन्यपदार्थे' इति सूत्रेण बहुव्रीहिसंज्ञकसमासः, 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति तत्पुरुषसमासे प्रातिपदिकसज्ञा सुपोधातु॰ इति सुपो लुकि, अन्तर्वर्तिविभक्तिमाश्रित्य पदत्वेन पञ्चन् इत्यस्य नलोपे 'पञ्चगोधन' इति स्थिते 'गोरतद्धितलुकि' इति टच्यनुबन्धलोपे 'एचोऽयवायावः' इति अवादेशे प्रातिपदिकत्वात् सौ, उकारस्येत्संज्ञालोपयोः सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'पञ्चगवधनः' इति ।

---

९४२. तद्धितीय प्रत्ययों में ञित् णित् परे अचों के आदि अच की वृद्धि होती है ।

९४३. तद्धित का लोप 'पर में' नहीं हुआ हो तो गो-शब्द से तत्पुरुष में समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।

९४४. समानाधिकरण 'एकाधिकरण' जो तत्पुरुष समास उसका नाम कर्मधारय होता है ।

९४५. 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इस सूत्र से विहित संख्यापूर्वक का समास द्विगुसंज्ञक होता है ।

९४६. द्विगुरेकवचनम् २।४।१।।

द्विग्वर्थः समाहारः एकवत्स्यात् ।

९४७. स नपुंसकम् २।४।१७।।

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः—पञ्चगवम् ।

९४८. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७।।

भेदकं समानाधिकरणेन भेद्येन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम् –कृष्णसर्पः । क्वचिन्न—रामो जामदग्न्यः ।

पञ्चगवम् –पञ्चानां गवां समाहारः इति पञ्चगवम् । 'पञ्चन् आम् गो आम्' इति विग्रहे 'तद्धितार्थ--' इति समासे सुब्लुकि अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वान्नलोपे 'गोरतद्धितलुकि' इति टचि अनुबन्धलोपे अवादेशे 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगु संज्ञायां 'द्विगुरेकवचनम्' इति एकवद्भावे समुदायात् सौ 'स नपुंसकम्' इति नपुंसकत्वात् सोरमि पूर्वरूपे उक्तं रूपं सिद्धम् ।

विशेषणं विशेष्येण इति--

भेद्यं विशेष्यमित्याहुर्भेदकं तु विशेषणम् ।
प्रधानं तु विशेष्यं स्यादप्रधानं विशेषणम् ।।
पदार्थे स्वार्थनिरपेक्षादप्रधानं विशेषणम् ।
विशेष्यं तु प्रधानं स्यात्स्वार्थस्यैव समर्पणात् ।।

बहुलमिति--क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः

क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य
चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ।।

---

९४६. द्विगु अर्थवाला समाहार एकवत् होता है ।

९४७. समाहार में द्विगु और द्वन्द्व समास नपुंसक लिङ्ग होता है ।

९४८. भेदक (विशेषण), भेद्य (विशेष्य) समानाधिकरण के साथ बहुलता ('विकल्प') से समास होता है ।

९४९. उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।५५।।

घन इव श्यामो घनश्यामः ।

(वा०) शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् ।

शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः ।

९५०. नञ् २।२।६।।

नञ् सुपा सह समस्यते ।

९५१. नलोपो नञः ६।३।७३।।

नञो नस्य लोप उत्तरपदे । न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ।

९५२ तस्मान्नुडचि ६।३।७४।।

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याऽजादेर्नुडागमः स्यात् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु 'न'शब्देन सह सुप्सुपेति समासः ।

९५३. कुगतिप्रादयः २।२।१८।।

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ।

९५४ ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१।।

ऊर्यादयश्च्व्यन्ताः डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरी-

---

९४९. उपमानवाचक जो श्वादि (शब्द) उनका सामान्य वचन के साथ समास होता है ।

वार्तिक—उत्तरपद का लोप 'शाकपार्थिव' आदि की सिद्धि के लिए कहना चाहिए ।

९५०. समर्थ सुबन्त के साथ नञ् का समास होता है ।

९५१. नञ् के नकार का लोप होता है उत्तरपद यदि पर हो तब ।

९५२. जिसका नकार लोप हो गया है ऐसा नञ् से उत्तर अजादि शब्द को नुड् का आगम होता है ।

९५३. 'कुत्सितार्थ प्रतिपादक'—कु-शब्द तथा गति-संज्ञक शब्द एवं आदि उसर्ग शब्दों का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है ।

९५४. क्रिया के योग में ऊर्यादि च्व्यन्त एवं डाजन्त की गति संज्ञा होती है ।

कृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य । सुपुरुषः ।

(१) वा०—प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया । प्रगत आचार्यः—प्राचार्यः ।

(२) वा०—अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे—

९५५. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः ।

९५६. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तश्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । अतिमालः ।

वा०—**अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया** । अवक्रुष्टः कोकिलया—अवकोकिलः ।

शुक्लीकृत्य—न शुक्लः अशुक्लः, अशुक्लं शुक्लं कृत्वा इति विग्रहे 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यमाने कर्तरि च्विः' इति शुक्लशब्दात् च्विप्रत्यये 'अस्य च्वौ' इति च्वेर्लोपे 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' इति 'शुक्ली'-त्यस्य गतिसंज्ञायां 'कुगतिप्रादयः' इत्यनेन समासे 'क्त्वो ल्यप्' इति ल्यपि तुकि अनुबन्धलोपे समुदायात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि तत्सिद्धिः ।

---

(१) वा०—गति-आदि अर्थों में प्रथमान्त प्रातिपदिक के साथ प्र-आदि शब्दों के साथ समास होता है ।

(२) अति-आदिक शब्द क्रान्त्याद्यर्थ में द्वितीयान्त के साथ समास होता है ।

९५५. विग्रह नियत विभक्ति के जो हैं उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है किन्तु पूर्वनिपात प्रयोग नहीं होता है ।

९५६. उपसर्जन गो शब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है ।

(१) वा०—अव आदि उपसर्ग क्रुष्ट (बोलने अर्थ में) तृतीयान्त सुबन्त के साथ समस्त होता है ।

वा०—**पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या**। परिग्लानोऽध्ययनाय—पर्यध्ययनः। वा०—**निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या**। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः।

९५७. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि, तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्।

९५८. उपपदमतिङ् २।२।१९॥

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। माङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्। **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः**। व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपीत्यादि।

निष्कौशाम्बिः—निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः। अत्र 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' इति समासे सुब्लुकि 'एकविभक्तिचापूर्वनिपातेः' इति कौशाम्बीशब्दस्योपसर्जनसंज्ञायां 'गोस्त्रियोः—' इति ह्रस्वे घत्वे विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

कुम्भकारः—कुम्भं करोति इति विग्रहे 'कर्मण्यण्' इति अणि 'कुम्भ अम् कृ अण्' इत्यलौकिकविग्रहे 'अचोञ्णिति' इति वृद्धौ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' इति उपपदसंज्ञायां 'उपपदमतिङ्' इति समासे सुपो लुकि 'कुम्भकार' इति भूते समासत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे उक्तं रूपं सिद्धम्।

व्याघ्री—वि=विशेषेण, आ = आसमन्तात् जिघ्रति इति व्याघ्री। 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्यये 'आतोलोट इटि च' इत्यल्लोपे 'गतिश्चेति

---

(२) वा०—ग्लान–आदि अर्थ में परि आदि उपसर्गों का चतुर्थ्यन्त सुबन्त के साथ समास होता है।

९५७. निर् आदि उपसर्ग, क्रान्त–आदि अर्थ में पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ समास होता है।

९५८. सप्तम्यन्त 'कर्मणि' इत्यादि पद में वाच्यत्वेन स्थित कुम्भ आदि वाचक पद की उपपदसंज्ञा होती है।

९५९. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ५।४।८६॥

सङ्ख्याव्ययादेरंगुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अंगुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमंगुलिभ्यो निरंगुलम्।

९६०. अहः सर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्सङ्ख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहण द्वन्द्वार्थम्।

९६१. रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च—अहोरात्रः। सर्वरात्रः संख्यातरात्रः।

वा० —**संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्**। द्विरात्रम्। त्रिरात्रम्।

गतिसंज्ञायां गतिकारकोपपदानामिति-परिभाषया सुबुत्पत्ते प्राक् घ्रशब्देन आङ: 'कुगतिप्रादयः' इति समासे ततः आघ्रशब्देन वेर्गतिसमासे यणि 'व्याघ्र' इति तस्मात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीपि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

सर्वरात्रः—सर्वा चासौ रात्रिरिति सर्वरात्रः। 'सर्वा सु रात्रि सु' इति विग्रहे पूर्वकालैकसर्वजरत्—' इति समासे सुब्लुकि 'अहः सर्वैकदेशे—' इत्यचि भत्वात 'यस्येति च' इतीकारलोपे 'राजाह्नाहाः पुंसि' इति पुंस्त्वे 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इति सर्वाशब्दस्य पुंवद्भावे प्रातिपदिक-कार्ये 'सर्वरात्रः' इति।

---

९५९ संख्या और अव्यय हो आदि में जिसके ऐसा अंगुली शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

९६०. अहरादि व संख्याव्ययादि पूर्वपदक रात्रि शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय हो।

९६१ जिसके अन्त में 'कृत समासान्त' रात्र, अह्न या अह है जिनके ऐसे द्वन्द्व तथा तत्पुरुष पुल्लिङ्ग हो जाते हैं। 'परवल्लिङ्गद्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र का यह बाधक हैं।

वा०—संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है।

९६२. राजाहः सखिभ्यष्टच् ।।५।४।९१।।

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् । परमराजः ।

९६३. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६।।

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो महाजातीयः ।

९६४. द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७।।

आत्स्यात् द्वौ च दश च द्वादश । अष्टाविंशतिः ।

९६५. त्रेस्त्रयः ६।३।४८।।

त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ।

९६६ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।३।२६।।

परमराजः—परमश्चासौ राजा परमराजः । 'परम सु राजन् सु' इत्यलौकिकविग्रहे 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' इति समासे सुब्लुकि 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति भसंज्ञायां 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

द्वादशः—द्वौ च दश चेति विग्रहे द्वन्द्वसमासे सुब्लुकि 'द्व्यष्टनः'—इत्यात्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

---

९६२. राजन् अहन् या सखि में से कोई अन्त में हों जिसके ऐसे तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है ।

९६३. महत् शब्द को आकार अन्तादेश होता है, समानाधिकरण उत्तर पद में या जातीयर् प्रत्यय पर में हो तब ।

९६४. बहुव्रीहि या अशीति पर रहे तो अष्टन् शब्द को आत्व नहीं होता है परन्तु संख्या पर हो तो होता है ।

९६५. बहुव्रीहि अशीति को छोड़कर संख्या परे रहते त्रि को त्रयस् आदेश होता है ।

९६६. द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समास का लिङ्ग 'द्वितीय' पद के समान होता है ।

एतयोः परपदस्यैव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरी-कुक्कुटौ। अर्धपिप्पली।

वा० द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः–पञ्चकपालः पुरोडाशः।

९६७. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४॥

[प्राप्ताऽऽपन्ने च द्वितीयया] समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै–अलंकुमारिः। अत एव ज्ञापकात्समासः–निष्कौशाम्बिः।

९६८. अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१॥

अर्धर्चादयः शब्दः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः। अर्धर्चम्। एवं ध्वज–तीर्थ–शरीर–मण्डप–यूप–देहा–ऽङ्कुश–पात्र–सूत्रादयः। सामान्ये नपुंसकम्। मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्।

॥ इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ॥

पञ्चकपालः–'पञ्चन् सुप् कपाल सुप्' इत्यलौकिकविग्रहे 'तद्धितार्थ–' इति समासे, सुब्लुकि 'संस्कृतं भक्षाः' इत्यणि द्विगोर्लुगनपत्ये' लुकि कपालशब्दस्याऽपि नपुंसकत्वात् 'परवल्लिङ्गम्–' इति पञ्चकपाल-शब्दस्याऽपि नपुंसकत्वे 'द्विगुप्राप्तापन्न–' इति तन्निषेधे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् (पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः–पञ्चकपालः पुरोडाशः)।

अर्धर्चम्–ऋचोऽर्धमिति विग्रहे 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासे अर्ध-शब्दस्योपसर्जनसंज्ञायां पूर्वनिपाते सुब्लुकि 'ऋक्पूरब्धूः–' इत्यप्रत्यये गुणे रपरत्वे 'अर्धर्चाः पुंसि च' इति नपुंसकत्वे विभक्तिकार्ये 'अर्धर्चम्' इति। पुंस्त्वे तु 'अर्धर्चः' इति भवति।

॥ इति तत्पुरुषसमासः ॥

वा०—द्विगु समास तथा प्राप्त, आपन्न और अलम् पूर्वक एवं गति समास में पर पद का लिङ्ग नहीं होता है।

९६७. द्वितीयान्त के साथ प्राप्त तथा आपन्न शब्द का समास होता है।

९६८. अर्धर्चादि जो शब्द उनका लिङ्ग, पुंल्लिग तथा नपुंसक लिङ्ग होता है।

॥ इति तत्पुरुषसमास ॥

अथ बहुव्रीहिसमासः

९६९. शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३॥

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात्।

९७० अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः।

९७१. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः।

९७२, हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।९॥

हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक्। कण्ठे कालः। प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः। वा०—प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। प्रपतितपर्णः प्रपर्णः।

कण्ठेकालः—कण्ठे कालो यस्येति विग्रहे 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' इति ज्ञापकात् समासे सप्तम्यन्तस्य 'कण्ठे' इत्यस्य पूर्वनिपाते च कृते 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' इति सप्तम्याः अलुकि सुपो लुकि समुदायात् सौ रुत्वे विसर्गे च कृते तत्सिद्धम्।

प्रपर्णः—'प्रकर्षेण पतितानि प्रपतितानि। 'प्रादयो गताद्यर्थे' इति समासः। प्रपतितं पर्णं यस्मादिति विग्रहे 'प्रादिभ्यो धातुजस्य इति समासे

९६९. चार्थे द्वन्द्व सूत्र तक बहुव्रीहि का अधिकार जाता है।

९७०. अन्य पदार्थ में वर्तमान जो अनेक प्रथमान्त वह विकल्प से समस्त हो और उसका नाम बहुव्रीहि हो।

९७१. बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त तथा विशेषण का पूर्व-प्रयोग होता है।

९७२. हलन्त तथा अदन्त से परे जो सप्तमी का अलुक् उसे लोप नहीं होता है।

वा० — नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः । अविद्यमानपुत्रः= अपुत्रः ।

९७३. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाम-पूरणीप्रियादिषु ६।३।३४॥

भाषितपुंस्कात्–अनूङ्–ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः । निपातनात् पञ्चम्या अलुक् , षष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तं पुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । चित्रगुः । रूपवद्भार्यः । अनूङ् किम् ? वामोरूभार्यः । पूरण्यान्तु—

९७४. अप्पूरणीप्रमाण्योः ५।४।११६॥

प्रपतितेति पूर्वपदे धातुजस्य उत्तरपदस्य लोपे च विहते विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

रूपवद्भार्यः—रूपवती भार्या यस्येति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुपो लुकि 'स्त्रियाः पुंवत्–' इति पुंवद्भावे ङीपो निवृत्तौ 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इत्युपसर्जनसंज्ञायां 'गोस्त्रियोः–' इति भार्याशब्दस्य ह्रस्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

वा० –प्र आदि परे धातुज का अन्य पद के साथ समास होता है तथा उत्तरपद का लोप भी विकल्प से होता है ।

वार्तिक नञ् से पर में जो अस्ति 'विद्यमान' अर्थवाचक शब्द का अन्य पद के साथ समास होता है तथा उत्तरपद का लोप भी विकल्प से होता है ।

९७३. भाषित पुंस्क से पर ऊङ् प्रत्यय का अभाव है जिसमें ऐसा स्त्रीवाचक शब्द, उसका पुंवाचक के समान रूप हो, समानाधिकरण उत्तर-पद स्त्रीलिङ्गपरे, परन्तु पूरण प्रत्ययान्त और प्रियादि के परे पुंवद्भाव नहीं हों ।

९७४. पूरणार्थ प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग तदन्त बहुव्रीहि तथा प्रमाण्यन्त (प्रमाणी हो अन्त में जिसके) बहुव्रीहि समास से 'अप्' प्रत्यय होता है ।

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिगं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः—कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य सः स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रियः इत्यादि।

९७५ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५।४।११३॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात्किम्? दीर्घसक्थिशकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

९७६. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

९७७. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७॥

आभ्यां लोम्नोऽप् स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः।

दीर्घसक्थः—दीर्घे सक्थिनी यस्येति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुपोलुकि 'दीर्घसक्थि' इति स्थिते 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' इति षचि भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

द्विमूर्धः—द्वौ मूर्धानौ यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिसमासे सुपो लुकि 'द्वित्रिभ्यां षमूर्ध्नः' इति षप्रत्यये भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

अन्तर्लोमः—अन्तर्लोमानि यस्येति विग्रहे 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे सुपो लुकि 'अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः' इत्यपि विभक्त्यादिकार्ये तत्सिद्धम्।

---

९७५. स्वाङ्गवाची एवं अक्षि शब्दान्त समास से षच् प्रत्यय होता है।

९७६. द्वि एवं त्रि शब्द-पूर्वक मूर्धन्–शब्दान्त से 'ष'–प्रत्यय बहुव्रीहि समास में होता है।

९७७. ऐसा लोमन् शब्द जिसके पूर्व में अन्तर् या बहिर् शब्द हो तो 'अप्' प्रत्यय होता है बहुव्रीहि समास में।

९७८. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य–व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः। कुसूलपादः।

९७९. संख्यासुपूर्वस्य ५।४।१४०॥

पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।

९८०. उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८॥

लोपः स्यात्। उत्काकुत्। विकाकुत्।

९८१. पूर्णाद्विभाषा ५।४।१४९॥

पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः।

९८२. सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः ५।४।१५०॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृत्–मित्रम्। दुर्हृत्–अमित्रः।

९८३. उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१॥

सुपात्—सु=शोभनौ, पादावस्येति विग्रहे बहुव्रीहिसमासे सुपो लुकि 'संख्यासुपूर्वस्य' इति समासान्तलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

---

९७८. बहुव्रीहि में हस्ति आदि शब्दों से भिन्न उपमान वाचक जो शब्द उससे परे पाद शब्द का लोप होता है।

९७९. बहुव्रीहि में ऐसे पाद शब्द जिसके पूर्व में संख्या या सु हो तो समासान्त उस पाद का लोप होता है।

९८० उत् या वि से परे काकुद शब्द का समासान्त लोप होता है, बहुव्रीहि में।

९८१. पूर्ण शब्द से पर काकुद्र शब्द का लोप होता है, विकल्प से।

९८२. सु या दुर् शब्द से परे मित्र एवं अमित्र अर्थ में हृदय शब्द को हृद् आदेश होता है।

९८३. उरः प्रभृति गणपठित शब्दों से कप् प्रत्यय होता है।

९८४. सोऽपदादौ ८।३।३८॥

पाशकल्पककाम्येषु परेषु विसर्गस्य सः।

९८५. कस्कादिषु च ८।३।४८॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः। इति सः। व्यूढो-रस्कः।

९८६. इणः षः ८।३।३६॥

इण उत्तरस्य विसर्गस्य सः स्यात् पाशकल्पककाम्येषु परेषु। प्रियसर्पिष्कः।

९८७. निष्ठा २।३।३९॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्तयोगः।

९८८. शेषाद्विभाषा ५।४।१५४॥

अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहेः कब् वा। महायशस्कः। महायशाः।

॥ इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम् ॥

महायशस्कः—महद्यशो यस्येति विग्रहे 'अनकेमन्यपदार्थे 'इति समासे सुपो लुकि 'शेषाद्विभाषा' इति कपि 'आन्महतः' इति आत्वे सस्य रुत्वे विसर्गे 'सोऽपदादौ' इति विसर्गस्य सत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। कपोऽभावपक्षे तु 'अत्वसन्तस्य चाऽधातोः' इति दीर्घे 'महायशाः' इति।

---

९८४. पाश्, कल्प, क या काम्य पर में यदि हो तो विसर्जनीय को स होता है।

९८५. कस्कादि गण में पढ़े गये शब्द घटक इण् से परे विसर्ग को षत्व होता है तथा अन्य विसर्ग को स उत्तर में होता है।

९८६. पाश, कल्प, क, काम्य पर हो तो इण् से परे विसर्ग को 'ष' होता है।

९८७. निष्ठान्त शब्द का पूर्वनिपात होता है, बहुव्रीहि में।

९८८. समासान्त अनुक्त बहुव्रीहि से 'कप्' प्रत्यय होता है।

॥ इति बहुव्रीहि समास ॥

अथ द्वन्द्वसमासः

९८९. चार्थे द्वन्द्वः २।२।२९॥

अनेकं सुबन्तं चाऽर्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः। समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। तत्र ईश्वरं गुरुं च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्याऽनेकस्यैकस्मिन्नन्वयः **समुच्चयः** । भिक्षामट गां चानयेत्यन्यतरस्याऽऽनुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात्समासो न। धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय **इतरेतरयोगः**। संज्ञापरिभाषमिति। समूहः–समाहारः।

९९०. राजदन्तादिषु परम् २।२।३१॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजानो राजदन्ताः।

वा०—धर्मादिष्वनियमः। अर्थधर्मौ। धर्मार्थावित्यादि।

९९१. द्वन्द्वे घि २।२।३२॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।

९९२. अजाद्यदन्तम् २।२।३३॥

द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ।

९९३. अल्पाच्तरम् २।२।३४॥

शिवकेशवौ।

हरिहरौः—"हरि सु हर सु" इति विग्रहे 'चार्थे द्वन्द्वः' इति समासे सुब्लुकि 'द्वन्द्वे घि' इति घिसंज्ञकस्य हरिशब्दस्य पूर्वनिपाते समुदायादौ "वृद्धिरेचि" इति वृद्धौ 'हरिहरौ' इति सिद्धम्।

---

९८९. च के अर्थ में विद्यमान सुबन्तों का समास होता है और वह द्वन्द्व समास से विहित होता है।

९९० पूर्वप्रयोगार्ह का राजदन्तादि शब्द में पर प्रयोग होता है।

वा०—धर्मादियों में कोई नियम नहीं है।

९९१. घिसंज्ञक का पूर्वनिपात होता है द्वन्द्व समास में।

९९२. अजादि अदन्त का पूर्व निपात द्वन्द्व समास में होता है।

९९३. द्वन्द्व समास में अत्यन्त अल्पाच जिसमें हो उसका पूर्वनिपात होता है।

९९४. पिता मात्रा १।२।७०॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ। मातापितरौ वा।

९९५. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२॥

एषां द्वन्द्व एकवत्। पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाऽश्वारोहम्।

९९६. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ५।४।१०६॥

चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात्समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।

॥ इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम् ॥

---

९९४. मातृ शब्द के साथ कहा गया जो पितृ शब्द उसका विकल्प से शेष रहता है।

९९५. प्राणि, तूर्य, सेनाङ्गों का द्वन्द्व एकवत होता है, अर्थात् इनमें एकवचन होता है।

९९६. समासान्त टच् प्रत्यय चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समाहार में होता है।

॥ इति द्वन्द्वसमासप्रकरण ॥

अथ समासान्ताः

९९७ ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५।४।७४॥

'अ-अनक्षे' इति च्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः स्यादक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु-अक्षधूः। दृढधूरक्षः सखिपथः। रम्यपथो देशः।

९९८ अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः। गवामक्षीव गवाक्षः।

९९९. उपसर्गादध्वनः ५।४।८५॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः।

१०००. न पूजनात् ५।४।६९॥

पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा।

॥ इति समासान्ताः ॥०॥ इति समासप्रकरणम् ॥

सखिपथः—'सख्युः पन्थाः' इति विग्रहे षष्ठीसमासे सुब्लुकि 'ऋक्पूरब्धूः—' इति अप्रत्यये भत्वात् 'नस्तद्धिते इति टिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

प्राध्वोरथः—प्रागतोऽध्वानमिति विग्रहे 'अत्यादयः— 'इति समास सुब्लुकि 'उपसर्गादध्वनः' इत्यचि भत्वात् 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

॥ इति समासान्ताः ॥ इति समासप्रकरणम् ॥

---

९९७. ऋक्, पु, अप् या धू अन्त में है जिसके, ऐसा जो समास उसका अन्तावयव 'अ' प्रत्यय होता है अक्षार्थक धू, तदन्त से नहीं।

९९८. नेत्र से भिन्न पर्यायवाची अक्षि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

९९९ उपसर्ग से पर में जो अध्वन् शब्द उससे अच् प्रत्यय होता है।

१०००. समासान्त प्रत्यय पूजनार्थक शब्दों से परे नहीं होते हैं।

॥ इति समासान्तप्रकरणम् ॥

अथ तद्धिताः

तत्रादौ साधारणप्रत्ययप्रकरणम्

१००१. समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२॥

इद पदत्रयमधिक्रियते 'प्राग्दिश' इति यावत्।

१००२. अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४॥

एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। अश्वपतेरपत्यादि —आश्वपतम। गाणपतम्।

१००३. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा—

१००४. हलो यमां यमि लोपः ८।४।६४॥

हलः परस्य यमो लोपः स्याद्वा यमि। इति यलोपः। आदित्यः प्राजापत्यः। (१) वा०—देवाद्यञञौ। दैव्यम्। दैवम्।

आश्वपतम्—अश्वपतेरपत्यम्, अश्वपतिना निर्वृतम् अश्वपतेरिदम् इत्यादि लौकिकविग्रहे "अश्वपत्यादिभ्यश्च" इत्यणि अनुबन्धलोपे प्रातिपदिकत्वात् सुपोलुकि "तद्धितेष्वचामादेः" इत्यादिवृद्धौ 'यचिभम्' इति भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे तद्धितान्तत्वात् सौ सोरमि पूर्वरूपे तत्सिद्धिः।

दैव्यम्—देवस्यापत्यादिति विग्रहे 'देवाद्यञ्ञौ' इति यञि आदिवृद्धौ अलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

१००१. 'प्राग्दिशो विभक्तिः' सूत्र से पूर्व तक 'समर्थानां'–'प्रथमात्'–'वा' इन तीनों पदों का अधिकार जाता है।

१००२. इन शब्दों से अण् प्रत्यय प्राग्दीव्यतीय अर्थों में होता है।

१००३. दिति, अदिति, आदित्य एव पत्युत्तरपद से 'ण्य' प्रत्यय होता है प्राग्दीव्यतीय अर्थ में।

१००४. हल् से परे यम् का विकल्प से लोप हो यम् पर में हो तो।

(१) वा०—देव शब्द से यञ् एवं अञ् प्रत्यय होता है।

(२) वा०—बहिषष्टिलोपो यञ्च। बाह्यः। वा० ईकक् च।

१००५. किति च ७।२।११८॥

किति तद्धिते चाऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। बाहीकः।

वा०—गोरजादिप्रसङ्गे यत्। गोरपत्यादि गव्यम्।

१००६. उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६॥

औत्सः।

॥ इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययप्रकरणम् ॥

बाहीकः—बहिर्भवः इति विग्रहे बहिष्शब्दात् 'ईकक्च' इति ईकक्-प्रत्यये टिलोपे 'किति च' त्यादिवृद्धौ विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

औत्सः—उत्सस्यापत्यादिरिति विग्रहे 'उत्सादिभ्योऽञ्' इत्यञि आदि-वृद्धौ विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

---

(२) वा०—बहिषस् शब्द को टि का लोप और यञ् प्रत्यय भी होता है।

(३) वा०—बहिषस् शब्द से ईकक् प्रत्यय तथा उसकी टि का लोप होता है।

१००५. अचों के आदि अच् की वृद्धि होती है कित् तद्धित पर हो तो।

१००६. अञ् प्रत्यय उत्सादि गणपठित शब्दों से होता है।

॥ इति अपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययप्रकरणम् ॥

अथ अपत्याधिकारप्रकरणम्

१००७. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७॥

'धान्यानां भवने' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

१००८. तस्याऽपत्यम् ४।१।९२॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

१००९. ओर्गुणः ६।४।१४६॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। उपगोरपत्यम्—औपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

१०१०. अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम् ४।१।१६२॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्।

स्त्रैणः—स्त्रीषु आसक्तः, स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः, स्त्रिया अपत्यम् इत्याद्यर्थे 'स्त्रीपुंसाभ्याम्' इति नञ्प्रत्यये अनुबन्धलोपे "तद्धितेष्वचामादेः" इत्यादिवृद्धौ णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। एवं पुंसोऽपत्यमित्यादिविग्रहे स्नञ् प्रत्यये आदिवृद्धौ संयोगान्तलोपे विभक्तिकार्ये "पौंस्नः" इति।

औपगवः—उपगोरपत्यमितिविग्रहे उपगुशब्दात् 'तस्यापत्यम्' इत्यणि अनुबन्धलोपे "तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवृद्धौ "औपगु अ" इति स्थिते 'अचो ञ्णिति' इति वृद्धिं बाधित्वा 'ओर्गुणः' इति गुणे अवादेशे तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ सस्य रुत्वे विसर्गे 'औपगवः' इति।

१००७. 'धान्यानां भवने क्षेत्रे' इससे पूर्व अर्थों में स्त्री शब्द से नञ् प्रत्यय और पुंस् शब्द से स्नञ् प्रत्यय विकल्प से होता है।

१००८. षष्ठ्यन्त कृतसन्धि समर्थ सुबन्त से अपत्य अर्थ में उक्त (अण्, ण्य, नञ्, स्नञ् आदि) प्रत्यय तथा वक्ष्यमाण (इञादि) प्रत्यय विकल्प से हो।

१००९. तद्धित के परे उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण हो।

१०१०. अपत्यत्वेन विवक्षित जो पौत्र आदि उसकी गोत्र संज्ञा होती है।

१०११. एको गोत्रे ४।१।९३॥

गोत्रे एक एवाऽपत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः ।

१०१२. गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५॥

गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्य गार्ग्यः । वात्स्यः ।

१०१३. यञञोश्च २।४।६४॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः ।

१०१४. जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् ।

१०१५. गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् , स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ।

१०१६. यञिञोश्च ४।१।१०१॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् स्यात् ।

वात्स्यः— वत्सस्यापत्यमिति विग्रहे "गर्गादिभ्यो यञ्" इति यञि आदिवृद्धौ अलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०११. अपत्यसंज्ञक प्रत्यय गोत्र अर्थ में एक ही होता है ।

१०१२. गर्गादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से यञ् प्रत्यय होता है गोत्रापत्य अर्थ में ।

१०१३. गोत्रप्रत्ययकृत बहुत्व रहने पर यञन्त और अञन्तावयव यकाराऽकार का लुक् हो, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक निषेध हो ।

१०१४. पिता आदि के जीवित रहने पर वंश में पौत्र आदि का जो अपत्य चतुर्थादि (प्रपौत्रादि) उसकी युव संज्ञा होती है ।

१०१५. गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो और स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं हो युवा अपत्य अर्थ बिवक्षित होने पर ।

१०१६. गोत्र अर्थ में रहने वाला जो यञ् या इञ् तदन्त से 'फक्' प्रत्यय होता है ।

१०१७. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२॥

प्रत्ययादेः फस्य-आयन्, ढस्य-एय्, खस्य-ईन्, छस्य-ईय्, घस्य-इय्-एते स्युः। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। दाक्षायणः।

१०१८. अत इञ् ४।१।९५॥

अपत्येऽर्थे। दाक्षिः।

१०१९. बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६॥

बाहविः। औडुलोमिः।

वा०—**लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः।** उडुलोमाः। आकृतिगणोऽयम्।

१०२०. अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४॥

एभ्योऽञ् गोत्रे, ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे। बिदस्य गोत्रं

गार्ग्यायणः- गर्गस्य गोत्रापत्यं 'गार्ग्यः' गार्ग्यस्य अपत्यं गर्गस्य युवापत्यं वा गार्ग्यायणः। अत्र 'जीवति तु वंश्ये युवा' इति युवसंज्ञायां 'यञिञोश्च' इति यञन्तात् फकि 'आयनेयीनीयियः-' इति फस्य आयन्नादेशे भत्वाद् 'यस्येति च' इत्यलोपे णत्व विभक्तिकार्ये 'गार्ग्यायणः' इति।

औडुलोमिः--उडूनि नक्षत्राणीव लोमानि यस्य स उडुलोमा, उडुलोम्नोऽपत्यमिति विग्रहे 'बाह्वादिभ्यश्च' इति इञि आदिवृद्धौ 'नस्तद्धिते' इति टिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। उडुलोम्नोऽपत्यानीति विग्रहे तु 'लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन अकारप्रत्यये टिलोपे विभक्तिकार्ये 'उडुलोमा' इति सिद्धम्।

१०१७. प्रत्यय के आदिभूत फ के स्थान में आयन्; ढ के एय् ख को ईन्, छ को ईय् और घ को इय् आदेश होता है।

१०१८. आपत्य अर्थ में अदन्त प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय हो।

१०१९ बह्वादि से इञ् प्रत्यय हों, अपत्य अर्थ में।

वा०- बहुत्वविशिष्ठ अपत्य अर्थ में लोमन् शब्द से अकार प्रत्यय हो।

१०२०. विदादिगण में पठित ऋषि वाचक शब्दों से गोत्र अर्थ में तथा ऋषि भिन्न वाचक शब्दों से अपत्य अर्थ में अञ् (अ) प्रत्यय होता है।

वैदः । वैदौ । विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः । दुहितुः अपत्य दौहित्रः ।

१०२१. शिवादिभ्योऽण् ४।१।११४॥

अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ।

१०२२. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४।१।११४॥

ऋषिभ्यः–वाशिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः–श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः-वासुदेवः । कुरुभ्यः–नाकुलः । साहदेवः ।

१०२३. मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४।१।११५॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ।

१०२४. स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः ।

शैवः—शिवस्य गोत्रापत्यमिति विग्रहे 'शिवादिभ्योऽण्' इत्यणि आदिवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये 'शैवः' इति सिद्धिः ।

श्वाफल्ककः—श्वफलकस्यापत्यमिति विग्रहे "ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' इत्यणि आदिवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

षाण्मातुरः—षण्णां मातृणामपत्यमिति विग्रहे तद्धितार्थे' ति समासे सुब्लुकि षस्य जश्त्वेन डकारे तस्य 'यरोऽनुनासिके—' इति णत्वे षण्मातृशब्दात् 'मातुरुत्संख्येति' अणि उत्वे रपरत्वे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०२१ शिवादि गणपठित शब्दप्रकृतिक षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से अण् प्रत्यय होता है, अपत्य अर्थ में ।

१०२२. अपत्य अर्थ में, ऋषि, अन्धक, वृष्णि या कुरु वाचक षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से 'अण् प्रत्यय होता है ।

१०२३. संख्या, सम् एवं भद्र—पूर्व जो मातृ शब्द उसको उत् आदेश होता है तथा अण् प्रत्यय होता है ।

१०२४. अपत्य अर्थ में स्त्री-प्रत्ययान्त प्रकृति षष्ठयन्त सुबन्त से ढक् प्रत्यय होता है ।

१०२५. कन्यायाः कनीन च ४।१।११६।।

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

१०२६. राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७।।

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् ।

१०२७. ये चाऽभावकर्मणोः ६।४।१६८।।

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः जातावेवेति किम् ?

१०२८. अन् ६।४।१६७।।

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः । श्वशुर्यः ।

१०२९. क्षत्त्राद्घः ४।१।१३८।।

क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्त्रिरन्यत्र ।

१०३०. रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६।।

१०३१. ठस्येकः ७।३।५०।।

कानीनः—कन्यायाः अपत्यमिति विग्रहे 'कन्यायाः कनीन च' इति अणि कन्यायाः कनीनादेशे भत्वाद् अलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०२५. कन्या शब्द को कनीन आदेश तथा चकारात् अण् प्रत्यय भी होता है ।

१०२६. अपत्य अर्थ में राजन् एवं श्वसुर शब्द-प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ से यत् प्रत्यय होता है । राजन् शब्द से जाति वाच्य हो तो भी यत् प्रत्यय होता है ।

१०२७. भावकर्म को छोड़कर तद्धिती यकारादि प्रत्यय परे रहते अन् का लोप नहीं होता है ।

१०२८. अन् प्रकृति से ही रहता है, अण् प्रत्यय पर हो तो ।

१०२९. अपत्य अर्थ में क्षत्र शब्द से 'घ' प्रत्यय होता है जातिवाच्य हो तो ।

१०३०. रेवत्यादिगणपठित शब्दों से ठक् , प्रत्यय होता है ।

१०३१. अङ्ग से परे 'ठ' को इक्' आदेश होता है ।

अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः ।

१०३२. जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४।१।१६८॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः ।

१. वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् ।

पञ्चालानां राजा पाञ्चालः ।

२. वा०—पूरोरण् वक्तव्यः । पौरवः ।

३. वा०—पाण्डोर्ड्यण् । पाण्ड्यः ।

१०३३. कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२॥

कौरव्यः । नैषध्यः ।

१०३४. ते तद्राजाः ४।१।१७४॥

अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ।

१०३५. तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् २।४।६२॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्, तदर्थकृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः—इत्यादि ।

रैवतिकः—रेवत्याः अपत्यमिति विग्रहे 'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' इति ठकि ठस्येकारादेशे 'किति च' त्यादिवृद्धौ भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०३२. जनपद अथ बोध कराते हुए—क्षत्रिय वाची जो शब्द उससे अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है ।

(१) वा०—जनपद वाची क्षत्रिय तुल्य शब्द से राजा अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय होता है ।

(२) वा०—पुरु शब्द से अण् प्रत्यय होता है ।

(३) वा०—पाण्डु शब्द से ड्यण् प्रत्यय होता है ।

१०३३. कुरु एवं नकारादि शब्द से ण्य प्रत्यय होता है ।

१०३४. पहले कहे गए अञ् आदि प्रत्यय तद्राज संज्ञक होता है ।

१०३५. स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर यदि प्रत्ययकृत बहुत्व हो तो बहुत्व अर्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है ।

१०३६. कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् । कम्बोजः । कम्बोजौ ।

वा०--कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् । चोलः । शकः । केरलः । यवनः ।

॥ इति अपत्याधिकारप्रकरणम् ॥

१०३६. कम्बोज शब्द से विहित तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का लोप होता है ।

वा०—कम्बोजादि-गणपठित शब्दों से परे तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लोप होता है, इस प्रकार कहना चाहिए ।

॥ इति अपत्याधिकारप्रकरणम् ।

अथ रक्ताद्यर्थकप्रकरणम्

१०३७ तेन रक्तं रागात् ४।२।१॥

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेन रक्तं वस्त्रं काषायम् ।

१०३८. नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३॥

अण् स्यात् ।

वा०--तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राऽणि यलोप इति वाच्यम् । पुष्येण युक्तं पौषम् -अहः ।

१०३९. लुबविशेषे ४।२।४॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात्, षष्ठिदण्डात्मकस्य कालस्याऽवान्तर-विशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ।

१०४० दृष्टं साम ४।२।७॥

तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ।

तेन रक्तं रागात्—तेनेति, रागवाचकात्तृतीयान्तात् रक्तमित्य-स्मिनर्थे अण् स्यादित्यर्थः ।

नक्षत्रेण युक्तः कालः—नक्षत्रवाचिनस्तृतीयान्तात् समर्थशब्दात् युक्त इत्यर्थे अण् प्रत्ययः स्यात्, योऽसौ युक्तः स कालश्चेद् भवतीत्यर्थः ।

दृष्टंसाम—तृतीयान्तात् समर्थाद् दृष्टं साम इत्यर्थे अण् स्यात् यद् दृष्टं साम चेद्भवतीत्यर्थः ।

१०३७. रक्त अर्थ में रागवाचक तृतीयान्त से अण् प्रत्यय होता है ।

१०३८. नक्षत्र–वाचक–शब्द—प्रकृति तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से "युक्तः कालः" अर्थ में अण् प्रत्यय होवे ।

१०३९. तिष्य एवं पुष्य के अकार का लोप हो, नक्षत्र विहित अण् पर हो तब ।

१०४०. तृतीयान्त जो समर्थ सुबन्त उससे 'दृष्ट' अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, यदि वह दृष्ट साम हो तब ।

१०४१. वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४।२।९॥

वमदेवेन दृष्टं साम–वामदेव्यम् ।

१०४२. परिवृतो रथः ४।२।१०॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः ।

१०४३. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४।२।१४॥

शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ।

१०४४. संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्रा यवाः ।

१०४५. साऽस्य देवता ४।२।२४॥

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पत्यम् ।

१०४६. शुक्राद्घन् ४।२।२६॥

शुक्रियम् ।

वामदेवा — तृतीयान्तात् समर्थात् वामदेवशब्दाद दृष्ट सामेत्यर्थे ड्यत्-ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवत इत्यर्थः ।

पाशुपतम्— पशुपतिर्देवताऽस्येति विग्रहे पशुपतिशब्दाद् 'साऽस्य देवता' इत्यणि वृद्धौ भत्वादिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०४१. वामदेव-शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ से ड्यत् एवं ड्य प्रत्यय होते हैं ।

१०४२. तत्तत्— शब्दप्रकृति तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से अण् प्रत्यय होता है । परिवृत्त अर्थ में ।

१०४३. उद्धृत अर्थ में पात्रवाची सप्तम्यन्त से यथाविहित अणादि प्रत्यय होवे ।

१०४४. संस्कृत अर्थ में सप्तम्यन्त से अण् प्रत्यय हो यदि वह भक्ष्य हो तब ।

१०४५. षष्ठी के अर्थ में देवतावाचक प्रथमान्त से अणादि प्रत्यय हो जाए ।

१०४६. देवतावाचक शुक्र शब्द से घन् प्रत्यय होता है ।

१०४७. सोमाट्ट्यण् ४।२।३०॥

सौम्यम् ।

१०४८. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१॥

वायव्यम् । ऋतव्यम् ।

१०४९. रीङ् ऋतः ७।४।२७॥

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङा-देशः । यस्येति च । पित्र्यम् । उषस्यम् ।

१०५०. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४।२।३६॥

एते निपात्यन्ते पितुर्भ्राता पितृव्यः । मातुर्भ्राता मातुलः । मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः ।

१०५१. तस्य समूहः ४।२।३७॥

काकानां समूहः काकम् ।

१०५२. भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८॥

भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । इह 'भस्याऽढे तद्धिते' इति पुंवद्भावे कृते—

१०५३. इनण्यनपत्ये ६।४।१६४॥

पित्र्यम्—पितरो देवताऽस्येति विग्रहे 'वाय्वृतुपित्रुषसोयत्' इति यति 'रीङ्ऋतः' इति ऋतो रीङि भत्वादीकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०४७. देवतावाचक सोमशब्द से ट्यण् प्रत्यय हो 'अस्य' अर्थ में ।

१०४८. देवतावाचक प्रथमान्त वायु आदि शब्द से यत् प्रत्यय हो ।

१०४९. कृद्भिन्न यकार और असार्वधातुक यकार के परे तथा च्वि प्रत्यय के परे ऋदन्त अङ्ग को रीङ आदेश होता है ।

१०५०. पितृव्य, मातुल, मातामह एवं पितामह—ये शब्द निपातन से सिद्ध होता हैं ।

१०५१. यथाविहित प्राग्दीव्यतीय अणादि प्रत्यय हो, समूह अर्थ में ।

१०५२. भिक्षादि से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

१०५३. अपत्य अर्थ से भिन्न में अण् प्रत्यय के परे 'इन्' प्रकृतिवत रहे ।

१०५४. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३॥

१. वा०—'तलन्तं स्त्रियाम्'। ग्रामता। जनता। बन्धुता।

२. वा०—**गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्**। गजता। सहायता।

३. वा०—**अह्नः खः क्रतौ**। अहीनः।

१०५५. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७॥

१०५६. इसुसुक्तान्तात्कः ७।३।५१॥

इसुसुक्तान्तात्परस्य ठस्य कः। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्।

१०५७. तदधीते तद्वेद ४।२।५९॥

१०५८. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्। तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवतम्।

जनताः—जनानां समूह इति विग्रहे जनशब्दात् 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्यये 'तलन्तं स्त्रियाम्' इति स्त्रीत्वाट्टापि विभक्तिकार्ये वरिसद्धम् (एवं बन्धूनां समूहः 'बन्धुता' इत्यपि बोध्यम्।)

१०५४. अर्थ में ग्राम, जन और बन्धु शब्द से 'तल्' प्रत्यय होता है।

१. वा०—तल प्रत्ययान्त सुबन्तों का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

२. वा०—गज एवं सहाय शब्द से भी तल् प्रत्यय होता है।

३ वा०—अहन् शब्द से ख प्रत्यय होता है ऋतु अर्थ में।

१०५५. समूह अर्थ में अचित वाचक (अप्राणि), शब्द हस्तिन् शब्द और धेनु शब्द से ठक् प्रत्यय हो।

१०५६. इस्, उस्, उक् या त हो अन्त में जिसके उससे परे जो ठ (ठक्) को क होता है।

१०५७. 'अधीते' और 'वेद' अर्थ में अणादि प्रत्यय हो द्वितीयान्त से।

१०५८. पदान्त यकार, वकार से परे वृद्धि नहीं होती, किन्तु यकार वकार से पूर्व को क्रम से ऐ, औ, आदेश होते हैं।

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्याचो न वृद्धिः । किं तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजावागमौ स्तः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ।

१०५९. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१॥

क्रमकः । पदकः । शिक्षकः । मीमांसकः ।

॥ इति रक्ताद्यर्थकप्रकरणम् ॥

वैयाकरणः—व्याकरणमधीते वेत्ति वेदार्थे 'तदधीते तद्वेद' इत्यनेन व्याकरणशब्दादणि भत्वादलोपे 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' इति यकारात् पूर्वमैजागमे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

मीमांसकः—मीमांसामधीते वेद वेत्यर्थे मीमांसाशब्दात् 'क्रमादिभ्यो वुन्' इतिवुनि वोरकादेशे भत्वात् 'यस्येति च' त्याकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

॥ इति रक्तार्थकप्रकरणम् ॥

१०५६. अधीते और वेद अर्थ में क्रमादि से 'वुन्' प्रत्यय हो ।

॥ इति रक्ताद्यर्थकप्रकरणम् ॥

अथ चातुरर्थिकप्रकरणम्

१०६०. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः ।

१०६१. तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८॥

कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी ।

१०६२. तस्य निवासः ४।२।६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः ।

१०६३. अदूरभवश्च ४।२।७०॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम् ।

१०६४. जनपदे लुप् ४।२।८१॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ।

तदस्मिन् इति—प्रथमान्तादस्मिन्नस्तीत्यर्थे अणादयः प्रत्ययाः स्युः प्रत्ययान्तेन तन्नाम्नि देशे गम्यमाने इति सूत्रार्थः ।

कौशाम्बी—कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी । अत्र कुशाम्ब-शब्दात् 'तेन निर्वृत्तम्' इत्यणि आदिवृद्धौ भत्वादलोपे स्त्रीत्वविवक्षायां अणन्तत्वात् 'टिड्ढाणञ्' इति ङीपि विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

१०६०. यदि तन्नामा (प्रथमान्त सुबन्त नामा) देश हो तो प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्मिन् अस्ति' अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होता है ।

१०६१. निर्वृत्त अर्थ में तृतीया समर्थ सुबन्त से विहित (अणादि) प्रत्यय होता है ।

१०६२. निवास अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त अर्थ से यथाविधि (अणादि) प्रत्यय होते हैं ।

१०६३. षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'अदूरभव' अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होता है ।

१०६४. चातुरर्थिक-प्रत्यय का लुप् (लोप) होता है जनपद (देश वा जनसमूह) वाच्य रहे तब ।

१०६५. लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १।२।१॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः। पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः। कुरवः। अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः।

१०६६. वरणादिभ्यश्च ४।२।८२॥

अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः।

१०६७. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४।२।८७॥

१०६८. झयः ८।२।१०॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः। कुमुद्वान्। नड्वान्।

१०६९. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९॥

मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः। वेतस्वान्।

१०७० नडशादाड्ड्वलच् ४।२।८८॥

नड्वलः। शाद्वलः।

१०७१. शिखाया वलच् ४।२।८९॥

शिखावलः। ॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

वेतस्वान्—नडाः सन्त्यत्रेति नड्वलः। शादाः सन्त्यत्रेति शाद्वलः। शिखा अस्त्यस्मिन् देशे शिखावलः।

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

१०६५. लिङ्ग तथा वचन लुप् हो जाने पर प्रकृतिवत् हो जाते हैं।

१०६६. चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् वरणादिगण पठित प्रकृतिक षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से होता है।

१०६७. कुमुद नड और वेतस शब्दों से 'ड्मतुप्' प्रत्यय होता है।

१०६८ झयन्त से परे मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है।

१०६९. यवादिगण को छोड़कर मकार या अवर्ण है अन्त में जिसके एवं मकार या अवर्ण है उपधा में जिसके उससे परे 'मतुप्' प्रत्यय होता है।

१०७०. चातुरर्थिक अर्थ में 'ड्वलच्' प्रत्यय होता है नड एवं शाद शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से।

१०७१. शिखाशब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से 'वलच्' प्रत्यय होता है।

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

अथ शैषिकप्रकरणम्

१०७२. शेषे ४।२।९२॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राऽणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। चतुर्भिरुह्यं चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

१०७३. राष्ट्राऽवारपाराद्घखौ ४।२।९३॥

आभ्यां क्रमाद्घखौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः। अवारपारीणः। वा०—अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद्घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः, समर्थविभक्तय श्च वक्ष्यन्ते।

राष्ट्रियः—राष्ट्रे जातः, भवः इत्यादिविग्रहे "राष्ट्राऽवारपाराद्घखौ" इति घप्रत्यये घस्य इयादेशे भत्वात् 'यस्येति च' इत्यकरलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

पारावारीणः—'राष्ट्राऽवारपाराद्घखौ' इति सूत्रस्थ अवारपाराद्विगृहीतादपि, विपरीताच्चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकस्यायमर्थः—विगृहीतात्=पृथग्भूतात् अवारशब्दात् पारशब्दाच्च, च=पुनः विपरीतात् = पारावारशब्दादपि खप्रत्ययो वक्तव्यः। ततश्चावारे जातः 'अवारीणः', पारे जातः 'पारीणः', पारावारे जातः 'पारावारीणः' इति रूपत्रयं भवति। अत्र

१०७२. अपत्यादि चतुरर्थ्यन्त से भिन्न अर्थ का नाम शेष है—उन शेष अर्थों में 'अण्' आदि प्रत्यय होते हैं।

१०७३. शेष अर्थों में राष्ट्र शब्द से 'घ' और अवारपार शब्द से 'ख' प्रत्यय होता है।

वा०—अवार शब्द से, पार शब्द से और पारावार शब्द से भी 'ख' प्रत्यय हो जाए—ऐसा कहना चाहिए। { अवार—विगृहीत
पार—विपरीत }

१०७४ ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४॥

ग्राम्यः । ग्रामीणः ।

१०७५ नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७॥

नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ।

१०७६. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८॥

दाक्षिणात्यः । पाश्चात्त्यः । पौरस्त्यः ।

१०७७. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१॥

दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

१०७८. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४॥

(१) वा०—**अमेहक्वतसित्रेभ्य एव** । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः ।

(२) वा०—**त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्** । नित्यः ।

खस्य ईनादेशः भत्वादलोपः नस्य णत्वमिति विशेषः अवारपारीणः इति तु चतुर्थं रूपं बोध्यम् ।

ग्रामीणः—ग्रामे जातादिरिति विग्रहे ग्रामशब्दात् 'ग्रामाद्यखञौ' इति खञि खस्य ईनादेशे भत्वाद् अलोपे णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

१०७४. जाति अर्थों में ग्राम शब्द से 'य' और 'ख' प्रत्यय हो ।

१०७५. नद्यादि से ढक् प्रत्यय जातादि अर्थों में हो ।

१०७६. जातादि अर्थों में, दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दों से त्यक् प्रत्यय हो ।

१०७७. जातादि अर्थों में यत् प्रत्यय दिव्, प्राञ्च, अप्राञ्च, उदञ्च् और प्रत्यञ्च शब्दों से होता है ।

१०७८. जात्याद्यर्थों में अव्यय से त्यप् प्रत्यय होता है ।

१. (वा०)—अमा, इह, क्व, तसि, त्र—इन अव्ययों से भी त्यप् प्रत्यय हों ।

२. (वा०)—ध्रुव अर्थ में 'नि' रूप अव्यय से त्यप् प्रत्यय हो ।

१०७९ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७३॥

यस्य समुदायस्याऽचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसंज्ञं स्यात् ।

१०८०. त्यदादीनि च १।१।७४॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः ।

१०८१. वृद्धाच्छः ४।२।११४॥

शालीयः । मालीयः । तदीयः । (वा०)—**वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या** । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ।

१०८२. गहादिभ्यश्च ४।२।१३८॥

गहीयः ।

१०८३. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४।३।१॥

चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वाऽयं युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

शालीयः—'शालायां भवः' इति विग्रहे 'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्' इति सूत्रेण 'शाला' शब्दस्य वृद्धिसंज्ञायां 'वृद्धाच्छः' इति सूत्रेण छ प्रत्यये सुपो लुकि 'आयनेयीत्यादिना' 'छ' इत्यस्य ईयादेशे भत्वेनाकारस्य लोपे प्रातिपदिकसंज्ञायां 'सु' विभक्तावनुबन्धलोपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'शालीयः' इति ।

१०७९. जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिस्वरूप हो वह समुदाय वृद्धि संज्ञक होता है ।

१०८०. त्यदादि की वृद्धि संज्ञा हो ।

१०८१. जातादि अर्थों में वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होता है ।

वा०—नामधेय की वृद्धसंज्ञा विकल्प से हो ।

१०८२. गहादिगणपठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से भी 'छ' प्रत्यय होता है ।

१०८३. विकल्प से युष्मद्-अस्मद् शब्दों से 'खञ्' और 'छ' हो (विकल्प पक्ष में 'अण्' होगा)

१०८४. तस्मिन्नणि च युष्माकाऽस्माकौ ४।३।२॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञ्यणि च। यौष्माकीणः। आस्माकीनः। यौष्माकः। आस्माकः।

१०८५. तवकममकावेकवचने ४।३।३॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च। तावकीनः। तावकः। मामकीनः। मामकः। छे तु—

१०८६. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेतयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः। त्वदीयः। मदीयः। त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः।

१०८७. मध्यान्मः ४।३।८॥

मध्यमः।

१०८८. कालाट्ठञ् ४।३।११॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्। कालिकम्। मासिकम्। सांवत्सरिकम्।

वा०—**अव्ययानां भमात्रे टिलोपः**। सायम्प्रातिकः। पौनःपुनिकः।

अस्माकीनः—आवयोरस्माकं वाऽयमिति विग्रहे 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' इति अस्माच्छब्दात् खञि खस्य ईनादेशे 'तस्मिन्नणि च युष्माकाऽस्माकौ' इत्यनेन अस्माकादेशे आदि वृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

१०८४. युष्मद् और अस्मद् शब्द को क्रमशः 'युष्माक' और 'अस्माक' आदेश होता है खञ् या अण् प्रत्यय से पर में हो तब।

१०८५. खञ् और अण् प्रत्यय के परे एकार्थी युष्मद्-अस्मद् शब्द को तवक, ममक आदेश होता है।

१०८६. प्रत्यय के परे तथा उत्तरपद के परे एकार्थवाची युष्मद्-अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को 'त्व' 'म' आदेश होता है।

१०८७. जातादि अर्थों में मध्य शब्द से 'म' प्रत्यय हो।

१०८८. जातादि अर्थ में कालवाचक से ठञ् प्रत्यय हो।

वा०—भसंज्ञक अव्यय के 'टि' का लोप हो।

१०८९. प्रावृष एण्यः ४।३।१७॥

प्रावृषेण्यः ।

१०९०. सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णे-प्रगे-अनयोरेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् ।

१०९१. तत्र जातः ४।३।२५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । उत्से जातः औत्सः । राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः । अवारपारे जातः अवारपारीणः इत्यादि ।

१०९२ प्रावृषष्ठप् ४।३।२६ ।

एण्यापवादः । प्रावृषिकः ।

१०९३. प्रायभवः ४।३।३९॥

तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः ।

१०९४ संभूते ४।३।४१॥

स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः ।

औत्सः —अत्र 'उत्सादिभ्योऽञ्' इति 'अण्' प्रत्ययः ।

राष्ट्रियः—इत्यत्र 'राष्ट्रावारपार—' इति घप्रत्ययः ।

१०८९. जातादि अर्थों में कालवृत्ति प्रावृष् शब्द से एण्य प्रत्यय हो ।

१०९०. 'ट्यु' तथा 'ट्युल्' प्रत्यय सायं, चिरं, प्राह्णे या प्रगे—इन चारों से एवं कालवाची अव्यय से होता है, एवं उनको तुट् का आगम भी होता है ।

१०९१. अणादि और घादि प्रत्यय सप्तम्यन्त समर्थ से जात अर्थ में होता है ।

१०९२. जात अर्थ में प्रावृष् शब्द से ठप् प्रत्यय हो ।

१०९३. अणादि एवं घादि प्रत्यय प्रायभव अर्थ में (यथासम्भव) होता है ।

१०९४. सम्भूत अर्थ में सप्तम्यन्त से अणादि और घादि प्रत्यय हो ।

१०९५. कोशाड्ढञ् ४।३।४२।।

कौशेयं वस्त्रम् ।

१०९६. तत्र भवः ४।३।५३।।

स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः ।

१०९७. दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४।।

दिश्यम् । वर्ग्यम् ।

१०९८. शरीरावयवाच्च ४।३।५५।।

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । वा०—अध्यात्मादेष्ठञिष्यते । अध्यात्मनि भवम् आध्यात्मिकम् ।

१०९९. अनुशतिकादीनां च ७।३।२०।।

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।

११००. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२।।

जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

तत्रभवः—भव इत्यर्थे सप्तम्यन्तसमर्थादणादयो भवन्ति ।

पारलौकिकम्—परलोके भवं पारलौकिकम् । 'अध्यात्मादिष्टञिष्यते' इति ठस्येकादेशे उभयपदवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

१०९५. सम्भूत अर्थ में सप्तम्यन्त कोश शब्द से 'ठञ्' प्रत्यय हो ।

१०९६. भवार्थ में सप्तम्यन्त से अणादि प्रत्यय और घादि प्रत्यय हो ।

१०९७. भवार्थ में दिवादि सप्तम्यन्त से यत् प्रत्यय हो ।

१०९८. भाव अर्थ में शरीरावयववाची सप्तम्यन्त से यत् प्रत्यय होता है।

(वा०)—अध्यात्मादि गण पठित समर्थ सुबन्त से भव अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

१०९९. ञित्, णित् और कित् के परे अनुशतिकादि के उभय पद की वृद्धि हो ।

११००. जिह्वामूल तथा अङ्गुलि-शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से भव-अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ।

११०१. वर्गान्ताच्च ४।३।६३॥

कवर्गीयम् ।

११०२. तत आगतः ४।३।७४॥

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ।

११०३. ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५॥

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ।

११०४. विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७॥

औपाध्यायकः । पैतामहकः ।

११०५. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१॥

समादागतं समरूप्यम् । विषमरूप्यम् । पक्षे—गहादित्वाच्छः । समीयम् । विषमीयम् । दैवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ।

११०६. मयट् च ४।३।८२

सममयम् । देवदत्तमयम् ।

पैतामहकः—पितामहादागतः इति विग्रहे पितामह शब्दात् 'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्' इति वुञि वुनोऽकादेशे आदिवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

११०१. भव-अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है वर्गान्तशब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से ।

११०२. आगत अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय और घादि प्रत्यय हो ।

११०३. आगत अर्थ में आयस्थान (चुङ्गी, चौकी) वाची पञ्चम्यन्त से ठक् प्रत्यय हो ।

११०४. विद्यासम्बन्धवाचक तथा योनिसम्बन्धवाचक शब्द प्रकृतिक पञ्चम्यन्त से वुञ् प्रत्यय होता है, आगत अर्थ में ।

११०५. आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाचक से रूप्य प्रत्यय हो विकल्प से ।

११०६. आगत अर्थ में, हेतुवाचक और मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त से मयट् प्रत्यय हो ।

१११०७. प्रभवति ४।३।८३॥

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ।

११०८. तद् गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५॥

स्रुघ्ने गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ।

११०९. अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४।३।८६॥

स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् ।

१११०. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७॥

शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः ।

११११. सोऽस्य निवासः ४।३।८९॥

स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ।

१११२ तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ।

पाणिनीयम्—अत्र 'वृद्धाच्छः' इति छः प्रत्ययः ।

११०७. पञ्चम्यन्त से यथाविहित अणादि प्रत्यय और घादि प्रत्यय हों, प्रभवति अर्थ में ।

११०८. गच्छति अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय होते हैं द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से, परन्तु वह यदि पन्था या दूत हो तब ।

११०९. द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'अभिनिष्क्रामति' अर्थ में अणादि तथा घादि प्रत्यय हो, यदि द्वार वाच्य हो तब ।

१११०. 'अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः' इस अर्थ में यथाविहित अणादि और घादि प्रत्यय हो द्वितीयान्त से ।

११११. 'अस्य निवासः' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं। प्रथमान्त सुबन्त समर्थ से ।

१११२. 'प्रोक्त' अर्थ में तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१११३. तस्येदम् ४।३।१२०॥

उपगोरिदम्—औपगवम्।

॥ इति शैषिकाः ॥

१११३. षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से अणादि प्रत्यय होते हैं 'इदम्' अर्थ में।

॥ इति शैषिकप्रकरणम् ॥

अथ विकारार्थकप्रकरणम्

११**१**४. तस्य विकारः ४।३।१३४।।

वा०—अश्मनो विकारो टिलोपो वक्तव्यः। अश्मनो विकारः आश्मः। भास्मनः। मार्त्तिकः।

१११५. अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४।३।१३५।।

चाद्विकारे। मयूरस्याऽवयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्।

१११६. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४।३।१४३।।

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्यात् विकारावयवयोः। अश्ममयम्। आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः। कार्पासम्। आच्छादनम्।

आश्मनम्—अश्मन् शब्दात् स्वार्थे कप्रत्ययः। तदभावे अश्मेत्यपि नाम। तस्य विकारो अवयवो वेत्यर्थे 'अश्मन्' शब्दात् 'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः इति मयटि नलोपे विभक्तिकार्ये 'अश्ममयम्' तस्य विकार इत्यणि 'अन्' इति प्रकृतिभावाट्टिलोपाऽभावे आदिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'आश्मनम्' इति। न च विकारार्थकत्वे 'अश्मनो विकारे टिलोपे वक्तव्यः' इति वार्तिकेन टिलोपः कुतो नेति वाच्यम्, पाषाणवाचकत्वेन प्रसिद्धस्याश्मन् शब्दस्यैव तत्र ग्रहणात् (पाषाणवाचक अश्मन्शब्दात् विकारभावे अणप्रत्ययः 'टिलोपः' आदिवृद्धिकृते आश्मनः इति भवति।)

१११४. अणादि प्रत्यय षष्ठ्यन्त सुबन्त से 'विकार' अर्थ में होते हैं।

(वा०)—अश्मन् शब्द की टि का लोप होता है विकार अर्थ में।

१११५. प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची अवयव तथा उनसे अतिरिक्त अर्थवाची से केवल विकार अर्थ में अणादि प्रत्यय हो।

१११६. विकार एवं अवयव अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'मयट्' प्रत्यय विकल्प से होता है भक्ष्य और अच्छादन अर्थ को छोड़कर।

१११७. नृत्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४॥
आम्रमयम् । शरमयम् ।
१११८. गोश्च पुरीषे ४।३।१४५॥
गोः पुरीषं गोमयम् ।
१११९. गोपयसोर्यत् ४।३।१६०॥
गव्यम् । पयस्यम् ।

॥ इति विकारार्थकाः ॥ (इति प्राग्दीव्यतीयाः)

१११७. वृद्ध-संज्ञक तथा शरादिगण पठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से नित्य 'मयट्' प्रत्यय होता है, विकार तथा अवयव अर्थों में ।

१११८. पुरीष अर्थ में गोशब्दप्रकृतिक षष्ठयन्त से मयट् प्रत्यय हो ।

१११९. विकारादि अर्थों में गो और पयस् प्रकृतिक षष्ठयन्त से यत् प्रत्यय हो ।

॥ इति विकारार्थकाः ॥ (इति प्राग्दीव्यतीयाः)

अथ ठगाधिकारप्रकरणम्

११२०. प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

११२१. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४।४।२

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितो वा आक्षिकः ।

११२२. संस्कृतम् ४।४।३॥

दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । मारीचिकम् ।

११२३. तरति ४।४।४॥

तेनेत्येव । उडुपेन तरति औडुपिकः ।

११२४. चरति ४।४।८॥

तृतीयान्ताद् गच्छति--भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् । हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना चरति दाधिकः ।

११२५. संसृष्टे ४।४ २२॥

दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ।

मारीचिकम् —मरीचेन संस्कृतं मारीचिकम् । मरीचशब्दात् 'संस्कृतम्' इति ठकि ठस्य इकादेशे 'किति च' इत्यादिवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत् सिद्धम् ।

११२०. 'तद्वहतिरथयुग-प्रसङ्गम्' सूत्र से पूर्व तक इस सूत्र का अधिकार जाता है ।

११२१. दीव्यति, खनति, जयति तथा जितम् इन चारों अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है तृतीयान्तसमर्थ सुबन्त से ।

११२२. 'संस्कृत' अर्थ में तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

११२३. 'तरति' अर्थ में तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११२४. गच्छति तथा भक्षयति अर्थों में तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११२५. संसृष्ट अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय तृतीयान्त समर्थ सुबन्त स होता है ।

११२६. उञ्छति ४।४।३२॥

बदराण्युञ्छति बादरिकः ।

११२७. रक्षति ४।४।३३॥

समाजं रक्षति सामाजिकः ।

११२८. शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४॥

शब्दं करोति शाब्दिकः । दर्दुरं करोति दार्दुरिकः ।

११२९. धर्मं चरति ४।४।४१॥

धार्मिकः । वा०—अधर्माच्चेति वक्तव्यम् । अधार्मिकः ।

११३०. शिल्पम् ४।४।५५॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ।

११३१. प्रहरणम् ४।४।५७॥

धार्मिकः—धर्मं चरति 'धार्मिकः' । धर्मशब्दात् 'धर्मं चरति' इति ठकि ठस्येकादेशे 'किति च' त्यादिवृद्धौ भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये इतिसिद्धम् ।

११२६. 'उञ्छति' अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११२७. रक्षति अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११२८. 'करोति' अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है शब्द और दुर्दर शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से ।

११२९. 'चरति' अर्थ में धर्म प्रकृतिक द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

वा०—अधर्म प्रकृतिक द्वितीयान्त से 'चरति' अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११३०. 'अस्य शिल्पम्' अर्थ में प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'ठक्' प्रत्यय होता है ।

११३१. 'अस्य प्रहरणम्' अर्थ में प्रथमान्त समर्थ सुबंत से ठक् प्रत्यय होता है ।

तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्या आसिकः । धानुष्कः ।

११३२. शीलम् ४।४।६१॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः ।

११३३. निकटे वसति ४।४।७३॥

नैकटिको भिक्षुकः ।

॥ इति ठगधिकारः ॥

धानुष्कः—धनुः प्रहरणमस्य धानुष्कः । धनुशब्दात् 'प्रहरणम्' इति ठकि 'इसुसुक्तान्तात्कः' इति ठस्य कादेशे किरवादादिवृद्धौ विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

॥ इति ठगधिकारः ॥

११३२. 'शीलमस्य' अर्थं में ठक् प्रत्यय प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

११३३. 'वसति' अर्थं में निकटशब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

॥ इति ठगधिकारः ॥

अथ प्राग्घितीयप्रकरणम्

११३४. प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५।।

तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

११३५ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६।।

रथं वहति रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः ।

११३६. धुरो यड्ढकौ ४।४।७७।।

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते--

११३७. न भकुर्छुराम् ८।२।७९।।

रेफवान्तस्य भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया इको दीर्घो न स्यात् । धुर्यः । धौरेयः ।

११३८. नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्य-वध्याऽऽनाम्यसमसमितसंमितेषु ४।४।९१।।

नावा तार्यं नाव्यं—जलम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं

युग्यः—युग्यं वहति इति विग्रहे 'तद्वहतिरथयुगप्रासङ्गम्' इति युग-शब्दात् यत्प्रत्यये भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत् सिद्धम् ।

धौरेयः—धुरं वहति इति विग्रहे धुरशब्दात् 'धुरो यड् ढकौ' इति ढकि 'किति चे' त्यादिवृद्धौ ढस्य एयादेशे विभक्तिकार्ये 'धौरेयः' इति ।

नाव्यम्—नावा तार्यमिति विग्रहे नौशब्दात् 'नौवयोधर्म—' इत्यादि-

---

११३४. 'यत्' प्रत्यय का अधिकार 'तस्मै हितम्' सूत्र के पूर्व तक रहता है ।

११३५. वहति अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, रथ, युग या प्रासङ्ग-शब्द-प्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से ।

११३६. वहति अर्थ में धुर्-शब्दप्रकृतिक द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से यत् एवं ढक् प्रत्यय होता है ।

११३७. भसंज्ञक तथा भुर् या धुर् की उपधाभूत 'इक्' को दीर्घ नहीं होता है ।

११३८. तार्य तुल्य-आदि अर्थों में नौ, वयस् आदि तत्तत्-शब्दप्रकृतिक तृतीयान्त समर्थ से यत् प्रत्यय होता है ।

धर्म्यम् । विशेण वध्यो विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् ।

११३९. तत्र साधुः ४।४।९८।।

अग्रे साधुः अग्र्यः । सामसु साधुः सामन्यः । ये चाभावकर्मणो-रिति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः ।

११४०. सभाया यः ४।४।१०५।।

सभ्यः । वा०—इति यतोऽवधिः ।

।। इति प्राग्घितीयाः ।।

सूत्रेण यत् प्रत्यये 'वान्तो यि प्रत्यये' इत्यवादेशे विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम् ।

शरण्यः—शरणे साधुरिति विग्रहे शरणशब्दात् 'तत्र साधुः' इति यत्प्रत्यये भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

।। इति प्राग्घितीयप्रकरणम् ।।

११३९. साधु अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से यत् प्रत्यय होता है ।

११४०. साधु अर्थ में सभा शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से यत् प्रत्यय होता है ।

।। इति प्राग्घितीयप्रकरणम् ।।

अथ छयतोरधिकारप्रकरणम्

११४१ प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१।।

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ।

११४२. उगवादिभ्यो यत् ५।१।२।।

प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवादः । शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु । गव्यम् । वा०--नाभि नभं च । नाभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् ।

११४३. तस्मै हितम् ५।१।५।।

वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् ।

११४४. शरीरावयवाद्यत् ५।१।६।।

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ।

११४५. आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ५।१।९।।

११४६. आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९।।

नभ्यम्—नाभये हितमिति विग्रहे नाभिशब्दात् 'उगवादिभ्यो यत्' इति यत्प्रत्यये नाभेर्नभादेशे भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे नभ्यमञ्जनमिति ।

११४१. 'छ' प्रत्यय का अधिकार 'तेन क्रीतम्' सूत्र से पूर्व तक जाता है।

११४२. हित अर्थ में उवर्णान्त से और गवादि से यत् प्रत्यय हो।

वा०—नाभि शब्द को नभ आदेश होता है।

११४३. हित अर्थ में छ प्रत्यय चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त होता है।

११४४. हित अर्थ में शरीरावयववाचक शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से 'छ' प्रत्यय होता है।

११४५. आत्मन्, विश्वजन या भोग शब्द उत्तरपद हो जिसका ऐसे प्रातिपदिक प्रकृतिक चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त से हित अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है।

११४६. आत्मन् तथा अध्वन् शब्द प्रकृति से ही रहते हैं यदि पर में

एतौ खे प्रकृत्या स्तः। आत्मने हितम् आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्। मातृभोगीणः।

इति छयतोः पूर्णोऽवधिः (इति प्राक्क्रीतीयाः)

मातृभोगीणः---मातुर्भोगः=शरीरं तस्मै हितमिति विग्रहे मातृभोगशब्दात् 'आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः' इति खप्रत्यये खस्य ईनादेशे भत्वादलोपे 'कुमति च' इति णत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

ख प्रत्यय हो तब।

॥ इति छयतोरधिकारप्रकरणम् ॥

अथ ठञाधिकारप्रकरणम्

११४७ प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८॥

तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति ततः प्राक् ठञधिक्रियते ।

११४८. तेन क्रीतम् ५।१।३७॥

सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ।

११४९. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१॥

११५०. तस्येश्वरः ५।१।४२॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः । वा०—अनुशतिकादीनां च सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः ।

११५१. पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५।१।५९॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ।

११५२. तदर्हति ५।१।६३॥

सार्वभौमः—सर्वभूमेरीश्वरः इति विग्रहे सर्वभूमिशब्दात् 'तस्येश्वरः' इति अण् प्रत्यये 'अनुशतिकादीनां च' इत्युभयपदवृद्धौ भत्वादिलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः । सार्वभौमः=पार्थिवः ।

॥ इति ठञोऽवधिः (इति प्राग्वतीयाः) ॥

११४७. ठञ् प्रत्यय का अधिकार 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' सूत्र से पूर्व तक है ।

११४८. क्रीत अर्थ में तृतीया समर्थ सुबन्त से ठञ् प्रत्यय होता है ।

११४९. अण्, अञ् प्रत्यय सर्वभूमि तथा पृथिवीशब्द प्रकृतिक षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

वा० – अनुशतकादिगणपठित शब्दों के उभयपदवृद्धि होती है ।

११५०. ईश्वर अर्थ में अण् अञ् प्रत्यय होते हैं ।

११५१. पंक्ति, विंशति आदि शब्दों की सिद्धि निपातन से होती है ।

११५२. 'लब्धुं योग्यो भवति' इस अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त से 'ठञ्' आदि प्रत्यय होते हैं ।

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः। श्वेतच्छत्र-महंति श्वैतच्छत्रिकः।

११५३. दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६॥

एभ्यो यत्स्यात्। दाण्ड्यः। अर्घ्यः। वध्यः।

११५४. तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९॥

अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम्।

॥ इति ठञोऽवधिः (इति प्राग्वतीयाः) ॥१०॥

११५३. दाण्डादिगण पठित शब्दों से यत् प्रत्यय होता है।

११५४. कालवाचक तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से ठञ् प्रत्यय होता है निवृत्त, सिद्ध, तैयार अर्थों में।

॥ इति ठगधिकारः ॥

अथ त्वतलाधिकार(भावकर्माद्यर्थक)प्रकरणम्

११५५. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते। क्रिया चेदिति किम्? गुणतुल्ये मा भूत्। पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

११५६. तत्र तस्येव ५।१।११६॥

मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। चैत्रस्येव चैत्रवत् मैत्रस्य गावः।

११५७. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वम्, गोता। त्वान्तं क्लीबम्।

११५८. आ च त्वात् ५।१।१२०॥

'ब्रह्मणस्त्व' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः स्त्रिया भावः स्त्रैणम्। स्त्रीत्वम्। स्त्रीता, पौंस्नम्। पुंस्त्वम्। पुंस्ता।

गोत्वम्—गोर्भावो गोत्वम्। अत्र गोशब्दात् 'तस्य भावस्त्वतलौ' इति त्वप्रत्यये विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

स्त्रैणम्—स्त्रिया भावः 'स्त्रैणम्' अत्र 'तस्य भावस्त्वतलौ' इति प्राप्तौ तं प्रबाध्य 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' इति नञि अनुबन्धलोपे आदि वृद्धौ णत्वे, विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

११५५. 'तुल्य' अर्थ में तृतीयान्त समर्थ सुबन्त से वति प्रत्यय होता है, किन्तु जिससे तुल्य हो वह यदि क्रिया हो तब।

११५६. इव अर्थ में सप्तम्यन्त या षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से वति प्रत्यय होता है।

११५७. त्व तथा तल् प्रत्यय षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से भाव अर्थ में प्रत्यय होता है।

११५८. त्व प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग होता है (तथा तल् स्त्रीलिङ्ग होता है।)

११५९. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२।।

वा वचनमणादिसमावेशार्थम् ।

११६०. र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१।।

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यादिष्ठेमेयस्सु परतः। वा० —**पृथुमृदु-भृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्।**

११६१. टेः ६।४।१५५।।

भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु। पृथोर्भावः प्रथिमा।

११६२. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१।।

इगन्ताल्लघुपूर्वात् प्रातिपदिकाद्भावेऽण् प्रत्ययः। पार्थवम् म्रदिमा। मार्दवम्।

प्रथिमा—पृथोर्भाव इति विग्रहे पृथु अस् इत्यस्मात् 'पृथ्वादिभ्य इम-निज्वा' इति विकल्पेन इमनिच् प्रत्यये चकारस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते इकारस्योच्चारणार्थत्वेन 'पृथुइमन्' इति स्थिते 'रऋतो हलादेर्लघोः' इति ऋवर्णस्य रकार आदेशे उकारस्य गुणं बाधित्वा 'टेः' इति टिलोपे प्राति-पदिकसंज्ञायां सौ 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' इति दीर्घे सुलोपे कृते 'प्रथिमा' इति। पक्षे 'इगन्ताश्च लघुपूर्वाद्' इत्यण् प्रत्यये आदिवृद्धौ यथाप्राप्तकार्ये च 'पार्थवम्' इति। त्वप्रत्यये कृते पृथुत्वमिति। तल् प्रत्यये कृते 'पृथुता' इति।

११५९. भाव अर्थ में पृथ्वादिगण पठित षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से इमनिच् प्रत्यय होता है विकल्प से।

११६०. हलादि लघु ऋकार को रो भाव होता है यदि इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् प्रत्यय पर में हो तब।

वा०—पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ, परिवृढ शब्दों के ही लघु ऋकार को रो भाव होता है।

११६१. भसंज्ञक टिकालोप इष्ठन्, इमनिच् और इयसुन् प्रत्यय पर हो तो भसंज्ञक टिकालोप होता है।

११६२. ऐसे इगन्त पद जिसके पूर्व में लघु हो तो भाव अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।

११६३. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५।१।१२३॥

चादिमनिच् । शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । दार्ढ्यम् । द्रढिमा ।

११६४. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४॥

चाद्भावे । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ।

११६५. सख्युर्यः ५।१।१२६॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ।

११६६. कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७॥

कापेयम् । ज्ञातेयम् ।

११६७. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८॥

सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ।

॥ इति त्वतलोरधिकारः ॥

(भावकर्माद्यर्थकः)

सैनापत्यम्—सेनापतेर्भावः कर्म वेति विग्रहे 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' इति यकि अनुबन्धलोपे 'किति च' इत्यादिवृद्धौ भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

॥ इति त्वतलोरधिकारः ॥

११६३. प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से 'ष्यञ्' प्रत्यय होता है, चकारात् इमनिच् प्रत्यय भी होता है यदि वर्णवाचक तथा दृढादिगणपठित हो तब ।

११६४. गुणोपसर्जन द्रव्यवाची और ब्राह्मणादि प्रकृतिक षष्ठ्यन्त से ष्यञ् प्रत्यय हो भाव और कर्म में ।

११६५. षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त सखि शब्द से कर्म एवं भाव में 'य' प्रत्यय होता है ।

११६६. कपि और ज्ञाति रूप प्रातिपदिक से ष्यञ् प्रत्यय हो भाव और कर्म में ।

११६७. भाव और कम में षष्ठ्यन्त प्रत्यन्त और पुरोहितादि से "यक्" प्रत्यय हो जाए ।

॥ इति त्वतलोरधिकारः ॥

अथ भवनाद्यर्थकप्रकरणम्

११६८. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१॥

भवत्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् ।

११६९. व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२॥

व्रैहेयम् । शालेयम् ।

११७०. हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५।२।२३॥

ह्योगोदोहशब्दस्य हियंगुरादेशो विकारार्थे खञ्च निपात्यते । दुह्यते इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनं नवनीतम् ।

११७१. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६॥

तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः । पण्डितः । आकृति॰ गणोऽयम् ।

११७२. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७॥

पण्डितः—सदसद्विवेकिनी 'बुद्धिः—पण्डा, पण्डा अस्ति अस्य इति पण्डितः, पण्डा शब्दात् (इतच् प्रत्यये) 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इति सूत्रेण 'इतच्' प्रत्यये अनुबन्धलोपे भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

११६८. 'भवन क्षेत्र' 'होने योग्य खेत' अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है धान्यवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से ।

११६९. 'भवन क्षेत्र' अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय व्रीहि तथा शालि शब्द प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

११७०. संज्ञा में 'हैयङ्गवीन' शब्द साधु होता है अर्थात् ह्योगोदोह शब्द को 'हियङ्गु' आदेश होता है और विकार अर्थ में खञ् प्रत्यय भी होता है 'ख' को इन होकर ञित्वादादि अच् को वृद्धि हो जाती है ।

११७१. 'अस्य सञ्जातम्' अर्थ में इतच् प्रत्यय तारकादिगण पठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

११७२. प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्य प्रमाणम्' अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय होते हैं ।

तदस्येत्यनुवर्तते। ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्। ऊरूदघ्नम्। ऊरुमात्रम्।

११७३. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९॥

यत्परिमाणमस्य–यावान्। तावान्। एतावान्।

११७४. किमिदम्भ्यां वो घः ५।२।४०॥

आभ्यां वतुप् स्याद्वकारस्य घश्च।

११७५. इदंकिमोरीश्की ६।३।९०॥

दृग्दृशवतुषु इदम ईश् किमः की स्यात्। इयान्। कियान्। [ईदृक्, ईदृशः। कीदृक्, कीदृशः—आदि]।

११७६. संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२॥

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्।

११७७. द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा ५।२।४३॥

इयान्—इदम्परिमाणमस्येति विग्रहे किमिदम्भ्यामिति वतुपि वस्य घत्वे च कृते, आयनेयीति घस्येयादेशे प्रातिपदिकत्वेन सौ, उगिदचामिति नुमागमेऽनुबन्धलोपे, इदं किमोरिति ईशादेशे, शलोपे, भत्वेन यस्येति चेतीकारलोपे, उपधादीर्घे, तकारस्य संयोगान्तलोपे इयान् सु इति स्थिते, हल्ङ्यादिना सोर्लोपे 'इयान्' इति।

११७३. अस्य परिमाण अर्थ में यद्, तद् या एतद् शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त से 'वतुप्' प्रत्यय होता है।

११७४. किम् और इदम् शब्द से वतुप् प्रत्यय होता है और व को घ होता है।

११७५. इदम् को 'ईश' तथा किम् को 'की' आदेश होता है। यदि दृग्, दृश या वतु प्रत्यय पर में हो तब।

११७६. 'अवयवाः अस्य' इस अर्थ में संख्यावाचक शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'तयप्' प्रत्यय होता है।

११७७. द्वि या त्रि शब्द से विहित जो तयप् प्रत्यय उसको विकल्प से अयच् आदेश होता है।

द्वयम् । द्वितयम् । त्रयम् । त्रितयम् ।

११७८. उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्स चोदात्तः । उभयम् ।

११७९. तस्य पूरणे डट् ५।२।४८॥

एकादशानां पूरण एकादशः ।

११८०. नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९॥

डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात्किम् ।

११८१. ति विंशते र्डिति ६।४।१४२॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे । विंशः । असंख्यादेः किम् ? एकादशः ।

११८२. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयशब्दस्याऽसङ्ख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

११८३. द्वेस्तीयः ५।२।५४॥

विंशः—'विंशतेः पूरणः' इति विग्रहे 'तस्य पूरणे' इति डटि 'ति विंशतेर्डिति' इति तिलोपे 'विंश अ' इति स्थिते 'असिद्धवदत्राभात्' इति तिलोपस्यासिद्धत्वात् 'यस्येति चे' ति लोपस्याऽप्राप्त्या 'अतो गुणे' इति पररूपे विभक्तिकार्ये 'विंशः' इति ।

११७८. उभयशब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से विहित जो तयप् उसको अयच् आदेश होता है और वह उदात्त संज्ञक होता है ।

११७९. पूरण अर्थ में षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त से 'डट्' प्रत्यय होता है ।

११८०. नकारान्त संख्यावाची शब्द से परे जो 'डट्' उसको 'मट्' का आगम होता है यदि पूर्व में कोई 'अन्य' संख्या नहीं हो तब ।

११८१. भसंज्ञक विंशति शब्द के 'ति' का डित् परे रहते लोप होता है ।

११८२ यदि डट् परे हो तो षट्, कति, कतिपय और चतुर शब्द को 'थुक्' का आगम होता है ।

११८३. द्वि शब्द प्रकृतिक षष्ठयन्त समर्थ से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है ।

इटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ।

११८४. त्रेः सम्प्रसारणं च ५।२।५५॥

तृतीयः ।

११८५. श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ५।२।८४॥

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेः—छान्दसः ।

११८६. पूर्वादिनिः ५।२।८६॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ।

११८७. सपूर्वाच्च ५।२।८७॥

कृतपूर्वी ।

११८८. इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८॥

इष्टमनेन इष्टी । अधीती ।

॥ इति भवनाद्यर्थकाः ॥

श्रोत्रियः—छन्दोऽधीते इति विग्रहे 'श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' इति निपातनात् 'छन्दः' शब्दात् घन् प्रत्यये छन्दः शब्दस्य श्रोत्रादेशे च विहिते घस्य इयादेशे भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

कृतपूर्वी—अविवक्षितकर्मकात्कृधातोर्भावे क्तप्रत्यये पूर्वं कृतमनेनेति विग्रहे, सह सुपेति समासोत्तरं सपूर्वाच्चेतीनि प्रत्यये यथाप्राप्तकार्ये च कृते तत्सिद्धिः ।

११८४. त्रि शब्द-प्रकृतिक षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और त्रि का सम्प्रसारण भी होता है ।

११८५. 'छन्दोऽधीते' वेद पढ़ता है इस अर्थ में 'श्रोत्रिय' निपातन होता है ।

११८६. 'इनि' प्रत्यय पूर्व शब्द प्रकृतिक द्वितीयान्त क्रियाविशेषण से होता है ।

११८७. 'अनेन कृतम्' इस अर्थ में सपूर्वक पूर्वान्त प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो ।

११८८. इष्टादि से 'इनि' प्रत्यय होता है ।

॥ इति भवनाद्यर्थकादि ॥

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

११८९. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४।।

गावोऽस्याऽस्मिन्वा सन्ति गोमान् ।

११९०. तसौ मत्वर्थे १।४।१९।।

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । गरुत्मान् । वसोः सम्प्रसारणम् विदुष्मान् । वा०—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः । कृष्णः ।

११९१. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६।।

चूडालः । चूडावान् । प्राणिस्थात्किम् ? शिखावान् दीपः । प्राण्यङ्गादेव । नेह-मेधावान् ।

११९२. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००।।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति—सत्ताक्रियाकर्तृभूतात्प्रथमान्तात्समर्थाद् 'अस्याऽस्मिन्वा' इत्यर्थे मतुप् स्यात् ।

भूमा-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ।।

गोमान्—गावोऽस्यास्मिन् इति विग्रहे गोशब्दात् 'तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति 'मतुप्' इति मतुपि अनुबन्धलोपे प्रातिपतिकत्वात् सौ उगित्त्वान्नुमि 'अत्वसन्तस्ये' ति दीर्घे सुलोपे संयोगान्तलोपे तत्सिद्धिः ।

११८९. प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'अस्यास्ति तथा अस्मिन्नस्ति' इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है ।

११९०. तान्त सान्त की भसंज्ञा होती है, मत्वर्थ प्रत्यय यदि पर में हो तब ।

११९१. 'अस्यास्ति' अर्थ में प्राणिस्थ आकारान्त शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त से लच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

११९२. लोमादिगण पठित शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'श' प्रत्यय तथा पामादि से 'न' प्रत्यय एवं पिच्छादि में इलच् प्रत्यय होता है ।

लोमादिभ्यः शः : लोमशः। लोमवान्। रोमशः। रोमवान्। पामादिभ्यो नः। पामनः। १. वा०-अङ्गात्कल्याणे। अङ्गना २. ग०-लक्ष्म्या अच्च। लक्ष्मणः। पिच्छादिभ्य इलच्। पिच्छिलः पिच्छवान्। उरसिलः। उरस्वान्।

११९३. दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः।

११९४. केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९॥

केशवः। केशी। केशिकः। केशवान्। १ वा०—अन्येभ्योऽपि दृश्यते। मणिवः। २ वा०—अर्णसो लोपश्च। अर्णवः।

११९५. अत इनिठनौ ५।२।११५॥

दण्डी। दण्डिकः।

११९६. व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६॥

दण्डी—दण्डोऽस्यास्तीति विग्रहे दण्डशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति इनि प्रत्यये भत्वात् 'यस्येति च' त्यकारलोपे प्रातिपदिकत्वात् सौ दीर्घे सुलोपे नलोपे 'दण्डी' इति।

---

१. वा०—कल्याण अर्थ में अङ्ग शब्द से 'न' प्रत्यय हो।

२. ग०—लक्ष्मी शब्द से 'न' प्रत्यय हो और लक्ष्मी को अकारान्त आदेश भी हो।

११९३. उन्नत अर्थ में दन्त शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से 'उरच्' प्रत्यय होता है।

११९४. 'व' प्रत्यय के शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से विकल्प से होता है।

१। वा०—अन्य शब्दों से भी 'व' प्रत्यय होता है।

२. वा०—अणस् शब्द से अन्त्य अल् तथा 'व' का लोप होता है।

११९५. इनि तथा ठन् प्रत्यय अदन्त शब्द प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है।

११९६. इनि और ठन् प्रत्यय व्रीह्यादि गणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है।

व्रीही । व्रीहिकः ।

११९७. अस्मायामेधास्रजो विनिः ५।२।१२१।।

यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ।

११९८. वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४।।

वाग्मी ।

११९९. अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७।।

अर्शास्यस्य विद्यन्ते अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ।

१२००. अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०।।

अहंयुः अहङ्कारवान् । शुभंयुस्तु शुभान्वितः ।

।। इति मत्वर्थीयाः ।।

स्रग्वी—स्रगस्यास्तीति विग्रहे स्रज्शब्दात् 'अस्माये'ति विनिप्रत्यये प्रातिपदिकत्वात् सौ 'चोः कुः'' इति जस्य कुत्वे 'सौ च' इति दीर्घे सुलोपे नलोपे तत्सिद्धिः ।

शुभंयुः—'शुभम्' इति मन्तव्ययं शुभे वर्तते, तस्मात् शुभमस्यास्तीति विग्रहे 'अहंशुभमोर्युस्' इति युसि 'सिति च' इति पदत्वात् मस्यानुस्वारे प्रातिपदिकत्वात् सौ सोर्लोपे सस्य रुत्वे विसर्गे 'शुभंयुः' इति ।

११९७. 'विनि' प्रत्यय असन्त-शब्द तथा माया, मेधा एवं स्रज-शब्द-प्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

११९८. 'ग्मिनि' प्रत्यय वाच्–शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

११९९. 'अच्' प्रत्यय 'अर्शस्' आदि गणपठित शब्दप्रकृतिक प्रथमान्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

१२००. अहं और शुभं—शब्दों से 'युस्' प्रत्यय होता है ।

।। इति मत्वर्थीयाः ।।

अथ प्राग्दिशीयप्रकरणम्

१२०१. प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥

'दिक्शब्देभ्य' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञा स्युः।

१२०२. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।२॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते।

१२०३. पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात्।

१२०४. कु तिहोः ७।२।१०४॥

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः। कस्मात्।

१२०५. इदम इश् ५।३।३॥

प्राग्दिशीये परे। इतः।

कुतः—कस्मादिति विग्रहे 'किम् ङसि' इति दशायां 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिलप्रत्यये, तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो धातुरिति सुपो लुकि 'कु तिहोः' इति किमः कुभावे कृते, स्वरादौ पाठेन तसिलन्तस्याव्ययत्वेन तद्धितान्तादागतस्य सुपो लुकि, ङसः सकारस्य रुत्वादिकार्ये कृते 'कुतः' इति।

१२०१. 'दिक्शब्देभ्यः' सूत्र से पूर्व आगे कहे जानेवाले प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक होते हैं।

१२०२. 'दिक्शब्देभ्यो: सप्तमी' यह अधिकार सूत्र है इससे पूर्व 'किम्—सर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः' यह अधिकार है।

१२०३. पञ्चम्यन्त किम् शब्द से तसिल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

१२०४. किम् शब्द को 'कु' आदेश होता है तादि या हादि विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय पर हो तब।

१२०५. इदम् शब्द को 'इश्' आदेश होता है प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तब।

१२०६. अन् ५।३।५॥

एतदः प्राग्दिशीये । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । अतः । अमुतः । यतः ततः । बहुतः । द्वयादेस्तु द्वाभ्याम् ।

११०७. पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥

आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः । सर्वत इत्यर्थः । अभितः । उभयत इत्यर्थः ।

१२०८. सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥

कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ।

१२०९. इदमो हः ५।३।११॥

त्रलोऽपवादः । इह ।

१२१०. किमोऽत् ५।३।१२॥

वा०— ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल् ।

१२११. क्वाऽति ७।२।१०५॥

अमुतः—पञ्चम्यन्ताद् 'अदस्' शब्दात् 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिलि सुब्लुकि आत्वे पररूपे उत्वे मत्वे प्रातिपदिकत्वात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि सस्य रुत्वे विसर्गे 'अमुतः' इति ।

सप्तम्यास्त्रल् —सप्तम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्त्रल् प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । कस्मिन्निति कुत्र ।

१२०६. एतत् शब्द को 'अन्' आदेश होता है प्राग्दिशीय विभक्ति पर हो तो ।

१२०७. परि तथा अभि शब्द से तसिल् प्रत्यय होता है ।

१२०८. 'त्रल्' प्रत्यय द्वयादिभिन्न किं सर्वनाम, बहुशब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त से होता है ।

१२०९. 'ह' प्रत्यय इदम्-शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त समर्थ से होता है ।

१२१०. 'अत्' प्रत्यय किम्—शब्दप्रकृतिक सप्तम्यन्त सुबन्त से होता है ।

१२११. 'किम्' शब्द को क्व आदेश होता है, 'अत्' पर में हो तब ।

किमः क्वादेशः स्यादिति । क्व । कुत्र ।

१२१२. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः । आयुष्मान् ।

१२१३. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

१२१४. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६॥

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम् ? सर्वत्र देशे ।

१२१५. इदमो र्हिल् ५।३।१६॥

सप्तम्यन्तात् काले इत्येव ।

१२१६. एतेतौ रथोः ५।३।४॥

इदम् शब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे अस्मिन्काले एतर्हि । काले किम् ? इह देशे ।

१२१२. पञ्चमी सप्तमी से भिन्न विभक्ति में भी 'तसिल्' आदि प्रत्यय होते हैं ।

१२१३. 'दा' प्रत्यय सर्व, एक, अन्य किं, यत् , तत्—शब्द प्रकृतिक कालार्थक सप्तम्यन्त समर्थ सुबन्त से होता है ।

१२१४. दादि (दकारादि) प्राग्दिशीय प्रत्यय पर हो तो सर्व-शब्द को 'स' आदेश होता है ।

१२१५. काल अर्थ में सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से 'र्हिल्' प्रत्यय विकल्प से होता है ।

१२१६. रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे इदम् को एत और इत आदेश हो ।

१२१७. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१।।

कर्हि । कदा । यर्हि । यदा । तर्हि । तदा ।

१२१८. एतदः ५।३।५।।

'एत' 'इत' एतौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये । एतस्मिन् काले एतर्हि ।

१२१९. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३।।

प्रकारवृतिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा ।

१२२०. इदमस्थमुः ५।३।२४।।

थालोऽपवादः । वा० –एतदोऽपि वाच्यः । अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् ।

१२२१ किमश्च ५।३।२५।।

केन प्रकारेण कथम् ।

।। इति प्राग्दिशीयाः ।। १४ ।।

कदा—कस्मिन् काले कदा । सप्तम्यन्तात् 'सर्वैकान्य—' इति दाप्रत्यये सुब्लुकि 'प्राग्दिशो विभक्तिः' इति विभक्ति-संज्ञायां 'किमः कः' इति कादेशे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः ।

तर्हि—सप्तम्यन्तात् 'तत्' शब्दात् 'अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्' इति र्हिल्प्रत्यये अत्वे पररूपे प्रातिपदिकत्वात् अव्ययत्वात् सुब्लुकि 'तर्हि' इति । पक्षे दाप्रत्यये सति 'तदा' इति भवति ।

।। इति प्राग्दिशीयाः ।।

१२१७ किमादि से 'र्हि' प्रत्यय होता है अनद्यतन अर्थ में विकल्प से ।

१२१८. एतद्-शब्द को एत, इत आदेश होता है यदि रेफादि या थकारादि प्राग्दिशीय विभक्ति पर में हो तब ।

१२१९. प्रकारवृत्ति किमादिशब्द–प्रकृतिक, सुबन्त से स्वार्थ अर्थ में 'थाल्' प्रत्यय होता है ।

१२२०. स्वार्थ अर्थ में इदम् शब्द से 'थमु' प्रत्यय होता है ।

१२२१. किम्–शब्द से भी स्वार्थ अर्थ में 'थमु' प्रत्यय होता है ।

।। इति प्राग्दिशीयाः ।।

अथ प्राग्दिवीयप्रकरणम्

१२२२. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५।।

अतिशयविशिष्टाऽर्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः। अयमेषामतिशयेन आढयः—आढयतमः। लघुतमः। लघिष्ठः।

१२२३. तिङश्च ५।३।५६।।

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्।

१२२४. तरप्तमपौ घः १।१।२२।।

एतौ घसंज्ञौ स्तः।

१२२५. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११।।

किम एतदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम् उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः।

१२२६. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७।।

किन्तमाम्—अयमेषामतिशयेन किमिति विग्रहे किम् शब्दात् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इति तमपि 'तरप्तमपौ घः' इति तस्य 'घसंज्ञायां 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' इति मकारोत्तराकारस्य लोपे स्वरादित्वादव्ययसंज्ञायां विभक्तेर्लुकि तत्सिद्धिः।

१२२२. तमप् तथा इष्ठन् प्रत्यय अतिशय (अत्यन्त) विशिष्टार्थवृत्ति शब्दप्रकृतिक सुबन्त से होता है।

१२२३. तिङन्त से भी तमप् प्रत्यय होता है यदि अतिशय अर्थ द्योत्य हो तब।

१२२४. तरप् तथा तमप्–प्रत्यय घसंज्ञक होते हैं।

१२२५. द्रव्य प्रकर्ष से भिन्न में किम् शब्द और एदन्त प्रातिपदिक, तिङन्त तथा अव्यय से पर जो घ, तदन्त से 'आमु' प्रत्यय होता है।

१२२६. यदि दो में से किसी एक का अतिशय द्योत्य होने पर तथा विभक्तव्य उपपद रहने पर सुबन्त एवं तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होता है।

द्वयोरेकस्याऽतिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः। लघीयान्। उदीच्याः। प्राचेभ्यः पटुतराः। पटीयांसः।

१२२७. प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०॥

अस्य आदेशः स्यादजाद्योः परतः।

१२२८ प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३॥

इष्टादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः। श्रेयान्।

१२२९. ज्य च ५।३।६१॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्वादिष्ठेयसोः। ज्येष्ठः।

१२३०. ज्यादादीयसः ६।४।१६०॥

आदेः परस्य। ज्यायान्।

१२३१. बहोर्लोपो भू च बहोः ६।३।१५८॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः। भूमा। भूयान्।

१२३२. इष्ठस्य यिट् च ६।४।१५९।

श्रयान्—अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः इति विग्रहे प्रशस्यशब्दात् द्वि वचनभिज्योपपदे 'इतीयसुनि अनुबन्धलोपे 'प्रशस्यस्य श्रः' इति श्रादेशे 'प्रकृत्यैकाच इति प्रकृतिभावात् टिलोपाऽभावेन गुणे प्रातिपदिकत्वात् सौ उगित्वान्नुमि 'सान्तमहतः संयोगस्य' इति दीर्घे सुलोपे तत्सिद्धिः।

१२२७. प्रशस्य शब्द को 'श्र' आदेश हो अजादि प्रत्यय पर में हो तब।

१२२८. इष्ठादि प्रत्यय पर हो तो एकाच् प्रकृति से ही रहता है।

१२२९. प्रशस्य को 'ज्य' आदेश होता है यदि इष्ठ या इयसुन् प्रत्यय पर में हो तब।

१२३०. ज्य से पर में जो ईयसुन् प्रत्यय उसका आकार आदेश होता है (ईयसुन् के) (आदेः परस्य) से आदि में स्थान में ही होगा।

१२३१. बहु शब्द से पर में जो इमनिच् तथा ईयसुन् इन दोनों प्रत्ययों का लोप होता है और बहु शब्द को 'भू' आदेश भी होता है।

१२३२. बहु-शब्द से परे इष्ठन् को यिट्, इष्ठन् का लोप तथा भू-आदेश भी होता है।

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्यादिडागमश्च । भूयिष्ठः ।

१२३३. विन्मतोर्लुक् ५।३।६५॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठः । त्वचीयान् ।

१२३४. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७॥

ईषदूनो विद्वान्-विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ।

१२३५. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५।३।६८॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः । ईषदूनः पटुः बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् ? यजतिकल्पम् ।

१२३६. प्रागिवात्कः ५।३।७०॥

इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्काधिकारः ।

१२३७. अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः ५।३।७१॥

काऽपवादः । तिङश्चेत्यनुवर्तते ।

भूयिष्ठः—'अतिशयेन बहुः' इति विग्रहे 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इतीष्ठनि अनुबन्धलोपे 'इष्ठस्य यिट् च' इति इष्ठनः इकारलोपे यिटि च कृते टकारस्येत्संज्ञायां लोपे 'बहोर्लोपो भू च' इति बहोः स्थाने 'भू' इत्यादेशे विभक्तिकार्ये 'भूयिष्ठः' इति ।

१२३३. विन् तथा मतुप् प्रत्यय का लोप होता है यदि इष्ठन् या ईयसुन् पर हो तब ।

१२३४. कल्पप् , देश्य तथा देशीयर प्रत्यय ईषदसमाप्ति अर्थ में होता है ।

१२३५. ईषत् असमाप्ति अर्थ में वर्तमान सुबन्त से बहुच् प्रत्यय जो होता है वह विकल्प से और प्रकृति से पूर्व ही होता है ।

१२३६. 'इवे प्रतिकृतौ' सूत्र से पूर्व तक क-प्रत्यय का अधिकार है ।

१२३७. अव्यय तथा सर्वनाम संज्ञक शब्दों को टि से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय होता है ।

१२३८. अज्ञाते ५।३।७३॥

कस्यायमश्वः—अश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वकैः। ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्। युष्मकाभिः। युवकयोः: ओकारेत्यादिकिम्? त्वयका।

१२३९. कुत्सिते ५।३।७४॥

कुत्सितोऽश्वः—अश्वकः।

१२४०. किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५।३।९२॥

अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः।

१२४१. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३॥

जातिपरिप्रश्ने इति प्रत्याख्यातमाकरे। बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः। वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः।

॥ इति प्रागिवीयाः ॥

अज्ञाते—अज्ञातत्वविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात्सुबन्तात्कप्रत्ययः स्यात्।

१२३८. अज्ञात अर्थ में 'क' प्रत्यय होता है।

१२३९. निन्दित एवं कुत्सित अर्थ में 'क' प्रत्यय होता है।

१२४०. किं, यत्, तत्-शब्दों से उतरच् प्रत्यय होता है यदि दो में किसी एक का निर्धारण 'निश्चय' करना हो तब।

१२४१. बहुतों के बीच में एक का निर्धारण करने में किं, यत्, तत् शब्दों से 'डतमच्' प्रत्यय होता है।

॥ इति प्रागिवीयः ॥

अथ स्वार्थिकप्रकरणम्

१२४२. इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६।

कन्स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिः-अश्वकः । वा०--**सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्** । अश्वकः ।

१२४३. तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१।।

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं तस्य वचनं प्रतिपादनम्, भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये-प्रकृतम् अन्नम् अन्नमयम् । अपूपमयम् द्वितीये तु--अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्वं ।

१२४४. प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८।।

अण् स्यात् । यज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः ।

१२४५. बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२।।

बहूनि ददाति बहुशः अल्पशः वा०--**आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्** ।। आदौ--आदितः । मध्यतः अन्ततः । पृष्ठतः पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ।

बहुशः--बहूनि (बहुभ्यो वा) ददाति इति विग्रहे बहुशब्दात् 'बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' इति सूत्रे स्वार्थे शसि प्रत्यये 'बहुशस्' इति तस्मात् सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि सकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृते 'बहुशः' इति सिद्धम् ।

१२४२. इव अर्थ में प्रथमान्त से 'कन्' प्रत्यय होता है । यदि वह इव 'सदृश' प्रतिकृति हो (यानी प्रतिबिम्ब मूर्ति रहे) तब ।

वा०--स्वार्थ में प्रातिपदिक मात्र से 'कन्' प्रत्यय होता है ।

१२४३. प्रकृत वचन में प्रथमान्त से 'मयट्' प्रत्यय होता है ।

१२४४. प्रज्ञादिगणपठित प्रकृतिप्रथमान्त से 'अण्' प्रत्यय स्वार्थ अर्थ में होता है ।

१२४५. बह्वर्थक तथा अल्पार्थक कारक से 'शस्' प्रत्यय होता है ।

वा०--तसि प्रत्यय आद्यादिगणपठित शब्द प्रकृति प्रथमान्त से होता है ।

१२४६. कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०॥

वा०—अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्।

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे।

१२४७. अस्य च्वौ ७।४।३२॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ। वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः संपद्यते तं करोति कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। गङ्गीस्यात्।

वा०—अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्। दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

१२४८. विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५।४।५२॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये।

गङ्गीस्यात्—अगङ्गा गङ्गात्वेन सम्पद्यमाना स्यात् इत्यर्थः। गङ्गा॰ शब्दात् कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इति सूत्रेण 'अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्' इति वार्तिकसहकारात् अभूततद्भावे च्विप्रत्यये इकारस्योच्चारणार्थत्वेन दर्शनाऽभावे चकारस्येत् संज्ञायां लोपे च कृते 'अस्य च्वौ' इत्यनेन आकारस्य ईत्वे 'वेरपृक्तस्य' इति वलोपे गङ्गीत्यव्ययम् तस्मात् सौ सुब्लुकि तत्सिद्धम्।

१२४६. (वा०)—कृ, भू, अस्ति के योग में स्वार्थ में 'च्वि' प्रत्यय विकल्प से होता है विकारात्मत्व, 'विकारस्वरूप' को प्राप्त होनेवाली प्रकृति से विद्यमान विकारवाची शब्द हो तब।

१२४७. अवर्ण को इकार आदेश होता है यदि च्वि प्रत्यय पर में हो तब।

वा०—यदि च्वि प्रत्यय पर हो तो अव्यय सम्बन्धी अवर्ण का ईत्व नहीं होता है।

१२४८. च्वि के विषय में विकल्प से साति प्रत्यय होता है कार्त्स्न्य= 'सम्पूर्ण' अर्थ द्योत्य हो तब।

१२४९. सात्पदाद्योः ८।३।१११॥

सस्य षत्वं च स्यात् । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः संपद्यते अग्निसाद्भवति । दधि सिञ्चति ।

१२५०. च्वौ च ७।४।२६॥

च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । अग्नीभवति ।

१२५१. अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७॥

द्व्यजेव अवरं=न्यूनं, न तु ततो न्यूनम् । अनेकाजिति यावत् तादृशमर्धं यस्य तस्मात् डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे ।

१. वा०—डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्—इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ।

२. वा०—**नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्** । डाच् परं यदा आम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोः पररूपं स्यात् । इति तकारपकारयोः पकारः । पटपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात् किम् ? इषत्करोति ।

पटपटाकरोति—'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्' इति वार्तिकेन डाचः प्रागेव 'पटत्' शब्दस्य द्वित्वे 'पटत्पटत्' इति दशायाम् 'अव्यक्तानुकरणाद्—' इति डाचि अनुबन्धलोपे 'तस्य परमाम्रेडितम्' इति

१२४९. पद के आदि में जो सकार तथा सति के सकार को षत्व नहीं होता है ।

१२५०. च्वि प्रत्यय यदि पर में हो तो पूर्व का दीर्घ होता है ।

१२५१. कृ, भू और अस्ति के योग में अव्यक्त 'अस्पष्ट अनुकरण द्व्यजवरार्ध शब्द से 'डाच्' प्रत्यय होता है किन्तु यदि शब्द पर न हो तब ।

१ (वा०)—डाच् प्रत्यय की विवक्षा-रहने पर द्वित्व बहुलता से होता है ।

२ (वा०)—डाच् से पर में जो आम्रेडित उसके परे रहते पूर्व पर के वर्ण को पररूप होता है ।

॥ इति तद्धिताः ॥

द्व्यजवराधीतिकम् ? श्रत्करोति। अवरेति किम् ? खरटखरटा-करोति। अनितौ किम् ? पटिति करोति।

॥ इति स्वार्थिकाः ॥ ६ इति तद्धिताः।

परस्य 'पटत्' शब्दस्याम्रेडितसंज्ञायां 'नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन पूर्व पटत्सम्बन्धिनस्तकारस्य पटत्—सम्बन्धिनः पकारस्य चोभयोः पररूपे डाच्प्रत्यये परे भसंज्ञायां 'टेः' इत्यनेन टिलोपे अव्ययत्वात् सुब्लुकि उक्तं रूपं सिद्धम्।

॥ इति स्वार्थिकाः ॥ १६ ॥ इति तद्धिताः ॥

अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

१२५२. स्त्रियाम् ४।१।३॥

अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत्।

१२५३. अजाद्यतष्टाप् ४।१।३॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत्स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप्स्यात्। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला। वत्सा। होडा। मन्दा। विलाता। मेधा। गङ्गा। सर्वा इत्यादि।

१२५४. उगितश्च ४।१।६॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप्स्यात्। भवती। भवन्ती। पचन्ती।

**१२५५. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-
तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४।१।१५॥**

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप्स्यात्। कुरुचरी। नदट्-नदी। देवट्-देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी आक्षिकी। प्रास्थिकी। लावणिकी। इत्वरी।

भवन्ती—भूधातोर्लटः 'कर्त्तरि शप्' इति शपि उकारस्य गुणेऽवादेशे 'भवत्' शब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायाम् 'उगितश्च' इति ङीपि 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इति नुमि विभक्तिकार्ये 'भवन्ती' इति।

१२५२. 'स्त्रियाम्' का अधिकार 'समर्थानां प्रथमाद्वा' सूत्र तक है।

१२५३. अजादि और अकारान्त वाच्य स्त्रीत्व द्योत्य होने पर टाप् प्रत्यय होता है।

१२५४. स्त्रीलिङ्ग में उगिदन्त प्रातिपदिक से ङीप् हो।

१२५५. स्त्रीत्व द्योत्य हो तो अनुसर्जन जो टिदादि (टित्-७-अण्-द्वयसच्-दघ्नञ्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरप्) एदन्त जो अदन्त प्रातिपदिक इससे ङीप् प्रत्यय होता है।

वा०—नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्। स्त्रैणी। पौस्नी। शाक्तिकी। याष्टिकी। आढ्यङ्करणी। तरुणी। तलुनी।

१२५६. यञश्च ४।१।१६॥

यञन्तात् स्त्रियाँ ङीप्स्यात्। अकारलोपे कृते—

१२५७. हलस्तद्धितस्य ६।४।१५०॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधा भूतस्य लोप ईति परे। गार्गी।

१२५८. प्राचां ष्फ तद्धितः ४।१।१७॥

यञन्तात् ष्फो वा स्यात्स च तद्धितः।

१२५९. षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रिया ङीष् स्यात्। गार्ग्यायणी। गौरी। अनडुही। अनड्वाही। आकृतिगणोऽयम्।

गार्ग्यायणी—यञन्तात् गार्ग्यशब्दात् 'प्राचां ष्फ तद्धिते' इति ष्फ प्रत्यये 'आयनेयी' ति-फस्यायनादेशे भत्वादलोपे णत्वे 'गार्ग्यायण' इति तस्मात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

गौरी—गौरादिगणपठितात् गौरशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये 'गौरी' इति। श्वेतेत्यर्थः। 'उमा कात्यायनी गौरी' इत्यमरः। 'दशवर्षा भवेद् गौरी' इति स्मृतिः।

वा०—नञ्, स्नञ्, ईकक् एवं ख्युन्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक एवं तरुण, तलुन प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है यदि स्त्री द्योत्य हो तब।

१२५६. यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है यदि स्त्री द्योत्य हो तब।

१२५७. हल् से परे तद्धित–उपधाभूत यकार का लोप होता है, ईत्= ईकार पर में हो तब।

१२५८. ष्फ प्रत्यय यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से होता है विकल्प से तथा उसकी तद्धित संज्ञा भी होती है।

१२५९. षित् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक एवं गौरादिगणपठित शब्द प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है स्त्री द्योत्य हो तब।

१२६०. वयसि प्रथमे ४।१।२०।।

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात्स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुमारी ।

१२६१. द्विगोः ४।१।२१।।

अदन्ताद्विगोर्ङीप् स्यात् । त्रिलोकी । अजादित्वात्त्रिफला । त्र्यनीका सेना ।

१२६२. वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४।१।३९।।

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपतिकाद्वा ङीप् , तकारस्य नकारादेशश्च । एनी, एता । रोहिणी । रोहिता ।

१२६३. वोतो गुणवचनात् ४।१।४४।।

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात् । मृद्वी, मृदुः ।

कुमारी—बाल्यवाचकात् कुमारशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'वयसि प्रथमे' इति ङीपि अनुबन्धलोपे भसंज्ञायां 'यस्येति च' इत्यलोपे प्रातिपदिकत्वात् सौ 'हल्ङ्याभ्यः' इति सुलोपे तत्सिद्धिः ।

एनी—एतशब्दः श्वेतपर्यायः, तस्मात् स्त्रीत्वविवक्षायां वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' इति ङीपि तकारस्य नकारे च कृते भत्वाद् 'यस्येति च' इत्यलोपे विभक्तिकार्ये 'एनी' इति । पक्षे अदन्तत्वाट्टापि 'एता' इत्येव । 'ङीप्' अभावे नत्वमपि न भवति । ङीपासन्नियोगशिष्टत्वादिति तत्त्वविदः ।

१२६०. प्रथम वयोवाची अदन्त प्रातिपदिक से 'ङीप्' प्रत्यय होता है स्त्रीत्व द्योत्य हो तब ।

१२६१. द्विगुसमास सम्बन्धी अदन्त प्रातिपदिक से भी 'ङीप्' प्रत्यय होता है ।

१२६२. वर्णवाची जो अनुदात्तान्त तोपध तदन्त जो अनुपसर्जन प्रातिपदिक उससे ङीप् विकल्प से होता है तथा तकार को नकार आदेश भी होता है ।

१२६३. 'ङीप्' प्रत्यय विकल्प से गुणवाची उदन्त प्रातिपदिक से होता है ।

१२६४. बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी । बहुः ।

१. वा० —**कृदिकारादक्तिनः** । रात्रिः । रात्री । २. वा० **सर्वतो-ऽक्तिन्नर्थादित्येके** । शकटी । शकटिः ।

१२६५. पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८॥

या पुमाख्या पुंयोगात्स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी । ३. वा०—**पालकान्तान्न** ।

रात्री—राधातोः 'राशादिभ्यां त्रिप्' इत्युणादिसूत्रेण त्रिपि कृते य इकारस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् ङीष् वा स्यात्' इत्यर्थक 'कृदिकारादक्तिनः' इति बह्वाद्यन्तर्गणसूत्रेण ङीषि सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये 'रात्री' इत्यपि भवति ।

शकटी —अव्युत्पन्नप्रातिपदिकात् शकटिशब्दात् स्त्रीत्वविवक्षायां 'सर्व-तोऽक्तिन्नर्थादित्येके' इति वार्तिकेन ङीषि अनुबन्धलोपे भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः पक्षे 'शकटिः' इति ।

१२६४. बह्वादिगणपठित प्रातिपदिक से वैकल्पिक ङीप् प्रत्यय होता है ।

१. वा०—क्तिन् अवयव से भिन्न जो कृत् का इकार तदन्त प्राति-पदिक से वैकल्पिक 'ङीष्' प्रत्यय होता है ।

२. किसी आचार्य के मतानुसार क्तिन्नर्थ प्रत्ययावयव से भिन्न इका-रान्त प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय विकल्प से होता है ।

१२६५. पुम्=‘पुरुष' वाचक शब्द पुंयोग से स्त्रीलिंग में विद्यमान हो उससे ङीष् प्रत्यय होता है ।

३. वा० – पालक शब्द हो अन्त में जिसके ऐसे शब्द से 'ङीष्' नहीं होता है ।

नोट—वयसि प्रथमे—

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।
कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनं तु ततः परम् ॥

१२६६. प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७।३।४४।।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत् । गोपालिका । अश्वपालिका । सर्विका । कारिका । अतः किम् ? नौका । प्रत्ययस्थात्किम् ? शक्नोतीति शका । असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी—४. वा०— **सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः** । सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायां किम् ? ५. वा०—**सूर्याऽगस्त्ययोश्छे च ङ्यां च** । यलोपः । सूरी । कुन्ती । मानुषीयम् ।

१२६७. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९।।

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी । वरुणानी भवानी । सर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ।

१. वा०--**हिमारण्ययोर्महत्त्वे** । महद्धिमं हिमानी । महदरण्यम् अरण्यानी ।

अश्वपालिका—अश्वं पालयतीति अश्वपालः, अश्वपाल इव अश्वपालकः, तस्य स्त्रीति विग्रहे पंयुगे ङीषि प्राप्ते 'पालकान्तान्न' एति निषेधे अकारान्तत्वाट्टापि 'प्रत्ययस्थात्' इति इत्वे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

मृडानी—मृडस्य स्त्रीति विग्रहे पुंयोगलक्षण ङीषि 'इन्द्रवरुण' इति आनुगागमे च कृते अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम् ।

अरण्यानी—महदरण्यमिति विग्रहे अरण्यशब्दात् 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे'

१२६६. आप् परे रहते प्रत्यय के ककार से पूर्व जो आकार उसको इकार आदेश होता है परन्तु वह सुप् आप् परे न हो तब ।

४. वा०—वर्तमान सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय देवता अर्थ में होता है ।

५. वा०—सूर्य एवं अगस्त्य शब्द के यकार का लोप होता है छ या ङी प्रत्यय पर में हो तब ।

१२६७. इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल एवं आचार्य से आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय भी होता है ।

१. वा० —महत्त्व अर्थ में हिम तथा अरण्य शब्द से ङीष् तथा आनुक् होते हैं ।

२. वा०—यवाद्दोषे। दुष्टो यवो यवानी।

३. वा०—यवनाल्लिप्याम्। यवनानां लिपिर्यवनानी।

४. वा०—मातुलोपाध्याययोरानुग्वा। मातुलानी। मातुली। उपाध्यायानी। उपाध्यायी।

५. वा०—आचार्यादणत्वं च। आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी।

६. वा०—अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। अर्याणी, आर्या। क्षत्रियाणी। क्षत्रिया।

१२६८. क्रीतात्करणपूर्वात् ४।१।५०॥

क्रीतान्तादन्तात्करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। वस्त्रक्रीती क्वचिन्न। धनक्रीता।

इति ङीषि आनुकि च जाते अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

वस्त्रक्रीती—वस्त्रेण क्रीता या इति विग्रहे 'गतिकारके'ति परिभाषया 'सुबुत्पत्तेः प्रागेव क्रीतशब्देन समासे सुब्लुकि 'वस्त्रक्रीत' इत्यदन्तप्रातिपदिकात् 'क्रीतात्करणपूर्वात्' इति ङीषि भसंज्ञादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

---

२. वा०—दोष अर्थ में ङीष् तथा आनुक् होते हैं यव शब्द में।

३. वा०—यवन शब्द से लिपि अर्थ में ङीष् और आनुक् का आगम होता है।

४. वा०—मातुल एवं उपाध्याय-शब्द से ङीष् होता है और आनुक् का आगम विकल्प से होता है।

५. वा०—आचार्य शब्द से ङीष् एवं आनुक् होता है और णत्व का अभाव भी होता है।

६. वा०—आर्य एवं क्षत्रिय शब्द से ङीष् तथा आनुक् स्वार्थ में विकल्प से होता है।

१२६८. क्रीत शब्दान्त एवं करण कारक है आदि में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् होता है।

१२६९. स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४।१।५४॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तादन्दन्तान्ङीष् वा स्यात्। केशानतिक्रान्ता अतिकेशी अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधा त्किम्? सुगुल्फा। उपसर्जनात्किम्? सुशिखा।

१२७०. न क्रोडादिबह्वचः ४।१।५६॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजघना।

१२७१. नखमुखात्संज्ञायाम् ४।१।५८॥

न ङीष्।

१२७२. पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८।४।३॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्संज्ञायां, न तु गकारव्यवधाने। शूर्पणखा। गौरमुखा। संज्ञायां किम्? ताम्रमुखी कन्या।

चन्द्रमुखी—चन्द्र इव मुखं यस्याः इति विग्रहे समासनिष्पन्नात् 'चन्द्रमुख' शब्दात् 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' इति ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्। पक्षे 'चन्द्रमुखा' इति।

कल्याणक्रोडा—कल्याणी क्रोडा यस्या इति विग्रहे समासे 'स्त्रियाः पुंवत—' इति पुंवत्त्वे निष्पन्नात् कल्याणक्रोड शब्दात्। स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्—'इति ङीषि प्राप्ते 'न क्रोडादिबह्वचः' इति निषेधे अदन्तत्वाट्टापि सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

१२६९. संयोगोपध से भिन्न उपसर्जन संज्ञक स्वांगवाची शब्द अदन्त जो प्रातिपदिक उससे ङीष् प्रत्यय विकल्प से होता है।

१२७०. बह्वच् स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक एवं क्रोडादिगणपठित प्रातिपदिक से 'ङीष्' नहीं होता है।

१२७१ संज्ञा में नख या मुख शब्दान्त प्रातिपदिक से ङीष् नहीं होता है।

१२७२. पूर्वपद में स्थित निमित्त से परे नकार को णत्व नही होता है संज्ञा में।

१२७३. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। तटी, वृषली। कठी। बह्वृची। जातेः किम्? मुण्डा। अस्त्रीविषयात्किम्? बलाका। अयोपधात्किम्? क्षत्रिया। १ वा०—योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः। हयी। गवयी। मुकयी। हलस्तद्धितस्येति यलोपः। मनुषी। २ वा—मत्स्यस्य ङ्याम्। यलोपः। मत्सी।

१२७४. इतो मनुष्यजातेः ४।१।३५॥

ङीष्। दाक्षी।

वृषली—वृषलत्वजातिविशिष्टा स्त्री वृषली। अत्र वृषलशब्दात् 'जातेरस्त्रीति ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः। 'एकस्यां हि व्यक्तौ वृषलत्वे कथिते तदपत्यसहोदरादौ कथनं विनापि तस्य सुग्रहत्वाद् वृषलत्वं जातिः।

गवयी—इति 'गोसदृशश्चतुष्पाज्जातिविशेषः। अत्र 'गवय' शब्दस्य योपधत्वात् 'जातेरस्त्री'ति ङीषोऽप्राप्तिः, योपधप्रतिषेधे हयगवय—' इति वार्तिकत्वात् ङीषि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः।

दाक्षी—दक्षस्य गोत्राऽपत्यमिति विग्रहे इञ् प्रत्ययान्तात् दाक्षिशब्दात् 'इतो मनुष्यजातेः' इति ङीषि भत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे विभक्ति-कार्ये 'दाक्षी' इति।

१२७३. नित्य स्त्रीलिङ्ग से भिन्न तथा यकारोपध से भिन्न जातिवाचक से ङीष् प्रत्यय होता है।

१. वा०—योपध (यकार है उपधा में जिसके) के प्रतिषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य इन शब्दों का प्रतिषेध नहीं होता है।

२. वा०—मत्स्य शब्दावयव के यकार का लोप होता है ङि पर में हो तब।

१२७४. मनुष्यजातिवाचक इदन्त से ङीष् होता है।

१२७५. ऊङुतः ४।१।६६॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात्। कुरूः। अयोपधात्किम्? अध्वर्युर्ब्राह्मणी।

१२७६. पङ्गोश्च ४।१।६८॥

पङ्गूः। वा०-श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च। श्वश्रूः।

१२७७. ऊरुत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९॥

उपमानवाचिपूर्वपदमूरुत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात्। करभोरूः।

१२७८. संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

श्वश्रूः--'श्वशुरस्य स्त्रीति समासे श्वशुरशब्दात्' "पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीषि प्राप्ते सति 'श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च' इति वार्तिकेन ऊङि, उकाराकारयोर्लोपे विभक्तिकार्ये 'श्वश्रूः' सिद्धम्।

वामोरूः--वामौ=सुन्दरौ ऊरू यस्याः इति विग्रहे समासनिष्पन्नात् वामोरुशब्दात् 'संहितशफलक्षणवामादेश्च' इत्यङि सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये उक्तं रूपं सिद्धम्।

१२७५. स्त्रीत्व द्योत्य होने पर यकारोपध भिन्न मनुष्य जातिवाचक उदन्त प्रातिपदिक से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।

१२७६. और पङ्गु (=लँगड़ा) शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होवे।

१. वा०—श्वशुर शब्द के उकार और अकार का लोप होता है और ऊङ् प्रत्यय भी होता है स्त्रीलिङ्ग में। (यह वार्तिक 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्र से प्राप्त ङीष् का बाधक है, यहाँ स्मरण रहे।)

१२७७. जिस प्रातिपदिक का पूर्वपद उपमानवाची हो तथा उत्तरपद 'ऊरु' शब्द हो, तो उससे ऊङ् प्रत्यय होवे, स्त्रीलिङ्ग में।

१२७८. यदि प्रातिपदिक के आदि में संहित, शफ लक्षण और वाम शब्द हो तथा उत्तर पद में ऊरु' हो, तो ऊङ् प्रत्यय होवे, स्त्रीलिङ्ग में।

१२७९. शाङ्गर्रवाद्यञो ङीन् ४।१।७३॥

शाङ्‌र्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात्। शाङ्‌र्गरवी। वैदी। ब्राह्मणी। २ वा०—नृनरयोर्वृद्धिश्च। नारी।

१२८०. यूनस्तिः ४।१।७७॥

युवन्शब्दात्स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः॥

वैदी—विदस्यापत्यमिति विग्रहे अञा निष्पन्नात् वैदशब्दाद् 'शाङ्गर्रवाद्यञो' ङीन्' इति जातिलक्षणप्राप्तङीषं बाधित्वा ङीनि भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये तत्सिद्धम्।

नारी—नरस्य स्त्री, अथवा नुः स्त्रीति समासे नृशब्दात् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीपि प्राप्ते सति तं प्रबाध्य 'शाङ्‌र्गरवाद्यञो ङीन्' इति ङीनि 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' इति वृद्धौ रपरे प्रातिपदिककार्ये 'नारीं' इति सिद्धयति। परन्तु 'नरशब्दात् जातेरस्त्री इति ङीषं बाधित्वा ङीनि वृद्धौ रपरे स्वादिकार्ये 'नारी' इति सिद्धम्।

युवतिः—'युवन्' शब्दात् 'यूनस्तिः' इति 'ति' प्रत्यये, स्वाधिष्ठितपदत्वेन लोपे, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः। युवती इति दीर्घेकारस्य तु यौति= मिश्रीकरोत्यात्मानं पत्या सहेति विग्रहे युधातोर्लटि शत्रादेशेन 'उगितश्च' इति ङीपि कृते 'युवती' इति सिद्धम्।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः॥

१२७९. शाङ्‌र्गरवादिगण में पठित तथा अनन्त जातिवाचक शब्द से 'ङीन्' प्रत्यय होवे, स्त्रीलिंग में।

२. वा०—नृ और नर शब्द से ङीन् प्रत्यय होवे, स्त्रीलिङ्ग में, और बाद में 'नृ' तथा 'नर' की वृद्धि भी होवे।

१२८०. युवन् शब्द से 'ति' प्रत्यय होवे स्त्रीलिङ्ग में।

[1]शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

॥ इति श्रीवरदराजाचार्यकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

---

१. शास्त्रान्तर में प्रवेश होनेवाले छात्रों की भलाई करनेवाली (पाणिनिव्याकरण का ज्ञान सहजमति से करानेवाली) यह लघुकौमुदी वरदराजाचार्य ने बनाई है।

इस प्रकार वरदराज प्रणीत लघुकौमुदी समाप्त।

परिशिष्टम्

लेखकः–

गजेन्द्र पाण्डेय व्याकरणाचार्य

ॐ विश्वनाथाय नमः

विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
सरस्वतीं प्रणम्यादौ सर्वकार्यार्थसिद्धये॥
एषोऽहं कविकान्तो निगमानन्दः परमहंसः।
विदधे बालज्ञानाय परिशिष्टं कौतुकादेव॥

अथ संक्षिप्तलिङ्गानुशासनम्

तत्रादौ स्त्र्यधिकारः।

१. लिङ्गम्॥ २. स्त्री॥ अधिकारसूत्रे एते। ३. ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृयातृननान्दरः॥ ऋकारान्ता एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः, स्वस्रादिपञ्चकस्यैव ङीब्निषेधेन 'कर्त्री' इत्यादेर्ङीपिकारान्तत्वात्। तिसृचतस्रोस्तु स्त्रियामादेशतया विधानेऽपि प्रकृत्योस्त्रिचतुरोर्ऋदन्तत्वाभावात्। ४. अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः॥ अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। अवनिः। चमूः। ५. मिन्यन्तः॥ मिप्रत्ययान्तो निप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। भूमिः ग्लानिः। ६. क्तिन्नन्तः॥ स्पष्टम्। कृतिः। इत्यादि। ७. ईकारान्तश्च॥ ईप्रत्ययान्तः स्त्री स्यात्। लक्ष्मीः। ८. ऊङाबन्तश्च॥ कुरूः। विद्या। ९. य्वन्तमेकाक्षरम्॥ श्रीः। भूः। १०. विंशत्यादिरानवतेः। इयं विंशतिः। त्रिंशत्। चत्वारिंशत्। पञ्चाशत्। षष्ठिः। सप्ततिः। अशीतिः। नवतिः। ११. तलन्तः॥ अयं स्त्रियां स्यात्। शुक्लस्य भावः शुक्लता। ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मणता। ग्रामस्य समूहो ग्रामता। देव एव देवता। १२. भाः स्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः॥ एते स्त्रियां स्युः। इयं भाः। इत्यादि। १३. शष्कुलि-राजि-कुट्यशनिवर्ति-भ्रुकुटि-त्रुटि-वलि-पङ्क्तयः॥ एतेऽपि स्त्रियां स्युः। इयं शष्कुलिः। १४. अप्-सुमनस्समासिकता-वर्षाणां बहुत्वं च॥ अबादीनां पञ्चानां स्त्रीत्वं स्याद् बहुत्वं च। आप इमाः। 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्'। 'सुमना मालती

जातिः' । देववाची तु पुंस्येव । १५. शलाका स्त्रियां नित्यम् । नित्यग्रहणमन्येषां क्वचिद्व्यभिचारं ज्ञापयति ।

इति स्त्र्यधिकारः ॥

पुंलिङ्गाधिकारः ।

१६. पुमान् ॥ अधिकारोऽयम् । १७. घञबन्तः ॥ घञ्—पाकः । त्यागः । अप्—करः । गरः । १८. घाजन्तश्च ॥ घ—विस्तरः । गोचरः । चयः । जयः । १९. नङन्तः ॥ नङ् प्रत्ययान्तः पुंसि स्यात् । यज्ञः । यत्नः । २०. क्यन्तो घुः ॥ किप्रत्ययान्तो घुः पुंसि स्यात् । आधिः । निधिः । उदधिः । २१. देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्काभिधानानि ॥ एतानि पुंसि स्युः । देवाः सुराः । असुर दैत्याः । आत्मा क्षेत्रज्ञः । स्वर्गो नाकः । गिरिः पर्वतः । समुद्रोऽब्धिः । नखः कररुहः । केशः कचः । दन्तो दशनः । स्तनः कुचः । भुजो दोः । कण्ठो गलः । खड्गः करवालः । शरो मार्गणः । पङ्कः कर्दमः । इत्यादि । २२. क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि ॥ क्रतुरध्वरः । पुरुषो नरः । कपोलो गण्डः । गुल्फः प्रपदः । मेघो नीरदः । २३. उकारान्तः ॥ अयं पुंसि स्यात् । प्रभुः । इक्षुः । २४. रुत्वन्तः ॥ मेरुः सेतुः । २५. कोपधः ॥ कोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । स्तवकः । कल्कः । २६. टोपधः ॥ टोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । घटः । पटः । २७. णोपधः ॥ णोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । गुणः । गणः । पाषाणः । २८. थोपधः ॥ रथः । २९. नोपधः ॥ अदन्तः पुंसि । इनः । फेनः । ३०. पोपधः ॥ पकारोपधः अदन्तः पुंसि । यूपः । दीपः । सर्पः । ३१. भोपधः ॥ स्तम्भः । कुम्भः । ३२. मोपधः ॥ सोमः । भीमः । ३३. योपधः । समयः । हयः । ३४. रोपधः । क्षुरः । अङ्कुरः । ३५. षोपधः ॥ वृषः । वृक्षः । ३६. सोपधः ॥ वत्सः । वायसः । महानसः । ३७. रश्मिदिवसाभिधानानि ॥ एतानि पुंसि स्युः । रश्मिर्मयूखः । दिवसो घस्रः । ३८. मानाभिधानि ॥ एतानि पुंसि स्युः । कुडवः । प्रस्थः । ३९. सारथ्यतिथिकुक्षिबस्तिपाण्यञ्जलयः । एते पुंसि । अयं सारथिः ।

इति पुंलिङ्गाधिकारः ।

नपुंसकाधिकारः ।

४०. नपुंसकम् ॥ अधिकारोऽयम् । ४१. भावेल्युडन्तः ॥ हसनम् । भावे किम् ? पचनोऽग्निः । इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः । ४२. निष्ठा च ॥ भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात् । हसितम् । गीतम् । ४३. त्वष्यञौ तद्धितौ ॥ शुक्लत्वम् । शौक्ल्यम् । ष्यञः षित्वसामर्थ्यात्पक्षे स्त्रीत्वम् । चातुर्यम् । चातुरी । सामग्र्यम् । सामग्री । औचित्यम् । औचिती । ४४. यद्यढग्यगञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि ॥ एतदन्तानि क्लीबानि । 'स्तेनाद्यन्नलोपश्च' । स्तेयम् । 'सख्युर्यः' । सख्यम् । 'कपिज्ञात्योर्ढक् ।' कापेयम् । आधिपत्यम् । औष्ट्रम् । द्वैहायनम् । पितापुत्रकम् । अच्छावाकीयम् । अव्ययीभावः । अधिस्त्रि । ४५. द्वन्द्वैकत्वम् ॥ पाणिपादम् । ४६. लोपवः ॥ कुलम् । कूलम् । स्थलम् । ४७. शतादिः संख्या ॥ शतम् । सहस्रम् । ४८. शतायुतप्रयुताः पुंसि च । अयं शतः । इदं शतम् । इत्यादि । ४९. ब्रह्मन्पुंसि च ॥ अयं ब्रह्मा । इदं ब्रह्म । ५०. असन्तोद्व्यच्कः ॥ यशः । मनः । तपः । द्व्यचकः किम् ? चन्द्रमाः । ५१. त्रान्तः ॥ पत्रम् । छत्रम् । ५२. फलजातिः ॥ फलजातिवाचिशब्दो नपुंसकं स्यात् । आमलकम् । आम्रम् । ५३. वृक्षजातिः स्त्रियामेव ॥ क्वचिदेवेदम् । हरीतकी । ५४. दैवं पुंसि च ॥ दैवम् । दैवः । ५५. अक्षमिन्द्रिये ॥ इन्द्रिये किम् ? रथाङ्गादौ मा भूत् ।

इति नपुंसकाधिकारः ।

स्त्रीपुंसाधिकारः ।

५६. स्त्रीपुंसयोः ॥ अधिकारोऽयम् । ५७. गोमणियष्टिमुष्टिपाटलिवस्तिशाल्मलित्रुटिमसिमरीचयः । इयमयं वा गौः । ५८. मृत्युसिन्धुकर्कन्धुकिष्कुकण्डुरेणवः ॥ इयमयं वा मृत्युः । ५९. गुणवचनमुकारान्तं नपुंसकं च ॥ त्रिलिङ्गमित्यर्थः । पटु । पटुः । पट्वी । ६०. अपत्यार्थस्तद्धिते ॥ औपगवः । औपगवी ।

इति स्त्रीपुंसाधिकारः ।

पुंनपुंसकाधिकारः।

६१. पुंनपुंसकयोः॥ अधिकारोऽयम्। ६२. घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरावतपुस्तकबुस्तलोहिताः॥ अयं घृतः। इदं घृतम्। ६३. गृहमेहदेहपट्टपटहाष्टापदाम्बुदककुदाश्च।

इति पुंनपुंसकाधिकारः।

विशिष्टलिङ्गाधिकारः।

६४. अवशिष्टलिङ्गम्॥ ६५. अव्ययंकतियुष्मदस्मदः॥ ६६. ष्णान्ता संख्या॥ शिष्टा परवत्। एकः पुरुषः। एका स्त्री। एकं कुलम्। ६७. गुणवचनं च। शुक्लः पटः। शुक्ला पटी। शुक्लं वस्त्रम्। ६८. कृत्याश्च॥ ६९. करणाधिकरणयोर्ल्युट् च। ७०. सर्वादीनि सर्वनामानि॥ स्पष्टार्थेयं त्रिसूत्री।

इति विशिष्टलिङ्गाधिकारः।

इति संक्षिप्तलिङ्गानुशासनप्रकरणम्॥

अथ गूढाशुद्धिप्रदर्शनम्

(बालानां संस्कृतानुवादे प्रायो जायमाना अशुद्धयः)

[1]पतिना रक्षितः[2] सर्वा[3] दारा भवति[4] शोभना[5]।
सर्वां[6] विधिं गृहानां[7] सा[8] करोति[9] मतिना[10] मुदा ॥१॥
ते[11] गृहः[12]

---

१. पत्या। पति शब्द को समास में ही घि संज्ञा होने से नाभाव नहीं होता।

२. रक्षिताः। दारशब्द के 'दाराः पुंसि च भूम्नि एव' इस नियम से पुल्लिग और नियत बहुवचनान्त होने से उसका विशेषण 'रक्षित' शब्द भी वैसा ही होगा।

३. सर्वे। दारशब्द का विशेषण होने से सर्व शब्द भी पुल्लिग बहुवचनान्त होगा।

४. भवन्ति। दाररूप कर्त्ता के अनुसार भवनक्रिया से बहुवचन होगा।

५. शोभनाः। पूर्वोक्तनियमानुसार दारविशेषण शोभन से भी बहुवचन होगा।

६. सर्वम्। 'घ्यन्तो घुः' इस लिङ्गानुशासनक्रम से किप्रत्ययान्त विधि शब्द के पुल्लिग होने से उसका विशेषण सर्व शब्द भी पुल्लिग होगा।

७. गृहाणाम्। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व हो जायेगा।

८. ते। तत् शब्द प्रस्तुत बुद्धिविषय का ग्राहक होने के कारण उपस्थित दारा अर्थ का बोधक होने से पुल्लिग बहुवचनान्त होगा।

९. कुर्वन्ति। कर्तृवाच्य में कर्ता के अनुसार क्रिया में वचन और पुरुष की व्यवस्था होने से यहाँ बहुवचनान्त होगा।

१०. मत्या। स्त्रीलिङ्ग में नाभाव का निषेध है अतः ना आदेश नहीं होगा।

११. तव। 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ऐसा सूत्र है अतः यहाँ पाद के आदि में रहने से तव को ते आदेश नहीं होगा।

१२. गृहम्। 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इस नियम से एकत्व संख्या अर्थ में गृह शब्द से नपुंसक में एकवचन होना ही समुचित है।

कुत्र[1] मित्रास्ति द्रक्ष्यामि[2] सखे[3] रहं[4]।
विहित्वा[5] सर्वकार्याणि[6] विप्रं[7] दद्यां बहु[8] धनम् ॥२॥
प्रभुक्त्वा[9] त्वं गृहेणाद्य[10] आगतो[11] सखिना[12] सह।
[13]भ्रातत्वंदीय मित्रोऽत्र[14] नागतः[15] केन हेतुना ॥३॥

---

१. मित्र ३ ! अस्ति। सम्बोधन में प्लुत होने से प्रकृतिभाव होगा।

२. द्रक्ष्यामि। दृश् धातु को अनिट् होने से लुट् में स्य प्रत्यय को इट् नहीं होगा।

३. सख्युः। सखि शब्द को घिसंज्ञा का निषेध होने से 'घेर्ङिति' से गुण न होकर यण् और 'ख्यत्यात्परस्य' इस सूत्र से उत्व हो जायेगा।

४. अहम्। हल् के परे न होने से 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार नहीं होगा।

५. विधाय। 'समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वो ल्यप्' से क्त्वा का ल्यप् हो जाने पर तकारादि के पर में नहीं रहने से 'दधातेर्हिः' से हि आदेश नहीं होगा।

६. कार्याणि। रेफ के उत्तर नकार को 'अट्कुप्वाङ्' से णकार हो जायगा।

७. विप्राय। दा धातु के योग में सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हो जायगी।

८. बहु। धन शब्द का विशेषण होने से बहु से भी नपुंसकत्व होगा।

९. प्रभुज्य। 'समासेऽनञ्पूर्वे' से ल्यप् हो जायगा।

१०. गृहात्। अपाय अर्थ भासित होने पर ध्रुव से अपादान में पञ्चमी हो जाती है।

११. आगतः। 'वा शरि' इस सूत्र से शर परे रहने पर विकल्प से विसर्ग को विसर्ग हो जाता है। पक्षान्तर में विसर्ग को सकार हो जायगा।

१२. सख्या। सखि शब्द को घि संज्ञा नहीं होती अतः टा को ना नहीं होगा।

१३. भ्रातस्त्वदीयम्। 'विसर्जनीयस्य सः' से विसर्ग को सकार हो गया।

१४. मित्रम्। सखिवाचक मित्र शब्द नपुंसक ही माना गया है।

१५. नागतम्। नपुंसक मित्र का विशेषण होने से नपुंसक ही होगा।

तव[1] साकं गमिष्येऽहं[2] नोचेत् प्रेमस्य[3] बन्धने[4]।
मरिष्ये[5] नात्र संदेहस्त्यजिष्यामि[6] असुं[7] निजम्[8] ॥४॥
वर्त्मनानेन[9] गच्छन्तः कर्म[10] कुर्वन्ति ये नरः[11]।
नमस्कृत्वा[12] प्रभुं यान्ति मरित्वा[13] ते न संशयः ॥५॥
गुरुणा[14] श्रुतिमधीते नाधीतो शब्दानुशासनम्[15]।

---

१. त्वया। सहार्थवाचक शब्द के योग में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया होगी।
२. गमिष्यामि। गम्धातु परस्मैपदी है अतः तङ् नहीं होगा।
३. प्रेम्णः। प्रेमन् शब्द नकारान्त है इसलिए अदन्तत्व के अभाव होने से 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इस सूत्र से ङस् को स्य आदेश नहीं होगा।
४. बन्धनात्। हेतु अर्थ में 'हेतौ' इस सूत्र से पञ्चमी हो जाती है।
५. मरिष्यामि। मृधातु को लुङ् लिङ् और शित्प्रत्यय में 'म्रियतेर्लुङ्-लिङोश्च' इस सूत्र से आत्मनेपद होने से लृट् में परस्मैपद ही होगा।
६. त्यक्ष्यामि। त्यज् धातु को अनिट् होने से इडागम नहीं हुआ।
७. असून्। असु शब्द बहुवचनान्त है। ('पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः')
८. निजान्। बहुवचनान्त असु के विशेषण होने से बहुवचनान्त होगा।
९. वर्त्मना। वर्त्मन् शब्द नान्त है अतः टा को इन आदेश नहीं हुआ।
१०. कर्म। कर्मन् शब्द नकारान्त नपुंसक है इसलिए 'स्वमोर्नपुंसकात्' से अम् विभक्ति का लुक् होकर नकार का भी लोप हो जायेगा।
११. नराः। नर शब्द को अदन्त होने से जस् विभक्ति में 'प्रथमयोः' से दीर्घ हो जाता है। ऋकारान्त नृ शब्द के ग्रहण पक्ष में 'नरः' का प्रयोग ठीक ही है।
१२. नमस्कृत्य। गति संज्ञक नमः शब्द के साथ 'क्त्वा' को 'कुगतिप्रादयः' से समास होने पर 'समासेऽनञ्पूर्वे' से क्त्वा का ल्यप् हो जायगा।
१३. मृत्वा। मृधातु अनिट् है इसलिए इडागम नहीं होगा और कित् होने से 'क्ङिति च' से गुण का निषेध भी हो जायगा।
१४. गुरोः। 'आख्यातोपयोगे च' से नियमपूर्वक जिससे विद्या ग्रहण करें उससे उपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है।
१५. शब्दानुशासने। 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' से सप्तमी होगी।

न्यायशास्त्रमधीयन्तो[1] नो बिभ्यन्ति[2] केनचित्[3] ॥६॥
ये नो ददन्ति[4] नो भुङ्क्ते[5] पुनर्रमन्ति[6] योषितैः[7]।
जहित्वा[8] सर्वं ते जान्ति[9] जगतेऽस्मिन्[10] विनिन्दितः ॥७॥
सन्धिः त्वया न कर्तव्या[11] महती[12] रिपुणा सह।
प्राप्ते[13] विपत्तौ धीरत्वं नो जहन्ति[14] महज्जनाः[15] ॥८॥

---

१. अधीयानः। इङ् धातु आत्मनेपदी है इसलिए शानच् प्रत्यय होगा।
२. बिभ्यति। भीधातु अभ्यस्त संज्ञक है इसलिए 'अदभ्यस्तात्' से झि प्रत्यय को अत् आदेश हो जायगा।
३. कस्माच्चित्। भयार्थक धातु के योग में 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' से भय के हेतुवाचक शब्द के अपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है।
४. ददति। दाधातु भी अभ्यस्त संज्ञक है अतः अदादेश होगा।
५. भुञ्जते। कर्त्ता के बहुत्व होने से बहुवचन क्रिया होगी।
६. पुनारमन्ते। रम् धातु आत्मनेपदी है इसलिए झ प्रत्यय का अन्त आदेश होकर 'रोरि' इससे रेफ का लोप होने पर दीर्घ हो जायगा।
७. योषिद्भिः। योषित् शब्द तकारान्त है अतः ऐसादेश नहीं होगा।
८. हात्वा। क्त्वा प्रत्यय आर्धधातुक है इसलिए श्लु प्रत्यय नहीं होगा।
९. यान्ति। या धातु यकारादि है इसलिए जकारादि अशुद्ध है।
१०. जगति। जगत् शब्द तान्त है अतः ङि विभक्ति में गुण नहीं होगा।
११. कर्तव्यः। सन्धि शब्द पुंलिंग है अतः उसका विशेषण पुंलिंग ही होगा।
१२. महान्। पुल्लिङ्ग सन्धि शब्द का विशेषण होने से यहाँ भी पुल्लिङ्ग ही होगा।
१३. प्राप्तायाम्। विपत्तिशब्द का विशेषण होने से यह भी स्त्रीलिङ्ग हो जायगा।
१४. जहति। 'अदभ्यस्तात्' से झि प्रत्यय को अत् आदेश होगा।
१५. महाजनाः। महत् शब्द को 'आन्महतः' से आत्व होगा।

फले इमेऽतिमधुरे[1] बाला जक्षन्ति[2] हर्षिताः[3]।
क्रीडन्ते[4] च अहोरात्रं[5] रोदन्ति[6] न कदाचनः[7] ॥९॥
नीचाऽपि[8] ये नमस्यन्ति विष्णवे[9] कुप्यन्ति नो नवा।
प्राप्त्वा[10] महत्त्वमाप्तास्ते वञ्चयन्ति[11] न सज्जनान् ॥१०॥

---

१. इमे अतिमधुरे। 'ईदूदेद्द्विवचनम्' से प्रगृह्य होकर प्रकृतिभाव होगा।
२. जक्षति। 'जक्षित्यादयः षट्' से झि प्रत्यय को अत् आदेश होगा।
३. हृष्टाः। हृष् धातु अनिट् है अतः इडागम नहीं होगा।
४. क्रीडन्ति। क्रीडधातु परस्मैपदी है अतः आत्मनेपद नहीं होगा।
५. चाहोरात्रः। श्लोकपाद के मध्य में रहने से सन्धि और 'रात्राह्लाहाः पुंसि' से पुंस्त्व हो जायगा।
६. रुदन्ति। ङित् होने से गुण नहीं होगा।
७. कदाचन। अव्यय होने से विभक्ति नहीं होगी।
८. नीचा अपि। यलोप की असिद्धता होने से दीर्घ नहीं होगा।
९. विष्णुम्। कर्मत्व होने से कर्म में द्वितीया होगी।
१०. प्राप्य। 'समासेऽनञ् पूर्वे' से क्त्वा प्रत्यय को ल्यप् आदेश होगा।
११. वञ्चयन्ते। 'गृधिवञ्च्योः' से आत्मनेपद हो जायगा :

'इति गूढाशुद्धिप्रदर्शनम्' समाप्तम्।

अनुवादोपयोगिधात्वर्थाः

'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहारा-हार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥'

१. अञ्चु गतिपूजनयोः—
अञ्चति-पूजता है
अवाञ्चति-अधोमुख होता है
उदञ्चति-ऊपर जाता है
तिरोञ्चति-टेढ़ा जाता है
न्यञ्चति-नीचे जाता है
पराञ्चति-लौटता है
पर्युदञ्चति-उधार लेता है
प्रत्यञ्चति-अवनति पाता है।
प्राञ्चति-उन्नत होता है
समञ्चति-अच्छी तरह पूजता है
सहाञ्चति-साथ-साथ पूजता या जाता है।

२. अय गतौ—
अयते-जाता है
उदयते-उगता है
दुरयते-दुःखी होता है
दुलयते-दुःखी होता है
निरयते-निकलता है
पलायते-भागता है
विलयते-विलीन होता है
व्ययते-खर्च करता है

३. अर्थ उपयाञ्चायाम्
अर्थयते-मांगता है
अन्वर्थयते-अर्थानुकूल करता है
अभ्यर्थयते-निवेदन करता है
प्रार्थयते-प्रार्थना करता है
व्यर्थयते-विफल करता है
समर्थयते-अनुमोदन करता है

४. असु क्षेपणे—
अस्यति-फेंकता है
अध्यस्यति-आरोप करता है
अभ्यस्यति-कण्ठस्थ करता है
उपास्यति-दूर करता है
निरस्यति-हटाता है
न्यस्यति-सौंपता है
परास्यति-परास्त करता है
विन्यस्यति-स्थापित करता है
विपर्यस्यति-विपर्यास करता है
व्यत्यस्यति-उलट-पलट करता है
समस्यति-संक्षिप्त करता है

५. आप्लृ व्याप्तौ—
आप्नोति-प्राप्त करता है
अवाप्नोति-प्राप्त करता है
पर्याप्नोति-प्राप्त करता है
व्याप्नोति-व्याप्त करता है
समाप्नोति-समाप्त करता है

६. आस उपवेशने —
आस्ते-बैठता है
अध्यास्ते-रहता है
अन्वास्ते-पीछे बैठता है
उदास्ते-उदासीन होता है
उपास्ते-ध्यान करता है
७. इण् गतौ —
एति-जाता है
अत्येति-नष्ट होता है
अन्वेति-पीछे मिलता है
अपैति-दूर होता है
अभिप्रैति-इष्ट करता है
अभ्येति-सामने लाता है
अवैति-जानता है
उदेति-उदित होता है
उपैति-पास जाता या आता है
प्रत्येति-विश्वास करता है
विपर्येति-उलटता है
व्य येति-उलट-पलट करता है
व्येति-खर्च करता है
समन्वेति-समन्वय करता है
समवैति-सम्बद्ध करता है
८. ईक्ष दर्शने —
ईक्षते-देखता है
अन्वीक्षते-चिन्तन करता है
अपेक्षते-इच्छा करता है
उत्प्रेक्षते-संभावना करता है
उपेक्षते-लापरवाही करता है
निरीक्षते-निगरानी करता है
परीक्षते-परीक्षा करता है
प्रतीक्षते-प्रतीक्षा करता है
वीक्षते-देखता है
समीक्षते-विचार करता है
९. ईह चेष्टायाम् —
ईहते-चेष्टा करता है
निरीहते-निःस्पृह होता है
समीहते-चाहता है
१०. ऊह वितर्के —
ऊहते-विचार करता है
अपोहते-छोड़ता है
उपोहते-सूक्ष्म विचार करता
दुरुहते-कठिनाई से जानता है
प्रत्यूहते-विघ्न डालता है
व्यूहते-संगठित करता है
समूहते-शोधित करता है
११. डुकृञ् करणे —
करोति-करता है

अधिकुरुते-अधिकृत होता है
अनुकरोति-नकल करता है
अपकरोति-हानि करता है
अलंकरोति-सजाता है
अपाकरोति-खण्डन करता है
आविष्करोति-प्रकट करता है
उत्कुरुते-चुगली करता है
उदाकुरुते-झपटता है
उपकरोति-भलाई करता है
उपकुरुते-उपकार करता है

उपस्कुरुते-दूसरे का गुण लेता है
तिरस्करोति-अनादर करता है
निराकरोति-हटाता है
परिष्करोति-परिकृत करता है
प्रकुरुते-जबर्दस्ती करता है
प्रतिकरोति-बदला लेता है
विकुरुते-विकार प्राप्त करता है
संस्करोति-संस्कार करता है

१२. क्रमु पादविक्षेपे—
क्रामति-चलता है
अतिक्रामति-उल्लंघन करता है
अपक्रामति-हटता है
उपक्रमते-आरम्भ करता है
निष्क्रामति-निकलता है
परिक्रामति-घूमता है
विक्रमते-पराक्रम करता है
संक्रामति-फैलता है

१३. क्षिप् प्रेरणे—
क्षिपति-फेंकता है
अधःक्षिपति-नीचे फेंकता है
अधिक्षिपति-तिरस्कार करता है
आक्षिपति-दोष लगाता है
उत्क्षिपति-ऊपर फेंकता है
प्रक्षिपति-प्रक्षेप करता है
विक्षिपति-विक्षिप्त होता है
संक्षिपति-छोटा करता है

१४. गम्लृ गतौ—
गच्छति-जाता है
अधिगच्छति-प्राप्त करता है
अनुगच्छति-पीछे जाता है
अपगच्छति-दूर हटता है
अभ्यागच्छति-सामने आता है
अभ्युपगच्छति-स्वीकार करता है
अवगच्छति-जानता है
आगच्छति-आता है
उद्गच्छति-ऊपर जाता है
निर्गच्छति-निकलता है
प्रतिगच्छति-लौटता है
सङ्गच्छते-सङ्गत होता है

१५. ग्रह उपादाने—
गृह्णाति-लेता है
अनुगृह्णाति-कृपा करता है
आगृह्णाति-आग्रह करता है
दुरागृह्णाति-हठ करता है
निगृह्णाति-बंदी करता है
परिगृह्णाति-आसक्ति करता है
प्रतिगृह्णाति-दान लेता है
विगृह्णाति-लड़ाई करता है
संगृह्णाति-इकट्ठा करता है

१६. चर गतिभक्षणयोः—
चरति-चरता है
अतिचरति-अधिक गमन करता है
अनुचरति-अनुसरण करता है
आचरति-आचरण करता है
उच्चरति-ऊपर जाता है

उच्चरते–उल्लंघन करता है
उपचरति–उपचार करता है
दुराचरति–दुराचार करता है
परिचरति–सेवा करता है
विचरति–विचरण करता है
व्यभिचरति–व्यभिचार करता है
संचरते–भ्रमण करता है

१७. चिञ् चयने—
चिनोति–चुनता है
अन्वाचिनोति–आनुषंगिक करता है
अपचिनोति–घटाता है
अवचिनोति–इकट्ठा करता है
उपचिनोति–बढ़ता है
निचिनोति–इकट्ठा करता है
निश्चिनोति–निश्चय करता है
परिचिनोति–पहचानता है
सञ्चिनोति–जमा करता है
समुच्चिनोति–अधिक करता है

१८. ज्ञा अवबोधने—
जानाति–जानता है
अनुजानाति–अनुमति देता है
अपजानीते–छिपाता है
अभिजानाति–पहचानता है
अभ्यनुजानाति–स्वीकार करता है
प्रतिजानीते–प्रतिज्ञा करता है
विजानाति–निन्दा करता है
संजानीते–देखता है

१९. णीञ् प्रापणे—
नयति–ले जाता है
अनुनयति–मानता है
अपनयति–हटाता है
अभिनयति–अभिनय करता है
आनयति–लाता है
उन्नयते–ऊपर ले जाता है
उपनयति–पास में लाता है
निर्णयति–निर्णय करता है
परिणयति–विवाह करता है
प्रणयति प्रेम करता है
विनयति–विनय करता है
विनयते–खर्च करता है

२० तॄ प्लवनतरणयोः—
तरति–तैरता है
अवतरति–उतरता है
उत्तरति–जवाब देता है
वितरति–वितरण करता है
संतरति–ऊपर तैरता है।

२१. दिश अतिसर्जने—
दिशति–देता है
अपदिशति–बहाना करता है
आदिशति–आज्ञा देना है

उपदिशति-उपदेश करता है
निर्दिशति-बतलाता है
प्रतिनिर्दिशति-विधेय को बतलाता है
व्यपदिशति-मुख्य व्यवहार करता है
संदिशति-संदेश कहता है

२२. (डु) धाञ्-धारणपोषणयोः
दधाति-धारण करता है
अनुसन्दधाति-अनुसन्धान करता है
अन्तर्धत्ते-छिपाता है
अपिधत्ते-ढांकता है
अभिधत्ते-बोलता है
अवधत्ते-ध्यान देता है
आधत्ते-रखता है
तिरोधत्ते-छिपाता है
निधत्ते-रखता है
परिधत्ते-पहनता है
पिधत्ते ढांकता है
प्रणिधत्ते-ध्यान देता है
प्रतिनिधत्ते-प्रतिनिधि करता है

२३. पत्लृ पतने—
पतति-गिरता है
उत्पतति-उड़ता है
प्रणिपतति-प्रणाम करता है
निपतति-गिरता है

२४. पद गतौ—
पद्यते-जाता है
उत्पद्यते-पैदा होता है
उपपद्यते-युक्त होता है
निष्पद्यते-निष्पन्न होता है
प्रतिपद्यते-समझता है
विपद्यते-मरता है
व्युत्पद्यते-व्युत्पन्न होता है
संपद्यते-सुखी होता है

२५. बन्ध बन्धने—
बध्नाति-बाँधता है
उद्बध्नाति-फाँसी लगाता है
निबध्नाति-रचता है
निर्बध्नाति-जिद करता है
प्रतिबध्नाति-रोक लगाता है
प्रबध्नाति-प्रबन्ध करता है
सम्बध्नाति-जोड़ता है

२६. भू सत्तायाम्—
भवति-होता है
अनुभवति-अनुभव करता है
अन्तर्भवति-अन्तर्गत होता है
अभिभवति-दबाता है
आविर्भवति-प्रकट होता है
उद्भवति-उत्पन्न होता है
पराभवति-हारता है
परिभवति-तिरस्कृत होता है
प्रभवति-समर्थ या पैदा होता है
प्रादुर्भवति-प्रकट होता है

सम्भवति-हो सकता है

२७. मनु अवबोधने—

मन्यते-मानता है

अनुमन्यते-अनुमोदन करता है

अभिमन्यते-घमण्ड करता है

अवमन्यते-तिरस्कार करता है

विमन्यते-उपेक्षा करता है

संमन्यते-सम्मान करता है

२८. युजिर् (युज्) योगे—

युनक्ति-जोड़ता है

अभियुनक्ति-अभियोग करता है

अनुयुनक्ति-पूछता है

उद्युनक्ति-उद्योग करता है

उपयुनक्ति-उपयोग करता है

नियुनक्ति-नियुक्त करता है

प्रतियुनक्ति-स्पर्धा करता है

पर्यनुयुनक्ति-प्रत्युत्तर देता है

वियुनक्ति-नियुक्त करता है

संयुनक्ति-जोड़ता है

२९. रुह बीजजन्मनि—

रोहति-जमता है

अधिरोहति-चढ़ता है

अवरोहति-उतरता है

आरोहति-चढ़ता है

प्ररोहति-उत्पन्न होता है

संरोहति-मिलता है

३०. लप लपने—

लपति-बोलता है

अपलपति-छिपाता है

आलपति-बोलता है

प्रलपति-बकवास करता है

विलपति-विलाप करता है

संलपति-वार्तालाप करता है

३१. वद व्यक्तायां वाचि—

वदति-बोलता है

अनुवदति-अनुवाद करता है

अनुवदते-तुल्य=बराबर बोलता है

अपवदति-दूषित करता है

अपवदते-छोड़ता है

उपवदते-प्रार्थना करता है

प्रतिवदति-जवाब देता है

विप्रवदते-विरुद्ध बोलता है

विवदते-झगड़ता है

संप्रवदन्ते-मिलकर बोलते हैं

संवदति-बात करता है

३२. वृतु वर्तने—सत्तार्थे

वर्तते-है

अनुवर्तते-पीछे-पीछे चलता है

आवर्तते-दुहराता है

निवर्तते-लौटता है

परिवर्तते-घूमता है

प्रवर्तते-प्रवृत्त होता है

विवर्तते-बदलता है

३३. षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—

सीदति-दुःखी होता है
अवसीदति-थकता है
उपसीदति-पास में बैठता है
निषीदति-बैठता है
पर्यवसीदति-समाप्त होता है
प्रसीदति-प्रसन्न होता है
विषीदति-खिन्न होता है

३४. ष्ठा गतिनिवृत्तौ--
तिष्ठति-ठहरता है
अनुतिष्ठति-करता है
अवतिष्ठते-स्थिर होता है
उत्तिष्ठति-उठता है
उपतिष्ठते-उपस्थान करता है
प्रतिष्ठते-प्रस्थान करता है

३५. सृ गतौ--
सरति-जाता है
अनुसरति-अनुसरण करता है
अपसरति-हटता है
अभिसरति-निकलता है
उपसरति-पास जाता है
उत्सरति-अलग होता है
निःसरति-निकलता है
परिसरति-घूमता है
संसरति-संबद्ध होता है

३६. हृञ् हरणे
हरति-ले जाता है
अनुहरति-नकल करता है
अपहरति-चुराता है
अभ्यवहरति-खाता है
आहरति-लाता है
उद्धरति—निकालता है
उदाहरति—उदाहरण देता है
उपसंहरति-उपसंहार करता है
उपहरति—उपहार देता है
उपाहरति—लाता है, जलपान करता है
परिहरति—छोड़ता है
प्रत्युदाहरति—दूसरा उदाहरण देता है
प्रहरति—मारता है
विहरति—विहार करता है
व्यवहरति—बोलता है
संहरति—नाश करता है
समाहरति—इकट्ठा करता है

इति अनुवादोपयोगिधात्वर्थाः ।

लघुकौमुदीस्थप्रयोगसूची

अच्सन्धिः —

सुद्ध्युपास्यः—विद्वानों के उपासनीय भजनीय
मध्वरिः—'मधु' दैत्य के शत्रु (विष्णु)
धात्त्रंशः—ब्रह्मा का अंश
लाकृतिः—'लृ' के समान टेढ़ी आकृतिवाला
हरये—हरि के लिए
विष्णवे—विष्णु के लिए
नायकः—नेता, प्रधान
पावकः—पवित्रकर्त्ता या अग्नि
गव्यम्—गौ का विकार दुग्ध, दधि, घृत आदि
नाव्यम्—नौका से उतरने योग्य (जल)
गव्यूतिः—दो कोस।
उपेन्द्रः—इन्द्र के छोटे भाई (वामन भगवान)
गङ्गोदकम्—गङ्गा का उदक (जल)
गजेन्द्रः—यूथपति गज-हस्तिराज
कृष्णर्द्धिः—कृष्ण की समृद्धि
हर इह—हे हरि! यहाँ
तवल्कारः—तेरा लृकार
विष्ण इह—हे विष्णु! यहाँ
कृष्णैकत्वम्—कृष्ण की एकता
गङ्गौघः—गङ्गा का प्रवाह
देवैश्वर्यम्—देवताओं का ऐश्वर्य
कृष्णौत्कण्ठ्यम्—कृष्ण में उत्कण्ठा
उपैति—पास आता है
उपैधते—समीप बढ़ता है

प्रष्ठौहः--सिखाने के लिए या दूर भाग न सके इस हेतु से गले में काष्ठ बाँध देते हैं ऐसे बछड़े को 'प्रष्ठवाट्' कहते हैं (तस्य प्रष्ठौहः) प्रष्ठवाट् का

उपेतः—समीप आया हुआ या प्राप्त हुआ

मा भवान् प्रदिधत्—आप अधिक न बढ़ाइये

अक्षौहिणी—सेनाविशेष, जिसमें हाथी, रथ, घोड़े, और पैदल हैं

प्रौहः—अधिक तर्क या उत्तम तर्क करने वाला

प्रौढ़ः—दक्ष, अधेड़ । प्रौढ़िः—प्रौढता

प्रैषः—प्रेरणा

प्रैष्यः—नौकर

सुखार्तः—सुख से प्राप्त हुआ, सुखी

परमर्तः—परम प्राप्त, मुक्त

प्रार्णम्—अधिक ऋण, कर्जा

वत्सतरार्णम्—बछड़े का ऋण

कम्बलार्णम्—कम्बल का ऋण

वसनार्णम्—वस्त्र का ऋण

ऋणार्णम्—एक ऋण को उतारने के लिए लिया गया दूसरा ऋण

दशार्णः—दश किले जिस देश में हों ऐसा देश—(उज्जैन)

प्रार्च्छति—अधिक चलता है

प्रेजते—अधिक काँपता हैं

उपोषति—जलाता है

शकन्धुः—शक देश का कूप=कुआं

कर्कन्धुः—बदरी फल (बेर)

मनीषा—बुद्धि

मार्तण्डः—सूर्य

शिवायोनमः—शिव को नमस्कार है

शिवेहि—हे शिव ! आओ

दैत्यारिः—दैत्यों का शत्रु (विष्णु भगवान्)
श्रीशः—लक्ष्मीपति (विष्णु)
विष्णूदय—विष्णु का अभ्युदय
होतृकारः—होता का ऋकार
हरेऽव—हे हरि ! रक्षा करो
गो अग्रम्—गौ का अग्रभाग
चित्रग्वग्रम्—विचित्र गाएं हैं जिसके उस पुरुष का अग्रभाग
गोः—गौ का
गवाग्रम्—गौ का अग्रभाग
गवि—गौ में। गवेन्द्रः—गोस्वामी, साँढ़
आगच्छ कृष्ण ३ अत्रागच्छ गौश्चरति—हे कृष्ण ! यहाँ आओ गौ चरती है
हरी एतौ—ये दोनों हरि हैं
विष्णू इमौ—ये दोनों विष्णु हैं
गङ्गे अमू—ये दोनों गङ्गा हैं।
अमी ईशाः—ये अधिपति हैं
रामकृष्णावमू आसाते—ये बलराम और कृष्ण बैठे हैं
अमूकेऽत्र—ये यहाँ हैं ?
इ इन्द्रः—ओह ! यह इह इन्द्र है !
उ उमेशः—क्या वह महादेव है ?
आ एवं नु मन्यसे—क्या तूं ऐसा मानता है ?
आ एवं किल् तत्—हाँ, वह बात ऐसी ही है
ओष्णम्—कुछ गर्म
अहो ईशाः—अहो ये अधिपति हैं
विष्णो इति—हे विष्णु। ऐसा
किम्वुक्तम्—क्या कहा ?
चक्रि अत्र—विष्णु यहाँ हैं
गौर्यौ—दो गौरी हैं।

वाप्यश्वः—वापी पर घोड़ा
ब्रह्मर्षि—ब्रह्म ऋषि, वसिष्ठ
आर्च्छत—चला गया

इत्यच्सन्धिः।

हल्सन्धिः

रामश्शेते—राम सोता है
रामश्चिनोति—राम चुनता है
सच्चित्—सत् और ज्ञानस्वरूप
शार्ङ्गिञ्जय—हे शार्ङ्गिन्=शार्ङ्ग-धनुर्धारी भगवन्! तुम्हारी जय हो
विश्नः—विचलना या गतिविशेष
प्रश्नः—पूछना। रामष्षष्ठः—राम छठा है
रामष्टीकते—राम जाता है, पेष्टा—पीसने वाला
तट्टीका—वह टीका।
चक्रिण्ढौकसे—हे चक्रिन्=चक्रधारी! तुम जाते हो
षट् सन्तः—छ सत्पुरुष
षट् ते—वे छ हैं। ईट्टे—स्तुति करता है
सर्पिष्टमम्—अत्युत्कृष्ट घृत
षण्णाम्—छै का। षण्णवतिः—छियान्नवे (९६)
षण्णगर्यः—छः नगरियाँ। सन्षष्ठः—छठा श्रेष्ठ है
वागीशः—वृहस्पति। एतन्मुरारिः—यह मुरारि है
तन्मात्रम्—केवल वही।
तल्लयः—उसमें लय=लीन होना
विद्वाँल्लिखति—विद्वान्=पण्डित लिखता है
उत्थानम्—उठना, उन्नति
उत्तम्भनम्—उठाना, उभारना

वाग्धरिः—बोलने में शेर
तच्छिवः—वह शिव है
तच्छ्लोकेन—उस श्लोक से या उसकी कीर्ति से
हरिं वन्दे—हरि को मैं नमस्कार करता हूं
यशांसि—बहुत से यश
आक्रंस्यते—आक्रमण करेगा
मन्यते—मानता हैं
शान्तः—शान्त। अङ्कितः—चिह्नित
अञ्चितः—पूजित या गत। कुण्ठितः—रुका हुआ
दान्तः—जितेन्द्रिय। गुम्फितः—गुथा हुआ
त्वङ्करोति—तुम करते हो। संवत्सरः—वर्ष संवत्
सम्राट्—चक्रवर्ती राजा
किं ह्यः—कल क्या था ?
किं ह्वलयति—क्या चलता है ?
किं ह्लादयति—क्या प्रसन्न करता है ?
किं ह्नुते—क्या छिपाता है ? षट्त्सन्तः—छै सज्जन
प्राङ् षष्ठः—छठा पूजित है
सुगण् षष्ठः—छठा अच्छा गणितज्ञ हैं
सन्त्सः—वह सत्पुरुष है
सञ्छम्भुः—शम्भु सत्स्वरूप है
प्रत्यङ्ङात्मा—अन्तरात्मा (जीवात्मा)
सुगण्णीशः—अच्छे गणितज्ञों का ईश
सन्नच्युतः—अच्युत सत्स्वरूप है
संस्कर्ता—संस्कार करने वाला
पुंस्कोकिलः—नरकोकिल
चक्रिंस्त्रायस्व—हे चक्रिन्-चक्रधारिन्! रक्षा करो
प्रशान्तनोति—शान्त पुरुष विस्तार करता है
हन्ति—मारता है

नॄँ॒ पाहि—मनुष्यों की रक्षा करो
काँस्कान्—किन-किन को। शिवच्छाया-शिव की छाया
लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मी की छाया या शोभा

इति हल्सन्धिः

विसर्गसन्धिः

विष्णुस्त्राता—विष्णु रक्षक है
हरिश्शेते—हरि सोता है
शिवोऽर्च्यः—शिव पूजनीय है
शिवो वन्द्यः—शिव बन्दनीय है
देवा इह—देवता यहाँ। भो देवाः-हे देवताओं!
भगो नमस्ते—हे भगवन्! तुमको नमस्कार है
अघो यहि—अये! जाओ
अहरहः—प्रतिदिन। अहर्गणः-दिनसमूह
पुना रमते—फिर खेलता है। हरी रम्यः-हरि रमणीय है
शम्भू राजते—शम्भु विराजता है
अजर्घाः—तुमने बार-बार लोभ किया
तृढः—हिंसित। वृढः-उद्यत, तैयार हुआ
मनोरथः—इच्छा। एष विष्णुः-यह विष्णु है
स शम्भुः—वह शम्भु है। एषको रुद्रः-यह रुद्र है
असःशिवः—वह शिव नहीं है
एषोऽत्र—यह यहाँ है
सेमामविड्ढिप्रभृतिम्—इसे देने में आप समर्थ हैं तो आप हमें इस प्रभृति प्रकृष्ट धारणा को प्राप्त करावें
सैष दाशरथी रामः—वह यह दशरथ का पुत्र राम है

इति विसर्गसन्धिः।

अजन्तपुंल्लिङ्गः

रामः—राम । कृष्णः - कृष्ण
सर्वः—सब । विश्वः - सब, संसार
उभौ—दोनों । उभयः - दो अवयववाला
अन्यः—दूसरा । अन्यतरः - दो में एक
इतरः—इतर । त्वत् - अन्य
त्वः—भिन्न । नेमः - आधा
समः—सब । सिमः - सब
पूर्वः—पहला । परः - दूसरा
अवरः—छोटा । दक्षिणः - दक्षिण
उत्तरः—उत्तर । अपरः - दूसरा
अधरः—नीचा । स्वः - आत्मा और आत्मीय
अन्तरः—बाहर या पहिनने का कपड़ा
प्रथमः - पहला
चरमः - अन्तिम । कतिपयः - कई एक
द्वितीयः - दो अवयव वाला । अल्पः - थोड़ा
अर्धः- आधा । निर्जरः - देवता
विश्वपाः - विश्व का पालन करनेवाला (विष्णु)
शङ्खध्माः - शङ्ख बजानेवाला
हाहाः - देव, गन्धर्व । हरिः - पापहर्त्ता
कवि - कविता करनेवाला । सखा - मित्र
पतिः - पति या मालिक । भूपतिः - राजा
कति - कितने ? त्रयः - तीन
प्रियत्रिः - जिसको तीन प्यारे हैं वह
द्वौ - दो । पपीः—सूर्य
वातप्रमीः - मृग ।
बहुश्रेयसी - बहुत कल्याण चाहनेवाली स्त्रियों का पुरुष
अतिलक्ष्मीः–लक्ष्मी को अतिक्रमण करनेवाली, लक्ष्मी श्रेष्ठ
प्रधीः - प्रकृष्ट ध्यानवाला

ग्रामणीः – मुखिया। नी – ले जानेवाला
सुश्रीः – सुन्दर श्रीवाला।
यवक्रीः – जौ खरीदनेवाला
शुद्धधीः – पवित्र बुद्धिवाला। सुधी – पण्डित
सुखीः – सुख चाहनेवाला
सुतीः – पुत्र चाहनेवाला। शम्भुः – शिव
भानुः – सूर्य। क्रोष्टा – गीदड़
हूहूः – गन्धर्व।
अतिचमूः – सेना को अतिक्रमण करनेवाला
खलपूः – खलिहान को सफा करनेवाला
सुलूः – अच्छा काटनेवाला
स्वभूः – स्वयम्भू ब्रह्मा। वर्षाभूः – मेढक
दृन्भूः – सर्प, कपि, वज्र और सूर्य
करभूः – हाथ से पैदा हुआ (नख)
धाता – ब्रह्मा। नप्ता – दौहित्र
पिता – पिता। जामाता – दामाद
ना – मनुष्य। गौः – गौ
राः – धन। ग्लौः – चन्द्रमा

इत्यजन्तपुँल्लिङ्गः।

अजन्तस्त्रीलिङ्गः

रमा – लक्ष्मी। दुर्गा – दुर्गा।
अम्बिका – दुर्गा। सर्वा – सब (स्त्री)
विश्वा – सब (स्त्री)। उत्तरपूर्वा – ईशानकोण
द्वितीया – दूसरी। तृतीया – तीसरी
अम्बा – माता या दुर्गा। अल्ला – माता
अक्का – माता। जरा – वृद्धावस्था=बुढ़ापा
गोपाः – गोपी। मतिः – बुद्धि

बुद्धिः - बुद्धि। तिस्रः - तीन स्त्रियाँ
चतस्रः - चार स्त्रियाँ। द्वे -- दो स्त्रियाँ
गौरी - पार्वती, गोरी स्त्री। नदी — नदी।
लक्ष्मीः - लक्ष्मी। तरीः—नौका
श्रीः - लक्ष्मी। धेनुः—नयी बिआई गाय
भ्रूः - भ्रुकुटि। स्वयंभूः—माया, प्रकृति
स्वसा - बहिन। ननान्दा—ननद
दुहिता - पुत्री। याता—देवरानी, जेठानी
माता - माता। द्यौः—आकाश
राः - धन। नौः—नौका

इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गः।

अजन्तनपुंसकलिङ्गः

ज्ञानम् - ज्ञान। धनम् - धन
वनम् - वन। फलम् - फल
कतरत् - दो में कौन? कतमत् - तीनों या बहुतों में कौन?
इतरत् - इतर या दूसरा। अन्यत् - दूसरा
अन्यतरत् - दो में एक। श्रीपम् - धन रक्षक
अन्यतमम् - इन सब में एक। एकतरम्-दोनो में एक
द्वे - दो। त्रीणि - तीन। वारि - जल
दधि - दही। अस्थि - हड्डी
सक्थि - ऊरु, मांसल जांघ। अक्षि-आँख
सुधि -बुद्धिमान्। मधु - मदिरा, शहद
सुलु - अच्छा काटनेवाला (शस्त्र)
धातृ - धारण या पोषण करनेवाला (कुल)
ज्ञातृ - ज्ञानी कुल। प्रद्यु-सुन्दर आकाश युक्त (दिन)
प्ररि - धार्मिक (कुल)। सुनु-सुन्दर नौकावाला (कुल)

इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गः।

हलन्तपुंल्लिङ्गः

लिट् – चाटनेवाला । धुक् – दूहनेवाला
ध्रुक् – द्रोह करनेवाला
मुक् – मुग्ध या मोहित करनेवाला
स्नुक् – वमनकारी । स्निक्–स्नेह करनेवाला
विश्ववाट् – विश्वम्भर । अनड्वान् – बैल
विद्वान् – शास्त्रज्ञ, पण्डित । स्रस्तन् – गिरा हुआ
ध्वस्तम् – नष्ट हुआ । तुराषाट् – इन्द्र
सुद्यौ – सुन्दर आकाशवाला (दिवस)
चत्वारः – चार । प्रशान् – शान्त
कः – कौन ? अयम् – यह (पास में)
राजा – राजा
ब्रह्मनिष्ठ – ब्रह्म में निष्ठा=प्रेम करनेवाला
ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता
यज्वा – यज्ञ करनेवाला । वृत्रहा–इन्द्र
शार्ङ्गी – शार्ङ्ग-धनुर्धारी (विष्णु)
यशस्वी – यशवाला । अर्यमा – सूर्य या देवविशेष
पूषा – सूर्य । मघवान् – इन्द्र
श्वा – कुत्ता । युवा – जवान, युवक
अर्वा – घोड़ा । पन्थाः – मार्ग, रास्ता
मन्थाः – दही मथने का दण्ड । ऋभुक्षाः – इन्द्र
पञ्च – पाँच । अष्टौ–आठ
ऋत्विक् – ऋत्विज करने वाला । युङ्—योगी
सुयुक् – सुयोगी । खन् – लंगड़ा, एक पैर का
राट् – राजा । विभ्राट्—बड़ा, अति शोभायुक्त
देवेट् – देव पूजक । विश्वसृट्—ब्रह्मा
परिव्राट् – संन्यासी । विश्वाराट्—विश्वेश्वर भगवान्, (सूर्य)
भृट् – भूजने वाला ।

स्यः - वह । सः—वह । यः—जो
एषः - यह (अत्यन्त निकट स्थित), त्वम्-तू
अहम् - मैं । सुपात्—सुन्दर पैर वाला
अग्निमत् - अग्निमन्थन करने वाला
प्राङ् - अच्छा चलने वाला या पूज्य
प्रत्यङ् - पीछे । उदङ्—उत्तर
सम्यङ् - ठीक चलनेवाला
सध्र्यङ् - साथी, मित्र । तिर्यङ्—टेढ़ा चलने वाला पशु, पक्षी
क्रुङ् - क्रौञ्च पक्षी ।
पयोमुक् - मेघ । महान्—बड़ा
धीमान् - बुद्धिमान् । भवान्—आप
भवन् - होता हुआ । ददत्—देता हुआ
जक्षत् - खाता व हँसता हुआ
जाग्रत् - जागता हुआ
शासत् - शासन करता हुआ
चकासत् - दीप्त होता हुआ । गुप्—रक्षक
तादृक् - वैसा । विट्—बनियाँ
नक् - नष्ट होने वाला । घृतस्पृक्–घी छूनेवाला
दधृक्—तिरस्कर्त्ता
रत्नमुट् - रत्न का चोर । षट्=छः । पिपठीः—पढ़ने की इच्छा करने वाला
चिकीः - करने की इच्छा करने वाला
विद्वान्—पण्डित । पुमान्—पुरुष
उशना—शुक्राचार्य अनेहा—समय
वेधाः—ब्रह्मा । असौ—वह (पुरुष)

इति हलन्तपुंलिङ्गः ।

हलन्तस्त्रीलिङ्गः

उपानत् – जूता। उष्णिक् – पगड़ी
द्यौः – आकाश। गीः – वाणी
पूः – पुरी, नगरी। चतस्रः – चार स्त्रियाँ
का – कौन स्त्री। इयम् – यह स्त्री
स्या – वह स्त्री। सा–वह स्त्री
एषा – यह स्त्री। वाक् – वाणी
आपः – जल। दिक् – दिशा
दृक्—आँख। त्विट्—कान्ति। सजूः—मित्र
आशीः—आशीर्वाद। असौ—वह स्त्री

इति हलन्तस्त्रीलिङ्गः।

हलन्तनपुंसकलिङ्गः

स्वनडुत्—अच्छे बैलों वाला (कुल)
वाः—जल। चत्वारि—चार। किम्—क्या ?
इदम्—यह। एनत् – यह
अहः—दिन। दण्डि—दण्डवाला
सुपथि—सुमार्गवाला (वन)। ऊर्क्—तेज और बल
तत्—वह। यत्—जो। एयत्—यह
गवाक्—गोपूजक, गौ के पीछे जानेवाला
शकृत्—मल (टट्टी)। ददत्—देता हुआ
तुदत्—दुःख देता हुआ। पचत्—पाक करता (कुल)
दीव्यत्—खेलता हुआ। धनुः—धनुष
चक्षुः—आँख। हविः—घी। पयः—दूध या जल
सुपुम्—सुपुरुषोंवाला (कुल)। अदः—यह

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गः।

भ्वादयः

भू—होना। अत—निरन्तर गमन=चलना।

विध – जाना। चिती—चेतना
शुच – शोक करना। गप—स्पष्ट बोलना
णद – नाद करना। टुनदि—समृद्धि
अर्चं – पूजना। व्रज—जाना
कटे – बरसना और ढकना
गुपू – पालन करना। क्षि—नाश होना
तप – संताप करना। क्रमु—चलना
पा – पीना। ग्लै—ग्लानि
श्रु – सुनना। ह्व—कुटिलता
गम्लृ – जाना (गमन)। एध—बढ़ना
कमु – इच्छा करना। अय—चलना
द्युत – दीप्त होना। श्विता—सफेद करना
ञिमिदा – चिकना होना। ञिष्विदा—पसीना आना और छोड़ना
रुच – चमकना व अच्छा लगना
घुट – घोटना। शुभ—शोभित होना
क्षुब्ध – क्षुब्ध होना। णभ-तुभ—हिंसा करना
स्रंसु – भ्रंसु-ध्वंसु—गिरना या नष्ट होना
स्रम्भु—विश्वास करना। वृतु—वर्तना
दद – देना। त्रपुष—लज्जित होना
श्रिञ – सेवा करना। भृञ—पालन करना
हृञ – हरना, चोराना। धृञ—धारण करना
णीञ – ले जाना। डुपचष—पकाना
भज – भजन करना। यज—पूजा करना
वह – वहन करना।

इति भ्वादयः ॥ १ ॥

★

अदादयः

अद – खाना। हन – मारना, चलना
यु – मिलना। या – पहुंचना, जाना
वा – बहाना, चुगली करना। भा – चमकना
ष्णा – स्नान करना। श्रा – पकाना
द्रा – निन्दित गमन। प्सा – खाना
रा – देना। ला–लेना। दाप – काटना
पा – रक्षा करना। ख्या – कहना
विद – जानना। भस – होना
इण – जाना। शीङ् – सोना
इङ – पढ़ना। दुह–दुहना। दिह – बढ़ना
लिह – चाटना। ब्रुञ – बोलना। अर्णुञ-ढकना

इत्यदादयः॥ २॥

जुहोत्यादयः

हु – होम करना, खाना या लेना
ञिभि – डरना। ह्री – लज्जित होना
पृ – पालन करना। ओहाक – जाना, त्यागना
माङ – नापना। डुभृञ – धारण करना
डुदाञ – देना। डुधाञ् – पालन करना
णिजिर – साफ करना, पोषण करना

इति जुहोत्यादयः॥ ३॥

दिवादयः

दिवु – खेलना, जय की इच्छा, लेनदेन का व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न होना। मदमत्त होना, सोना, इच्छा करना, जाना।

षिव – सीना। नृती – नाचना
त्रसी – घबराना। शो – छीलना, तेज करना

छो – छाँटना । षो – नाश करना
दो – काटना । व्यध – मारना
पुष – पुष्ट करना । शुष – सूखना
णश – नष्ट होना । षूङ – उत्पन्न करना
दूङ् – दुखी होना । दीङ् – क्षीण होना
डीङ् – आकाश में उड़ना । पीङ् – पीना
माङ् – नापना । जनी – जनमना
दीपी – चमकना । पद – चलना
विद – होना । बुध – जानना । युध –लड़ना
सृज – छोड़ना, त्यागना । मृष – सहन करना
णह – बांधना ।

इति दिवादयः ॥ ४ ॥

स्वादयः

षुञ् – स्नान करना, सोमलताको कूटना ।
चिञ् – इकट्ठा करना (चुनना)
स्तृञ् – ढकना । धूञ् – कांपना

इति स्वादयः ॥ ५ ॥

तुदादयः

तुद – कष्ट देना । णुद – प्रेरणा करना
भ्रस्ज – भूनना । कृष – जोतना
मिल – मिलना । मुच्लृ – छोड़ना
लुप्लृ – काटना, लोप करना । विदलृ – प्राप्त करना
षिच – सींचना । लिप – लीपना
कृती – काटना । खिद – खिन्न होना

पिश – पीसना। ओव्रश्च – काटना
व्यच – ठगना। उंछि – बीनना, चुनना
ऋच्छ – जाना, इन्द्रियों का शिथिल होना, जमना।
उज्झ – त्यागना। मृभ – चुभाना
तृप – तृम्फ – तृप्तहोना। मृड – पृड=सुखी होना
शुन – जाना। इषु – इच्छा करना
कुट – कुटिलता करना। पुट – मिलना
स्फुट – खिलना। स्फुर –स्फुल = फड़कना
णू – स्तुति करना। टुमस्जो – नहाना, मज्जन
रुज–तोड़ना, रोगी होना। भुज टेढ़ा होना
विश – प्रवेश करना। मृश – स्पर्श करना
षद्लृ – बिखरना, जाना, दुःखी होना
शदलृ – छीलना। कॄ– बिखेरना
गॄ – निगलना। प्रच्छ – पूछना
मृङ – मरना। पृङ – उद्योग करना
जुषी – प्रीति तथा सेवा करना
ओव्रीजी – डरना, काँपना, उद्विग्न होना

इति तुदादयः ॥ ६ ॥

रुधादयः

रुधिर – रोकना
भिदिर – भेदन करना। छिदिर – तोड़ना
युजिर – जोड़ना। रिचिर – रिक्त होना
विचिर – पृथक् होना। क्षुदिर – पीसना
उच्छृदिर – चमकना, खेलना
उतृदिर – मारना, अनादर करना
कृती – काटना। तृह – हिंसि=हिंसा करना

उन्दी – भिगोना। अञ्ज – प्रकट करना, चिकना, सुन्दर होना, जाना।

तञ्च – संकुचित होना।

ओविजी – भय करना, काँपना

शिष्लृ – विशेषित करना। पिष्लृ – पीसना

भञ्ज – तोड़ना। भुज – पालना, खाना

(ञि) इन्धी – चमकना, दीप्त होना

विद – विचार करना।

इति रुधादयः ॥ ७ ॥

तनादयः

तनु – विस्तार करना, फैलाना

षणु – दान देना। क्षणु – क्षिणु=मारना

तृणु – खाना। डुकृञ् – करना। वनु – माँगना

मनु – जानना।

इति तनादयः ॥ ८ ॥

क्र्यादयः

डुक्रीञ – अदल-बदल करना, खरीदना, बेचना

प्रीञ – तृप्त करना, इच्छा करना

श्रीञ – पकाना। मीञ – मारना

षिञ – बाँधना। स्कुञ – उछलना, उठाना

स्तम्भु – स्तुम्भु–स्कम्भु–स्कुम्भु=रोकना

युञ – बाँधना। क्नूञ – शब्द करना

द्रूञ – मारना। दृञ – विदीर्ण करना

पूञ – पवित्र करना

लूञ – काटना। स्तॄञ – ढकना

कॄञ – मारना। वॄञ – स्वीकारना

धूञ – कँपाना। ग्रह – लेना

कुष – निकालना, खुरचना
अश – खाना । मुष – चुराना
ज्ञा – जानना
वृङ – भजन करना, स्वीकार करना

इति क्र्यादयः ॥ ९ ॥

चुरादयः

चुर – चोरी करना
कथ – कहना
गण – गिनना

इति चुरादयः ॥ १० ॥

ण्यन्तः

भावयति – होने के लिए प्रेरणा करता है
स्थापयति – ठहराता है
घटयति – चेष्टा कराता है
ज्ञपयति – बताता है

इति ण्यन्तः ।

सन्नन्तः

पिपठिषति – पढ़ने की इच्छा करता है
जिघत्सति – खाना चाहता है । चिकीर्षति–करना चाहता है
बुभूषति – होना चाहता है

इति सन्नन्तः ।

यङन्तः

बोभूयते – बारंबार या अच्छी तरह होता है ।

वाव्रज्यते – टेढ़ा चलता है।
वरीवृत्यते – बार-बार या अच्छी तरह होता है
नरीनृत्यते – बार-बार व अच्छी तरह नाचता है
जरीगृह्यते – बार-बार वा अच्छी तरह ग्रहण करता है।

इति यङन्तः

यङ् लुगन्तः

बोभवीति – बारबार या अच्छी तरह होता है।

इति यङ् लुगन्तः

नामधातुः

पुत्रीयति – अपने लिए पुत्र चाहता है
राजीयति – अपने लिए राजा चाहता है
वाच्यति, गीर्यति – अपने लिए वाणी चाहता है
पूर्यति – अपनें लिए नगरी चाहता है। दिव्यति–अपनें लिए स्वर्ग चाहता है
समिध्यति – अपने लिए समिधा चाहता है
पुत्रीयति छात्रम् – छात्र को पुत्र की तरह मानता है
पुत्रकाम्यति–अपने लिए पुत्र चाहता है
विष्णूयति द्विजम् – ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है।
स्वति–अपने समान या धन की तरह मानता है।
राजानति – राजा के समान मानता है
पथीनति – मार्ग की तरह मानता है
कष्टायते – पाप करना चाहता है
शब्दायते – शब्द करता है
घटयति – घड़ा बनाता है

इति नामधातुः

कण्ड्वादयः

कण्डूयति – खुजलाता है

इति कण्ड्वादयः

आत्मनेपदम्

व्यतिलुनीते – अन्य के काटने योग्य को स्वयं काटता है
व्यतिगच्छन्ति – दूसरों के योग्य गमन को दूसरे करते हैं
व्यतिघ्नन्ति – अन्य के योग्य हनन को अन्य करते हैं
निविशते – प्रविष्ट होता है   परिक्रीणीते-खरीदता है
विक्रीणीते – बेचता है।   अवक्रीणीते-खरीदता है
विजयते – विजय पाता है   पराजयते-हारता है
सन्तिष्ठते – ठहरता है।   अवतिष्ठते-बैठता है
प्रतिष्ठते – जाता है, बैठता है। वितिष्ठते-बैठता है
शतमपजानीते – सौ रुपयों को छिपाता है
सर्पिषो जानीते – घी से प्रवृत्त होता है
धर्ममुच्चरते – धर्म का उलङ्घन करता है
रथेन सञ्चरते – रथ से घूमता है
दास्या संयच्छते – दासी को देता है
एदिधिषते – बढ़ना चाहता है
निविविक्षते – प्रविष्ट होना चाहता है
श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते – बाज चिड़िया पर झपटता है
उत्कुरुते – चुगली करता है
हरिमुपकुरुते – हरि की सेवा करता है
परदारान् प्रकुरुते-अन्य स्त्री में प्रवृत होता है, बलात्कार करता है
एधोदकस्योपस्कुरुते-काष्ठ जल का गुण ग्रहण करता है
कथाः प्रकुरुते – कथा करता है
शतं प्रकुरुते – सौ रुपया धर्मार्थं लगाता है

कटं करोति - चटाई बनाता है
ओदनं भुङ्क्ते - भात खाता है
महिं भुनक्ति - पृथ्वी की रक्षा करता है

इत्यात्मनेपदम्

परस्मैपदम्

अनुकरोति - नकल करता है
पराकरोति - दूर करता है। अभिक्षिपति-फेंकता है
प्रवहति - बहता है। परिमृषति-सहन करता है
विरमति - हटता है। यज्ञदत्तमुपरमति-यज्ञदत्त को हटाता है

इति परस्मैपदम्।

भावकर्म

भूयते - हुआ जाता है
अनुभूयते - अनुभूत किया जाता है
भाव्यते - भावित किया जाता है
बुभूष्यते - होने कि इच्छा की जाती है
बोभूयते - बार-बार हुआ जाता है
स्तूयते - स्तुति की जाती है
अर्यते - प्राप्त किया जाता है
स्मर्यते - स्मृत किया जाता है
स्रस्यते - गिरा जाता है
नन्द्यते - आनन्दित हुआ जाता है
इज्यते - यज्ञ किया जाता है
तायते - विस्तृत किया जाता है
अनुतप्यते - पश्चात्ताप किया जाता है
दीयते - दिया जाता है। धीयते-धारण किया जाता है

भज्यते – भजन किया जाता है। लभ्यते–प्राप्त किया जाता है

इतिभावकर्म।

कर्मकर्तृ

पच्यते – पकता है

भिद्यते – टूटता है

इति कर्मकर्तृ

लकारार्थः

स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः—हे कृष्ण ! स्मरण करते हो कि हम गोकुल में रहते थे।

अभिजानासि कृष्ण: ? यद्वनेऽभुञ्जमहि—हे कृष्ण याद करते हो कि वन में हमलोग खाया करते थे।

यजतिस्म युधिष्ठिरः – युधिष्ठिर यज्ञ किया

कदाऽऽगतोऽसि – कब आये हो ?

अयमागच्छामि अयमागमं वा – यह आ रहा हूँ

कदा गमिष्यसि – कब जाओगे ?

एष गच्छामि गमिष्यति वा – यह (अभी) जा रहा हूँ

कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्—यदि कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुखी होगा।

कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं – यास्यति—कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख पायेगा।

हन्तीति पलायते – मारता है इसलिए भागता है।

यजेत – यज्ञ करे। इह भुञ्जीत–वहाँ खावे

इहाऽऽसीत् भवान्—(इच्छा होतो) आप यहाँ बैठिये

पुत्रमध्यापयेद्भवान् – आप मेरे पुत्र को पढ़ाइयेगा ?

किं भो ? वेदमधीयीय, उत तर्कम्—कहिये क्या मैं वेद पढ़ूं या तर्क ?

भो ! भोजनं लभेय – भाई ! भोजन प्राप्त करूँगा

इति लकारार्थः

●

कृत्यप्रक्रियाः

एधितव्यम् – बढ़ना चाहिए

एधनीयम्–बढ़ना चाहिए । चेतव्यः–चयनीयो वा०--सञ्चयकरना चाहिए

पचेलिमाः – पकाने योग्य । भिदेलिमाः–भेदन करने योग्य

स्नानीयम्ः – साबुन (उबटन)या जल

दानीयः – दान देवे योग्य (विप्र)। चेयम्–चुनवे योग्य

देयम्—देने योग्य । ग्लेयम् – ग्लानि के योग्य

शप्यम् – शाप देने योग्य । लभ्यम् – पाने लायक

इत्यः – जाने योग्य । स्तुत्यः – स्तुति करने योग्य

शिष्यः – शिक्षा देने योग्य (शिष्य या छात्र, चेला)

वृत्यः – वर्तने योग्य । आदृत्यः—आदर योग्य

जुष्यः – सेवनीय । मृज्यः— साफ करने योग्य

कार्यम् – कर्तव्य । हार्यम्—हरणीय

धार्यम् – धारण के योग्य । मार्ग्यः—शोधनीय

भोज्यम् – भोजन करने योग्य । भोग्यम्—भोगने योग्य

इति कृत्यप्रक्रिया

●

पूर्वकृदन्तम्

कारकः – करने वाला । कर्त्ता – कर्त्ता

नन्दनः – आनन्द करने वाला । ग्राही – ग्रहण करने वाला

स्थायी – स्थिर । मन्त्री – सलाह देने वाला

बुधः – पण्डित । कृशः – कृश । ज्ञः–जानने वाला

प्रियः – प्यारा । किरः – बिखरने वाला

प्रज्ञः – पण्डित । सुग्लः – जल्दी घबड़ाने वाला

गृहम् - घर । कुम्भकार: - कुम्हार
गोद: - गौ देनेंवाला । धनद: - धन देने वाला
कम्बलद: - कम्बलदेने वाला । गो सन्दाय:—गो देने वाला,
मूलविभूज:—जड़ को उखाड़ने वाला (रथ) ।
महीध्र:, कुध्र: —पर्वत
कुरुचर: - कुरुदेश में घूमने वाला
भिक्षाचर: - भिक्षुक । सेनाचर: - सैनिक
आदायचर: - लेकर घूमने वाला । यशस्करी - यश देने वाली विद्या
श्राद्धकर: - श्राद्ध करने वाला । वचनचर: - आज्ञाकारी
जनमेजय: - जनमेजय (इस नामका एक राजा)
प्रियंवद: - मीठा बोलने वाला । वशंवद: - आज्ञाकारी
पण्डितम्मन्य:, पण्डितमानी - अपने को पण्डित मानने वाला
सुशर्मा -अच्छा मारने वाला । प्रातरित्वा-प्रात:काल जाने वाला
विजावा - जनमने वाला । अवावा-दूर करने वाली (ब्राह्मणी)
रोट्, रेट् - हिंसक । सुगण-गणित का अच्छा ज्ञाता
उखास्रत् - बटुए से गिरा हुआ । पर्णध्वत्-पत्ते से गिरा हुआ
वाहभ्रट् - घोड़े पर से गिरा हुआ
उष्णभोजी - गर्म खाने वाला
दर्शनीयमानी - अपने को सुन्दर मानने वाला
कालिम्मन्या - अपने को सुन्दर मानने वाला
सोमयाजी - सोम यज्ञ करने वाला
अग्निष्टोमयाजी - अग्निष्टोम यज्ञ करने वाला
पारदृश्वा - पारदर्शी, पारङ्गत
राजयुध्वा - राजा को युद्ध कराने वाला
राजकृत्वा - राजा बनानेवाला
सहयुध्वा - साथ युद्ध करने वाला
सहकृत्वा - साथ करने वाला
सरसिजम्, सरोजम् - कमल । प्रजा - सन्तान या प्रजाजन

स्नातम् – स्नान किया। स्तुतः – स्तुति किया गया, प्रशंसित
कृतवान् – किया। शीर्णः – बिखरा गया
भिन्नः – भिन्न। छिन्नः – काटा गया
द्राणः – टेढ़ा-मेढ़ा किया गया। ग्लानः – उदास
लूनः – काटा गया। जीनः—वृद्ध।
भुग्नः—टेढ़ा। उच्छूनः – फूला हुआ
शुष्कः – सूखा हुआ। पक्वः – पकाया गया
क्षामः – कृश। भावितः—पैदा किया गया
भावितवान् – पैदा किया। दृढः – दृढ़
हितम् – रखा हुआ। दत्तः – दिया।
चक्राणः – करने वाला। जगन्वान्—जानेवाला
पचन्तं पचमानम्—पकते हुए को
सन् द्विजः—श्रेष्ठ ब्राह्मण। विद्वान् – विद्वान्
करिष्यन्तं—करनेवाले को। कर्त्ता – करने वाला
जल्पाकः—अधिक बोलने वाला
भिक्षाकः—भिक्षु। कुट्टाकः – कूटने वाला
लुण्टाकः—लूटने वाला (डाकू), वराकः—बेचारा
वराकी—बेचारी। चिकीर्षुः – करने की इच्छा वाला
आशंसुः—आशा करने वाला। भिक्षुः – संन्यासी
विभ्राट्—अधिक शोभने वाला। भाः – कान्ति
धूः—धुरी। विद्युत् – बिजली। ऊर्क्—बल या तेज
पूः—पुरी। जूः—ज्वरी रोगी।
ग्रावस्तुत्—पत्थर की स्तुति करने वाला
प्राट्—प्रश्नकर्त्ता। आयतस्तूः – आयात की स्तुति करनेवाला
कटप्रूः—चटाई बनाने वाला
श्रीः—लक्ष्मी। दात्रम् – हंसिया
नेत्रम्—नेता, रस्सी, नेत्र। शस्त्रम् – आयुध
योत्र-योक्त्रम्—जोता (जोत)। स्तोत्रम् – स्तुति का साधन

तोत्त्रम्—चाबुक। सेत्रम्—बाँधने की रस्सी
सेक्त्रम्—सेचन पात्र। मेढ्रम् – लिङ्ग
पत्त्रम्—वाहन, पत्ता। दंष्ट्रा – दांत
नध्री—चर्मरज्जु, हरनाधा। अरित्रम् – नौका चलाने का दण्ड
लवित्रम्—काटने का साधन।
धवित्रम्—मृगचर्म निर्मित पंखा
सवित्रम्—प्रसवसाधन, यन्त्रविशेष
खनित्रम्—खननसाधन (खन्ता)
सहित्रम्—सहन करने का साधन
चरित्रम्—चरित्र। पवित्रम् – पवित्र।

इति पूर्वकृदन्तम्

उणादयः

कारुः—शिल्पी, कारीगर
वायुः—वायु। पीयुः – गुदा
जायुः—औषध। मायुः – पित्त
स्वादुः—स्वादु। आशु – शीघ्र

इत्युणादयः

उत्तरकृदन्तम्

द्रष्टुम्—देखने के लिए
दर्शकः—देखने वाला
भोक्तुम्—खाने के लिए। पाकः – पाक
रागः—रङ्ग। रङ्गः – रङ्ग भूमि
निकायः—संघात। कायः – शरीर
गोमयनिकायः—गोबर की राशि
जयः—विजय। चयः – समूह
करः—करना या हाथ। गरः – निगलना, जहर

यवः—मिलना, जौ। लवः—काटना
स्तवः—स्तुति। पवः – पवित्रता
प्रस्थः—सेरभर। विघ्नः – विघ्न
पक्त्रिमम्—पका हुआ। उप्त्रिमम् – बोया हुआ
वेपथुः—कम्पन। यज्ञः – यज्ञ
याच्ञा—मांगना। यत्नः – प्रयत्न, उपाय
विश्नः—चलना या बोलना। प्रश्नः – प्रश्न, सवाल
रक्षणः—रक्षा। स्वप्नः—स्वप्न
प्रधिः—रथ की नेमि। कीर्णिः—बिखेरना
उपधिः—ढोंग, दम्भ। कृतिः–क्रिया। स्तुतिः प्रार्थना
लूनिः—काटना। धूनिः – काँपना
पूनिः—पवित्र करना। सम्पत् – सम्पत्ति
विपत्—विपत्ति। आपत् – आपत्ति
सम्पत्तिः – सम्पत्ति। विपत्तिः—विपत्ति
जूः– ज्वरी, रोगी। तूः – शीघ्रकारी, फुर्तीला
स्रूः – चलनेवाला। ऊः – रक्षक
मूः—बाँधनेवाला। इच्छा–चाहना। चिकीर्षा–करने की इच्छा
पुत्रकाम्या—अपने लिये पुत्र की इच्छा
ईहा—चेष्टा, उद्यम। कारणा – यातना
हारणा—हराना। हसितम् – हँसना
दन्तच्छदः—ओष्ठ। आकरः—खान
अवतारः—उतरना, देहधारण, उतार। रामः—श्रीराम
अवस्तारः—पर्दा। अपामार्गः – चिचिरा।
दुष्करः—कठिन। ईषत्करः–सुकरः=सरल
ईषत्पानः—सरलता से पेय।
दुष्पानः—दुःख से पेय। सुपानः – सुख से पेय
अलं दत्वा—मत दो। पीत्वा खलु – मत पीओ
मा कार्षीत्—मत करो। अलङ्कारः—भूषण

मुक्त्वा—छोड़कर। भुक्त्वा - खाकर
पीत्वा -पीकर। शयित्वा - सोकर
कृत्वा -करके। लिखित्वा - लिखकर
द्युतित्वा -द्योतित्वा - प्रकाशित होकर
वर्तित्वा - होकर। सेवित्वा -सेवाकर
एषित्वा-इच्छा करके। द्युत्वा-खेलकर। भुक्त्वा-खाकर
शमित्वा-शान्त्वा=शान्त होकर। देवित्वा-खेलकर
हित्वा—धारण कर। प्रकृत्य - प्रारम्भकर। हित्वा=छोड़कर
हात्वा—जाकर। स्मारं स्मारम् - बार-बार स्मरण कर
स्मृत्वा-स्मृत्वा—बार-बार स्मरण कर
पायंपायम्—पी-पी कर। भोजंभोजम् - खा-खा कर
श्रावं श्रावम्—सुन-सुन कर
अन्यथाकारम्—दूसरी तरह। एवङ्कारम् - इस प्रकार
कथङ्कारम्—किस प्रकार। इत्थङ्कारम् - इस प्रकार
शिरोऽन्यथाकृत्वा भुङ्क्ते—शिरको टेढ़ा करके भोजन करता है

इत्युत्तरकृदन्तम

कारकः

उच्चैः—ऊँचा। नीचैः - नीचा
कृष्णः—वासुदेव। श्रीः - लक्ष्मी। ज्ञानम् - ज्ञान
तटः, तटी, तटम्—तट, किनारा।
द्रोणोव्रीहिः—द्रोण (दस सेर) धान्य
एकः—एक। द्वौ - दो। बहवः - बहुत से
हे राम— हेराम। हरिं भजति - हरि को भजता है
हरिः सेव्यते—हरिकी सेवा करता है
लक्ष्म्या सेवितः—लक्ष्मी से सेवित
गां दोग्धि पयः—गौ से दूध दूहता है
बलिं याचते वसुधाम्—बलि राजा से पृथ्वी मांगता है

तण्डुलानोदनं पचति—चावलों से भात बनाता है
गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों को सौ रुपया दण्ड करता है
व्रजमवरुणद्धि गाम्—व्रज में गौ को रोकता है
माणवकं पन्थानं पृच्छति—लड़के से रास्ता पूछता है
वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष से फल इकट्ठा करता है
माणवकं धर्मं ब्रूते-शास्ति वा—बालक को धर्मोपदेश देता है
शतं जयति देवदत्तम् - देवदत्त से सौ (रुपया) जीतता है
सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति - अमृत के लिए क्षीरसागर को मथता है
देवदत्तं शतं मुष्णाति - देवदत्त से सौ रुपया चुराता है
ग्राममजां नयति हरति कर्षति वा-गांव में बकरी को ले जाता है
बलिं भिक्षते वसुधाम् - राजा बलि से पृथ्वी मांगता है
माणवकं धर्मं भाषते—बालक को धर्मोपदेश करता है
रामेण बाणेन हतो वाली—राम ने बाण से बाली को मारा
विप्राय गां ददाति—ब्राह्मण को गौ देता है
हरये नमः—हरि को नमस्कार है
प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजाओं को कल्याण हो
अग्नये स्वाहा—अग्नि के लिए (हवि)
पितृभ्यः स्वधा—पितरों के लिए (कव्य)
दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः—दैत्यों के प्रति हरि पर्याप्त है
ग्रामादायाति—ग्राम से आता है
धावतोऽश्वात्पतति—दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है
राज्ञः पुरुषः—राजा का सिपाही
सतां गतम्—सत्पुरुषों की चाल
सर्पिषो जानीते—घी के उपाय से प्रवृत्त होता है
मातुः स्मरति—माता को स्मरण करता है
एधो दकस्योपस्कुरुते-लकड़ी जल में अपने गुणों को स्थापित करती है
भजे शम्भोश्चरणयोः—शम्भु के चरणों को भजता हूं
कटे आस्ते—चटाई पर बैठा है

स्थाल्यां पचति—बटुए में पकाता है
मोक्षे इच्छास्ति—मोक्षविषयक इच्छा है
सर्वस्मिन्नात्मास्ति—सब में आत्मा है
वनस्य दूरे अन्तिके वा—वन के दूर या समीप

इति कारकः

अव्ययीभावसमासः

भूतपूर्वः—पहले हो चुका
वागर्थाविव—शब्द और अर्थ के समान
अधिहरि—हरि में। अधिगोपम्—गोप में
उपकृष्णम्—कृष्ण के पास। सुमद्रम्—मद्र देश की समृद्धि
दुर्यवनम्—यवनों (यूनानियों) की दुर्गति
निर्मक्षिकम्—मक्षिकाओं का अभाव
अतिहिमम्—हिम का नाश
अतिनिद्रम्—अब सोना उचित नहीं
इति हरि—हरि शब्द का प्रकाश
अनुविष्णु—विष्णु के पीछे
अनुरूपम्—स्वरूप के योग्य
प्रत्यर्थम्—अर्थ-अर्थ के प्रति। यथाशक्ति-शक्त्यनुसार
सहरि—हरि का सादृश्य। अनुज्येष्ठम्-ज्येष्ठ के क्रम से
सचक्रम्—चक्र के साथ। ससखि-मित्र के सदृश
सक्षत्रम्—क्षत्रियों की बढ़ती
सतृणमत्ति—तृण सहित खाता है
साग्नि—अग्नि ग्रन्थ पर्यन्त पढ़ता है
पञ्चगङ्गम्—पाँच गङ्गाओं का समाहार
द्वियमुनम्—दो यमुनाओं का समाहार
उपशरदम्—शरद ऋतु के समीप
प्रतिविपाशम्—विपाश (व्यास) नदी पर

उपजरसम्—बुढ़ापे के समीप
उपराजम्—राजा के समीप
अध्यात्मम्—आत्मा में
उपचर्मम्—चर्म के समीप
उपसमिधम्—समिधा के समीप

इत्यव्ययीभावसमासः।

*

तत्पुरुषः

कृष्णश्रितः—कृष्ण के आश्रित
शङ्कुलाखण्डः—सरौता से किया हुआ टुकड़ा
धान्यार्थः—धान्य से मतलब
अक्षणाकाणः—एक आँख से काना
हरित्रातः—हरि से रक्षित
नखभिन्नः—नखों से फाड़ा गया
यूपदारु—यज्ञस्तम्भ के लिए लकड़ी
रन्धनाय स्थाली—रांधने के लिए बटलोही
द्विजार्थः सूपः—ब्राह्मण के लिए दाल
द्विजार्था यवागूः—ब्राह्मण के लिए लप्सी (हलुआ)
द्विजार्थं पयः—ब्राह्मण के लिए दूध
भूतबलिः—भूतों के लिए बलि
गोहितम्—गौ के लिए हित
गोसुखम्—गौवों के लिए सुखप्रद
गोरक्षितम्—गौवों के लिए रखा हुआ
चोरभयम्—चोर से भय
स्तोकान्मुक्तः—थोड़े से छूटा
अन्तिकादागतः—समीप से आया
अभ्यासादागतः—समीप में आया
दूरादागतः—दूर से आया

कृच्छ्रादागतः—कष्ट से आया
राजपुरुषः—राजा का पुरुष
पूर्वकायः—शरीर का अग्रभाग
अपरकायः—शरीर का पिछला भाग
पूर्वश्छात्राणाम—छात्रों में पहला
अर्धपिप्पली –:पिप्पली का आधा भाग
अक्षशौण्डः—जूआ खेलने में लम्पट
पूर्वेषुकामशमी—पूर्व इषुकामशमी देश
सप्तर्षयः—सात ऋषि
उत्तरा वृक्षाः—उत्तर वृक्ष
पञ्च ब्राह्मणाः—पाँच ब्राह्मण
पौर्वशालः—पहली शाला (हवेली) में होने वाला
पञ्चगवधनः–पाँच गौ जिसका धन है वह पुरुष
पञ्चगवम् –पाँच गौ
नीलोत्पलम्—नील कमल। कृष्णसर्पः-सर्प की एक जाति
रामो जामदग्न्यः—जगदग्नि के पुत्र परशुराम जी
घनश्यामः—मेघ के समान श्याम
शाकपार्थिवः—शाकप्रिय राजा
देवब्राह्मणः—देव पूजक ब्राह्मण, पूजारी
अब्राह्मणः—ब्राह्मणेतर।
अनश्वः—घोड़ा नहीं, गदहा। नैकधा-अनेक प्रकार से
कुपुरुषः—निन्दित पुरुष
ऊरीकृत्य—स्वीकार करके
शुक्लीकृत्य—सफेद करके
पटपटाकृत्य—पट-पट ऐसा शब्द करके
सुपुरुषः—सज्जन पुरुष
प्राचार्यः—प्रधान आचार्य
अतिमालः—माला को अतिक्रमण करनेवाला
अवकोकिलः—कोकिलाओं से कूजित

पर्यध्ययनः—पढ़ने से उदास
निष्कौशाम्बिः—कौशाम्बि से निकला हुआ
कुम्भकारः—कुम्हार। व्याघ्री – बाघिन
अश्वक्रीती—घोड़े से खरीदी हुयी
कच्छपी—कछुवी।
द्व्यङ्गुलम्—दो अंगुली भर
निरङ्गुलम्—अंगुलियों से निकला हुआ
अहोरात्रः—दिन-रात। सर्वरात्रः–सारी रात
संख्यातरात्रः—गिनी हुई रात्रियाँ
द्विरात्रम्—दो रातें। त्रिरात्रम्–तीन रातें
परमराजः—बड़ा राजा। महाराजः—महाराज
महाजातीयः—महान्। द्वादश–बारह
अष्टाविंशतिः—अठाइस
कुक्कुटमयूर्यौ—कुक्कुट (मुर्गा) और मयूरी (मोरनी)
पञ्चकपालः—पाँच खप्परों में संस्कृत बना हुआ चरु
प्राप्तजीविकः – आपन्नजीविकः – जिसको जीविका मिल गयी
है, वह व्यक्ति
अलंकुमारिः – कुमारी के लायक
अर्धर्चम्–ऋचा=मन्त्र का आधा भाग
मृदु पचति – मुलायम पकता है
प्रातः कमनीयम् – मनोहर प्रभात

इति तत्पुरुषः

बहुव्रीहिः

कण्ठेकालः – नीलकण्ठ (भगवान् शिव)
प्राप्तोदकः – जिसमें जल घुस गया है वह (गाँव)
ऊढरथः – रथ को जिसने वहन किया है (ऐसा बैल)
उपहृतपशुः – पशु जिसको भेंट किया गया है (ऐसा रुद्र-शिव)
उद्धृतौदना – भात जिससे निकाल लिया गया है (ऐसी बटुली)

पीताम्बरः – पीला वस्त्र वाला (हरि=विष्णु)
वीरपुरुषकः – वीर पुरुष वाला (गाँव)
प्रपर्णः – गिरा हुआ पत्ता । अपुत्रः – पुत्र रहित
चित्रगुः – चित्र विचित्र गौओं वाला
रूपवद्भार्यः – रूपवती पत्नी वाला
वामोरूभार्यः – जिसकी भार्या सुन्दर रूपवाली है
कल्याणीपञ्चमाः – पाँचवीं कल्याण कारिणी है जिनमें
स्त्रीप्रमाणः – स्त्री को प्रमाण मानने वाला
कल्याणीप्रियः – कल्याणकारिणी स्त्री जिसकी प्यारी है
दीर्घसक्थः – लम्बे ऊरु=जंघा वाला
जलजाक्षी – कमलनयनी
दीर्घसक्थि—लम्बा धुर वाला शकट=गाड़ी
स्थूलाक्षा – मोटी आँखों (पोरों) वाली लाठी
द्विमूर्धः – दो सिर वाला
त्रिमूर्धः – तीन सिर वाला । अन्तर्लोमः-जिसके भीतर बाल हों
बहिर्लोमः – जिसके बाहर बाल हों – ऐसा कम्बल
व्याघ्रपात्—व्याघ्र की तरह पैर वाला
हस्तिपादः – हाथी के तरह पैर वाला
कुसूलपादः – कोठी की तरह पैर वाला
द्विपात् – दो पैर वाला । सुपात् – सुन्दर पैरवाला
उत्काकुत् – जिसका तालु ऊपर का उठा हो
विकाकुत् – जिसका तालु विकृत हो ।
पूर्णकाकुदः – जिसका तालु पूरा हो ।
सुहृत्—मित्र । दुर्हृत्-शत्रु
व्यूढोरस्कः – गठीले वक्षःस्थल वाला
प्रियसर्पिष्कः – घृत का प्रिय-प्रेमी । युक्तयोगः—योगी
महायशस्कः – महान् यशस्वी

इति बहुव्रीहिः

द्वन्द्वः

ईश्वरं गुरुं च भजस्व – ईश्वर और गुरु को भजो
धवखदिरौ छिन्धि – धव और खदिर=खैर को काटो
संज्ञापरिभाषम्— संज्ञा और परिभाषा
राजदन्तः – प्रधान दाँत। अर्थधर्मौ – अर्थ और धर्म
हरिहरौ— विष्णु और शिव
ईशकृष्णौ – महादेव और कृष्ण। पितरौ – माता और पिता
शिवकेशवौ – शंकर और कृष्ण। पाणिपादम्–हाथ और पैर
मार्दङ्गिकवैणविकम् – मृदङ्ग बजाने वालों और वंशी बजाने वालों का समूह
रथिकाश्वारोहम् – रथिक और घुड़सवारों का समूह
वाक्त्वचम् – वाणी और त्वचा–चमड़ा
त्वक्स्रजम् – त्वचा और माला
शमीदृषदम् – शमी और पत्थर
वाक्त्विषम् – वाणी और कान्ति
छत्रोपानहम् – छाता और जूता
प्रावृट्शरदौ –वर्षा और शरद्

इति द्वन्द्वः।

समासान्तः

अर्धर्चः – ऋचा का आधा। विष्णुपुरम् – विष्णु का पुर
विपलापम् – निर्मल जल वाला (सरोवर)
राजधुरा – राज्य का भार। अक्षधूः – अक्ष में लगी धुरी
दृढधूः – दृढ़ धुरी
सखिपथः – मित्र का मार्ग
रम्यपथः – रमणीय मार्ग वाला (देश)
गवाक्षः – झरोखा, खिड़की
प्राध्वः – रास्ते को प्राप्त हुआ (रथ)

सुराजा – शोभन राजा
अतिराजा – सुन्दर श्रेष्ठ राजा

इति समासान्तः ।

तद्धिताः—तत्रादौ साधारणप्रत्ययः

आश्वपतम् – अश्वपति की सन्तानादि
गाणपतम् – गणपति की सन्तानादि
दैत्यः – दिति के पुत्र। आदित्यः – अदिति के पुत्र
आदित्यः – आदित्य के पुत्र।
प्राजापत्यः – प्रजापति का पुत्र आदि
दैव्यम्, दैवम्—देवता का पुत्र, आदि
बाह्यः, बाहीकः – बाहर होने वाला
गव्यम्—गौ का अपत्य आदि
औत्सः—उत्स का अपत्यादि
स्त्रैणः—स्त्री का अपत्यादि
पौंस्नः—पुरुष का अपत्य आदि
औपगवः– उपगु का पुत्र
गार्ग्यः – गर्ग का गोत्रापत्य
वात्स्यः – वत्स का गोत्रापत्य । गर्गाः – गर्ग गोत्र वाले
वत्साः – वत्स गोत्र वाले । गार्ग्यायणः – गर्ग का युवापत्य
दाक्षायणः - दक्ष का युवापत्य=जवान बेटा

इति तद्धिताः ।

अपत्याधिकारः

दाक्षिः – दक्ष का पुत्र । बाहविः – बाहु का पुत्र ।
औडुलोमिः – उडुलोमा का अपत्य=बेटा
वैदः – बिद का गोत्रापत्य । पौत्रः–पुत्र का अपत्य (पोता)
शैवः – शिव का पुत्र। गाङ्गः – गङ्गा का पुत्र (भीष्म)

वासिष्ठः - वसिष्ठ का पुत्र
वैश्वामित्रः - विश्वामित्र का पुत्र
श्वाफलकः - श्वफल्क का पुत्र (अक्रूर)
वासुदेवः - वसुदेव का पुत्र (कृष्ण)
नाकुलः - नकुल का पुत्र
साहदेवः - सहदेव का पुत्र
द्वैमातुरः - दो माताओं के पुत्र (गणेश)
षाण्मातुर - छः माताओं के पुत्र (कार्तिकेय)
सांमातुरः, भाद्रमातुरः - सती का पुत्र
वैनतेयः - विनता का पुत्र (गरुड़)
कानीनः - कुमारी कन्या का पुत्र (कर्ण या व्यास)
राजन्यः - क्षत्रिय । श्वशुर्यः -श्वसुर का पुत्र
राजनः - राजा का पुत्र । क्षत्रियः - क्षत्रिय जाति
क्षात्रिः - क्षत्रिय का जात्यन्य पुत्र । रैवतिकः - रेवती का पुत्र
पाञ्चालः—पञ्चाल देश के राजा का पुत्र
पौरवः - पुरु का पुत्र । पाण्ड्यः-पाण्ड्य देशीय राजा का पुत्र
कौरव्यः - कुरु का पुत्र । नैषध्यः - निषध राजा का पुत्र
इक्ष्वाकवः - इक्ष्वाकुगोत्रोत्पन्न
पाञ्चालः—पञ्चाल देश का राजा
कम्बोजः—कम्बोज देश का राजा
चोलः—चोल देश का राजा
शकः—शक देश का राजा
केरलः—केरल (मलयालम्) देश का राजा
यवनः—यवन (यूनान) देश का राजा

इति अपत्याधिकारः।

•

रक्ताद्यर्थकाः

काषायम्—गेरुआ से रंगा हुआ वस्त्र

पौषम्—पुष्यनक्षत्र वाला दिन
अद्यपुष्यः—आज पुष्य नक्षत्र है
वासिष्ठम्—वसिष्ठ से दृष्ट साम=सामवेद
वामदेव्यम्—वामदेव से दृष्ट साम
वास्त्रः—वस्त्र से ढँका हुआ (रथ)
शरावः—सकोरे में निकाला हुआ
भ्राष्ट्रः—भुना हुआ
ऐन्द्रम्—इन्द्र देवता सम्बन्धी
पाशुपतम्—पशुपति देवता सम्बन्धी
बार्हस्पत्यम्—बृहस्पति देवता सम्बन्धी
शुक्रियम्—शुक्रदेवता सम्बन्धी
वायव्यम्—वायु देवता सम्बन्धी
ऋतव्यम्—ऋतुदेवता सम्बन्धी
पित्र्यम्—पितृदेवता सम्बन्धी
उषस्यम्—उषा देवता सम्बन्धी
पितृव्यः – चाचा, काका
मातुलः – मामा
मातामहः – नाना
पितामहः – दादा
काकम् – कार्कोका समूह
भैक्षम् – भिक्षाओं का समूह
गार्भिणम् – गर्भिणियों का समूह
यौवनम् – युवतियों का समूह
ग्रामता – ग्रामोंका समूह
जनता – जनों का समूह
बन्धुता – बन्धुओं का समूह
गजता – हाथियों का समूह
सहायता – सहायकों का समूह

अहीनः – कई दिनों में होने वाला
साक्तुकम् – सत्तुओं का समूह
हास्तिकम् – हाथियों का समूह
धैनुकम् – गायों का समूह
वैयाकरणः – व्याकरण पढ़ने वाला या व्याकरण का जानकार
क्रमकः – क्रमपाठी
पदकः – पदपाठी
शिक्षकः – शिक्षापाठी
मीमांसकः – मीमांसा पढ़ने वाला

चातुरर्थिकाः

औदुम्बरः – गूलरवाला देश
कौशाम्बी – कुशाम्ब की नगरी (प्रयाग)
शैवः – शिवियों का निवास
वैदिशम् – विदिशा नदी के समीप का नगर (भिलसा)
पञ्चालाः – पञ्चाल का देश (फर्रुखाबाद)
कुरवः – कुरुओं का निवास देश (कुरुक्षेत्र)
कलिङ्गाः – कलिङ्गों का निवास देश
वरणाः – वरण देश के निकट होने वाला
कुमुद्वान् – कुमुद जिस देश में हों
नड्वान् – डंठल जिस देशमें हों
बेतस्वान् – वेंत जिस देश में अधिक हों
नड्वलः – नडप्राय देश
शाद्वलः – घास वाला देश
शिखावलः – शिखावाला (मयूर) देश (भारत)
चाक्षुषम् – चक्षुर्ग्राह्य (रूप)

शैषिकाः

श्रावणः – श्रोत्रग्राह्य (शब्द)
औपनिषदः – उपनिषदों में कहा गया (आत्मा)
दार्षदाः – पत्थर पर पीसे हुए (सत्तू)
चातुरम् – ४ थैलोंके ले जाने योग्य (गाड़ी)
चातुर्दशम् – चतुर्दशीकों दिखानेवाला
राष्ट्रियः – राष्ट्र में होने वाला
अवारपारीणः, अवारीणः, पारीणः
पारावारीणः – आर-पार जानेवाला, पारंगत
ग्राम्यः, ग्रामीणः – ग्राम में होने वाला
नादेयम् – नदी में होने वाला
माहेयम् – मही में होने वाला
वाराणसेयम् – काशी में होने वाला
दाक्षिणात्यः – दक्षिण में होने वाला
पाश्चात्यः – पश्चिमी, विदेशी--अंगरेजादि
पौरस्त्यः – पूर्व में होने वाला
दिव्यम् – बहुत ही सुन्दर
प्राच्यम् – पूर्व में होने वाला
अपाच्यम्—पूर्व में होने वाला
उदीच्यम—उत्तर में होने वाला
प्रतीच्यम् – पश्चिम में होने वाला
अमात्यः—मन्त्री, साथी
इहत्यः – यहाँ का । क्वत्यः – कहाँ का
ततस्त्यः – तत्रत्यः – वहाँ का । नित्यः-नित्य
शालीयः—घर में उत्पन्न । मालीयः – माला में उत्पन्न
तदीयः – उसका । देवदत्तीयः, दैवदत्तः – देवदत्त का
गहीयः – गह देश में पैदा हुआ
युष्मदीयः – आपका । अस्मदीयः – हमारा
यौष्माकीणः – आपका । आस्माकीनः – हमारा

यौष्माकः – आपका । आस्माकः – हमारा
तावकीनः – तावकः—तेरा
मामकीनः – मामकः—मेरा
त्वदीयः – तेरा । मदीयः—मेरा
त्वत्पुत्रः – तेरा पुत्र । मत्पुत्रः – मेरा पुत्र
मध्यमः – मध्य में होने वाला
कालिकम् – समय पर होने वाला
मासिकम् – मास में होने वाला
सांवत्सरिकम् – वर्ष में होने वाला (श्राद्ध)
सायम्प्रातिकः – सायं-प्रातः होने वाला
पौनःपुनिकः – बार बार होने वाला
प्रावृषेण्यः – वर्षा ऋतु में होने वाला
सायन्तनम् – सायं होने वाला । चिरन्तनम् – पुराना
प्रह्णेतनम् – पूर्वाह्ण में होने वाला
प्रगेतनम् – प्रातःकालिक । दोषातनम् – रात्रि में होने वाला
स्रौघ्नः – स्रुघ्न (आगरा) देश में होने वाला
औत्सः – झरने में हुआ । राष्ट्रियः – राज्य में हुआ
प्रावृषिकः – वर्षा काल में होने वाला
स्रौघ्नः – स्रुघ्न में होने वाला । कौशेयम् – रेशमी वस्त्र
दिश्यम् – दिशा में होने वाला । वर्ग्यम्—वर्ग में होने वाला
दन्त्यम् – दांतों में होने वाला (वर्ण)
कण्ठ्यम् – कण्ठ में होने वाला (वर्ण)
आध्यात्मिकम् – आत्मा में होने वाला
आधिदैविकम् – देवों में होने वाला
आधिभौतिकम् – प्राणियों में होने वाला
ऐहलौकिकम् – इस लोक में होने वाला
पारलौकिकम् – परलोक में होने वाला ।
जिह्वामूलीयम् – जिह्वा के मूल में होने वाला

अङ्गुलीयम् – अंगूठी। कवर्गीयम् – कवर्ग में होने वाला
स्रौघ्नः – स्रुघ्न देश से आया हुआ
शौल्कशालिकः – चुंगी घर से प्राप्त
औपाध्यायकः – उपाध्याय से प्राप्त
पैतामहकः – पितामह से प्राप्त
समरूप्यम्-सामीयम् – सम से प्राप्त
विषमीयम् – विषम से प्राप्त
देवदत्तरूप्यम् – देवदत्त से प्राप्त। सममयम् – सम से प्राप्त
देवदत्तमयम् – देवदत्त से प्राप्त
हैमवती – हिमालय से आगत (गंगा)
शारीरकीयः – शरीर व आत्मा संबन्धि वर्णन करने वाले ग्रन्थ
स्रौघ्नः – स्रुघ्न देशवासी
पाणिनीयम् – पाणिनि से प्रोक्त (व्याकरण)
औपगवम् – उपगूसम्बन्धी वस्तु

विकारार्थकाः

आश्मः – पत्थर का विकार। भास्मनः – भस्म का विकार
मार्तिकः – मिट्टी का विकार। मायूरः-मोर का अंग या विकार
मौर्वम् – मूर्वा (ओषधि) की डण्डी या भस्म
पैप्पलम् – पिप्पली का विकार
अश्ममयम्—पत्थर का अवयव या विकार
मौद्गः—मूंग का विकार=बना हुआ
आम्रमयम्—आम के अवयव का विकार
कार्पासम् – कपास का विकार। गोमयम्-गोबर
शरमयम् – शरविकार या अवयव।
गव्यम्-गौ का विकार, दूध आदि

इति रक्ताद्यर्थकाः।

ठगाधिकारः

पयस्यम् – दूध का विकार=मक्खन आदि।
आक्षिकः – पासों से खेलने वाला
दाधिकम् – दही से संस्कृत
मारीचिकम् – मरीचों से संस्कृत
औडुपिकः – जहाज से पार जानेवाला
हास्तिकः – हाथी का सवार
दाधिकः – दही से खाने वाला
दाधिकम् – द ी से मिला हुआ
बादरिकः – बैर चुनने वाला
सामाजिकः – समाज का रक्षक
शाब्दिकः – शब्द करने वाला
दार्दुरिकः – कुम्हार। धार्मिकः – धर्मात्मा
अधार्मिकः – अधर्मी।
मार्दङ्गिकः – मृदङ्ग बजाने वाला
आसिकः – तलवार रखने वाला
धानुष्कः– धनुर्धारी। आपूपिकः – पुड़ी खाने वाला
नैकटिकः – ग्राम के निकट रहने वाला (भिक्षु)

इति ठगाधिकारः।

प्राग्घितीयाः

रथ्यः – रथ का बहन करने वाला (घोड़ा)
युग्यः – जुआ को उठाने वाला (बैल)
प्रासङ्ग्यः – काष्ठ विशेष में जोता बैल
धुर्यः, धौरेयः – धुरी को उठाने वाला
नाव्यम्—नौका से तरने योग्य (जल)
वयस्यः—समान अवस्था वाला (मित्र)
धर्म्यम् धर्म से प्राप्त करने योग्य

विष्यः - विष से मारने योग्य
मूल्यम् - मूल्य । सीत्यम् - जोता हुआ खेत
तुल्यम् - तोला हुआ । अग्र्यः - अग्रणी
सामन्यः - सामवेद में निपुण
कर्मण्यः - कर्म में प्रवीण-कर्मठ
शरण्य—शरणागत रक्षक
सभ्यः - सभासद

इति प्राग्घितीयाः

छयतोरधिकारः

शाङ्कव्यम् - खूटा बनाने की लकड़ी
गव्यम् - गौ के लिये । नभ्यम् - नाभिके छिद्र का (अञ्जन)
वत्सीयः - बछड़ों का हितैषी
दन्त्यम् - दाँत के हितकारी (मञ्जन)
कण्ठ्यम् - माला, हार । नस्यम् - सूंघनी
आत्मनीनम् - अपने अनुकूल
विश्वजनीनम् - सबके अनुकूल
मातृभोगीणः - माता के अनुकूल

इति छयतोरधिकारः

ठञधिकारः

साप्ततिकम् - सत्तर से खरीदा गया
प्रास्थिकम् - सेर (धान्य) से खरीदा हुआ
सार्वभौमः - चक्रवर्ती । पार्थिवः-राजा
श्वैतच्छत्रिकः - सफेद छत्रधारी
दण्ड्यः - दण्डनीय । अर्घ्यः - पूजनीय
वध्यः - वध के योग्य । आह्निकम् - एक दिन में तैयार हुआ

इति ठञधिकारः

भावनाद्यर्थकाः

ब्राह्मणवत् – ब्राह्मण के समान
पुत्रेण तुल्यः स्थूलः—पुत्र के समान मोटा
मथुरावत्—मथुरा के समान
चैत्रवत्—चैत की तरह। गोत्वम्-गोत्वजाति
स्त्रैणम्—स्त्रीत्व जाति। पौंस्नम्-पुरुषार्थ
प्रथिमा—पार्थवम् = मोटापन
मार्दवम्—मृदुता
शौक्ल्यम्—शुक्लता
दार्ढ्यम् – द्रढिमा = दृढ़ता
जाड्यम् – जडता = मूर्खता
ब्राह्मण्यम्—ब्राह्मणता। सख्यम् – मित्रता
कापेयम्—कपिता = चाञ्चल्य
ज्ञातेयम्—ज्ञातिकर्म
सेनापत्यम्—सेनापति का काम। पौरोहित्यम्-पुरोहिताई

इति भवनाद्यर्थकाः

भावकर्माद्यर्थकः

मौद्गीनम् – मूंग का खेत
व्रैहेयम् – धान का खेत। सालेयम् – साठी धान का खेत
हैयङ्गवीनम् – मक्खन
तारकितम् – ताराओं से शोभित (गगन)
पण्डितः – बुद्धिमान्। उरुद्वयसम्-ऊरुदघ्नम्-ऊरुमात्रम्-जंघा तक
तावान् – उतना। एतावान – इतना
कियान् – कितना, इयान् – इतना
पञ्चतयम् – पाँचों का समूह
द्वयम्, द्वितयम् – दो। त्रयम् – त्रितयम् = तीन
उभयम् – दोनों। एकादशः – ग्याहरवाँ
पञ्चमः – पाँचवाँ। विंशः – बीसवाँ

षष्ठः – छठा । कतिथः, कतिपयथः – कौन-सा
चतुर्थः – चौथा । द्वितीयः – दूसरा
तृतीयः – तीसरा । श्रोत्रियः – वेदपाठी
पूर्वी – पहले करने वाला
कृतपूर्वी – जिसने पहले किया हो
इष्टी – जिसने यज्ञ किया हो
अधीती–पढ़ा हुआ

इति भावकर्माद्यर्थकः

मत्वर्थीयाः

गोमान्—गौ वाला । गरुत्मान् – गरुड
विदुष्मान्—विद्वानों से सुशोभित
शुक्लः—श्वेत (वस्त्र) । कृष्णः—काला (वस्त्र)
चूडालः—केश या मुकुट वाला
शिखावान्—चोटीवाला दीपक, मयूर
मेधावान्—बुद्धिमान् । लोमशः – लोमशः – बालों वाला
पामनः—खुजली रोग वाला
अङ्गना—रोमन अङ्गोंवाली (सुन्दरी)
लक्ष्मणः—लक्ष्मीवान्
पिच्छलः—पिच्छवान् = चिकना
दन्तुरः—ऊँचे दाँतों वाला
केशवः—उत्तम केशोंवाला
मणिवः—नागविशेष । अर्णवः = समुद्र
दण्डी—दण्डिकः = दण्ड वाला
व्रीहिः—व्रीहिकः = धान्यवाला
यशस्वी—कीर्तिमान्
मायावी—मायावाला । मेधावी–बुद्धिमान्
स्रग्वी—माला पहने हुए

वाग्मी—अच्छा बोलने वाला
अर्शसः—बवासीर का रोगी
अहंयुः—अहङ्कारी। शुभंयुः – शुभान्वित

इति मत्वर्थीयाः

प्राग्दिशीयाः

कुतः—कहाँ से। इतः – यहाँ से
अतः—इसलिए। अमुतः—उससे
यतः—जिससे। ततः – उससे
बहुतः—बहुतों से। परितः – चारों ओर से
अभितः—दोनों ओर से। कुत्र—कहाँ
यत्र—जहाँ। तत्र – वहाँ। बहुतः – बहुत जगह। इह – यहाँ
क्व—कहाँ। ततोभवान्, तत्रभवान् = पूज्य
दीर्घायुः—दीर्घ आयु वाला।
देवानांप्रियः—मूर्ख। आयुष्मान् – चिरंजीवी
सदा, सर्वदा—हमेशा। अन्यदा – और समय
कदा—कब। यदा-जब। तदा—तब
एतर्हि—अब। कर्हि—कब। यर्हि—जब
तर्हि—तब। तथा—उसी तरह
यथा—जिस तरह। इत्थम् – इस प्रकार
कथम्—किस प्रकार

इति प्राग्दिशीयाः

प्रागिवीयाः

आढ्यतमः – अत्यन्त धनी
लघुतमः लघिष्ठः – अत्यन्त छोटा
किन्तमाम् – अतिशय प्रश्न
प्राह्णतमाम् – अतिशय पूर्वाह्न

पचतितमाम् – अतिशय पाक
उच्चैस्तमाम् – बहुत ऊँचापन
उच्चैस्तमः – अति ऊँचा (वृक्ष)
लघुतरः, लघीयान् – बहुत छोटा
पटुतराः, पटीयांसः – बहुत पटु
श्रेष्ठः, श्रेयान् – अत्यन्त प्रशंसनीय
ज्येष्ठः, ज्यायान् – बड़ा, श्रेष्ठ
भूमा, भूयान् , भूयिष्ठः – बहुत
त्वचिष्ठः – अधिक कड़ी त्वचावाली
अश्वकः – कोई घोड़ा । स्रजीयान् – बहुत मालाधारी
विद्वत्कल्पः, विद्वद्देशीयः विद्वद्देश्यः – विद्वान् के समान
पचतिकल्पम् – असमाप्तपाक
बहुपटुः – थोड़ा चतुर । उच्चकैः – ऊँचा (अज्ञात)
नीचकैः – नीचा । सवकैः [अज्ञात] सबने
युष्मकाभिः – तुम सबने । युवकयोः – तुम दोनों का
त्वयका – तूने । अश्वकः – निन्दित घोड़ा
कतरः – कौन सा । यतरः – जौन सा
ततरः – तौन सा । कतमः-कौन सा
यतमः – जौन सा । ततमः – तौन सा
यकः – जो । सकः – वह ।

इति प्राग्वीयाः ।

स्वार्थिकाः

अश्वकः – खिलौने का घोड़ा । अश्वकः – घोड़ा
अन्नमयम् – अन्न जिसमें अधिक हो
अपूपमयम् – अधिक पूजा वाला । अन्नमयः – अन्न प्रचुर
अपूपमयम् – अपूपबहुल । प्राज्ञः – बुद्धिमान्
प्राज्ञी – बुद्धिमती । दैवतः – देवता
बान्धवः – भाई बन्धु । बहुशः – बहुधा

अल्पशः – थोड़ा-थोड़ा। आदितः – आदि से
मध्यतः – मध्य से। अन्ततः – अन्त से
पृष्ठतः – पीछे से। पार्श्वतः – बगल से
स्वरतः – स्वर से। वर्णतः – वर्णसे। अक्षर से।
कृष्णीकरोति – काला करता है
ब्रह्मी भवति – ब्रह्म होता है। गङ्गीस्यात् – गङ्गा होवे
दोषाभूतम् – रात की तरह [दिन]
दिवाभूता – दिन की तरह [प्रकाशमान् रात]
अग्निसाद्भवति – जलता है। दधिसिञ्चति – दही सींचता है
अग्निभवति – अग्नि हो रहा है।
पटपटाकरोति – पट-पट करता है
ईषत्करोति – थोड़ा करता है
श्रत्करोति – श्रत ऐसा शब्द करता है
खरटखरटाकरोति – खरट-खरट करता है
पटदिति करोति – पटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि करता है

इति स्वार्थिकाः तद्धिताः।

स्त्रीप्रत्ययाः

अजा – बकरी। एडका – भेड़ी।
अश्वा – घोड़ी। चटका – चिड़ी
मूषिका – चूही। बाला – लड़की [सोलह वर्ष तक की]
वत्सा – बच्ची। होडा – बाला। मन्दा – बालिका
विलाता – बाला [नवयौवना]
भवती – आप। भवन्ती – होती हुई
पचन्ती – पकाती हुयी। दिव्यन्ती – चमकती हुयी
कुरुचरी – कुरु देश में घूमनेवाली
नन्दी – नदी। सौपर्णेयी – सुपर्णी की कन्या
ऐन्द्री – पूर्व दिशा। औत्सी – उत्सगोत्र में उत्पन्न

ऊरुद्वयसी – ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री – ऊरु प्रमाण [जल] वाली
पञ्चतयी – पाँच प्रमाणवाली ।
आक्षिकी – पासा से खेलनेवाली ।
लावणिकी – लवण बेचनेवाली
यादृशी – जैसी । इत्वरी – घूमनेवाली
स्त्रैणी – स्त्री सम्बन्धी । पौंस्नी – पुरुष सम्बन्धी
शाक्तीकी – शक्ति शस्त्रवाली । याष्टीकी – यष्टीवाली
आढ्यङ्करणी – धनी बनानेवाली [औषधि]
तरुणी, तलुनी – युवती । गार्गी–गर्ग गोत्रोत्पन्ना
गार्ग्यायणी – गर्ग गोत्रोत्पन्ना । नर्तकी – नटी
गौरी – पार्वती । अनड्ही, अनड्वाही – गौ
कुमारी – कन्या । त्रिलोकी – तीनों लोक
त्रिफला – हरड़, बहेड़ा, आँवला ।
त्र्यनीका – सेना । एता, एनी – चितकबरी
रोहिता, रोहिणी – लाल रङ्ग की
मृद्वी, मृदुः – कोमलाङ्गी । बहुः, बह्वी – बहुत
शकटी, शकटिः – गाड़ी । गोपी गोपालिका – गोप की स्त्री
अश्वपालिका – घोड़े पालनेवाले की स्त्री
सर्विका – सब । कारिका – कारिका
सूर्या – सूर्य की स्त्री । इन्द्राणी – इन्द्र की स्त्री
वरुणानी—वरुण की स्त्री : भवानी – पार्वती
हिमानी—बर्फ का समूह
अरण्यानी—भारी जंगल । नौका—नाव
शका—समर्था । बहुपरिव्राजिका—अधिक सन्यासी जिसमें हो ऐसी नगरी [काशी]
सूरी—कुन्ती । यवानी—दुष्ट जौ
यवनानी—यूनानी लिपि । मातुलानी, मातुली—मामी
उपाध्यायानी, उपाध्यायी—गुरु की स्त्री

आचार्यानी – आचार्य की स्त्री
अर्याणी, आर्या—वैश्या स्त्री
क्षत्रियाणी, क्षत्रिया – क्षत्री स्त्री
वस्त्रक्रीती – वस्त्रों से खरीदी हुई
धनक्रीता – धन से खरीदी हुई
अतिकेशी, अतिकेशा – बहुत केशवाली
चन्द्रमुखी – चन्द्रमा की तरह मुख वाली
सुगुल्फा – सुन्दर गुल्फवाली
शिखा – चोटी
कल्याणक्रोडा – कल्याण उरःस्थलवाली घोड़ी
सुजघना – सुन्दर जघनवाली
शूर्पणखा – शूर्प के समान नखवाली
गौरमुखा – गौरवर्ण मुखवाली
ताम्रमुखी – लाल मुखवाली (कन्या)
तटी – किनारा। वृषली – शूद्री
कठी – कठगोत्रोत्पन्ना
बह्वृची – बहुत ऋचायें पढ़नेवाली
मुण्डा – मुण्डित स्त्री। बलाका – बकपंक्ति
क्षत्रिया – क्षत्रियाणी। हयी – घोड़ी
गवयी – गवय स्त्री (जङ्गली गाय)
मुकयी – खचरी। मत्सी–मछली
दाक्षी – दक्षगोत्रोत्पन्ना स्त्री
कुरुः – कुरु की अपत्य स्त्री
अध्वर्युः – ब्राह्मणी। पङ्गूः – पङ्गु स्त्री
श्वश्रूः– पति की माता (सास)
करभोरूः – गोल लम्बी ऊरुवाली
सहितोरूः – मिले हुए ऊरुवाली
वामोरूः – सुन्दर ऊरुवाली

शार्ङ्गरवी – शृङ्गरु की पुत्री
बैदा – बिदगोत्रोत्पन्ना स्त्री
ब्राह्मणी – ब्राह्मण जाति की स्त्री
नारी – स्त्री
युवतिः – युवा स्त्री

इति नवादामण्डलान्तर्गत 'द्विऔरा' ग्रामवासि
पं० गजेन्द्रपाण्डेय व्याकरणाचार्येण कृता
भाषार्थ-प्रयोगक्रमणिका समाप्ता ।

'ल्यप्' प्रत्ययान्तशब्दार्थाः

('ल्यप्' प्रत्यय मुख्यतः उन्हीं धातुओं में लगता है जिनके पहले उपसर्ग विद्यमान रहता है।)

आ + गम् = आगम्य – आकर
आ + नी = आनीय – लाकर
आ + दृ = आदृत्य – आदरकर
आ + धा = आधाय – स्थापितकर
आ + पृच्छ = आपृच्छय = पूछकर
अनु + कृ = अनुकृत्य – नकलकर
अनु + ग्रह = अनुगृह्य – दयाकर
अनु + ज्ञा = अनुज्ञाय-आदेशकर
अनु + नी = अनुनीय – अनुनयकर
अनु + भू = अनुभूय – अनुभवकर
अनु + शुच = अनुशोच्य – भली प्रकार सोचकर
अनु + स्था = अनुष्ठाय – अनुष्ठान कर
अनु + वद् – अनूद्य – अनुवादकर
अधि + इ = अधीत्य – पढ़कर
अप + कृ = अपकृत्य – अपकारकर
अधि + गम् = अधिगम्य – पाकर
अभि + अस = अभ्यस्य – रटकर
अव + तृ = अवतीर्य – उतरकर
अव + मन् = अवमत्य – अपमानकर
अव + गम् = अवगम्य – जानकर
उत् + पत् = उत्पत्य – पैदा होकर
उत् + प्लुत् = उत्प्लुत्य – कूदकर
उत् + डी – उड्डीय – उड़कर
उत् + तृ – उत्तीर्य – पारकर
परा + अच् = पलाय्य – भागकर

परा + जि = पराजित्य - हराकर
नि + धा = निधाय - रखकर
निर् + गम् = निर्गम्य - निकलकर
नि + पत् = निपत्य - गिरकर
प्र + दा = प्रदाय - देकर। प्र + भू = प्रभूय - समर्थ होकर
प्र + बुध् = प्रबुध्य - जागकर। प्र + आप् = प्राप्य - पाकर
प्र + विश् = प्रविश्य - प्रवेश कर
प्र + स्था = प्रस्थाय - प्रस्थानकर
प्र + हृ = प्रहृत्य - प्रहारकर
प्र + वच् = प्रोच्य - कहकर
प्र + नी = प्रणीय - बनाकर
प्र + नि + पत् = प्रणिपत्य - प्रणाम कर
सम् + धा = संधाय - जोड़कर
सम् + भू = संभूय - पैदा होकर
सम् + कृ = संस्कृत्य - सफाकर
सम् + स्मृ = संस्मृत्य - स्मरणकर
सम् + हृ = संहृत्य - नाशकर
सम् + क्षिप् = संक्षिप्य - संक्षिप्त कर
सम् + गम् = संगम्य - मिलकर
सम् + ग्रह् = संगृह्य - इकट्ठा कर
सम् + चि = संचित्य - संचय कर
सम् + दिह् = संदिह्य - सन्देहकर
वि + हा = विहाय - छोड़कर
वि + भज = विभज्य - बाँटकर
वि + लोक् = विलोक्य - देखकर
विनी + वि = नीय - विनयकर
वि + जी = विजित्य - जीतकर
वि + कृ = विकीर्य - बिखेरकर

वि + कृ = विकृत्य - बिगाड़कर
वि + क्री = विक्रीय - बेचकर
वि + ग्रह = विगृह्य - विग्रहकर
वि + चि = विचित्य - खोजकर
वि + चिंत् = विचिन्त्य - सोचकर
वि + ज्ञा = विज्ञाय - जानकर
वि + श्रम् = विश्रम्य - आरामकर
वि + स्मृ = विस्मृत्य - भूलकर
वि + हस् = विहस्य - हँसकर
वि + हृ = विहृत्य - विहारकर
प्रति + श्रु = प्रतिश्रुत्य - प्रतिज्ञाकर
प्रति + अभि + ज्ञा = प्रत्यभिज्ञाय - पहचानकर
प्रति + आ + गम् = प्रत्यागम्य - लौटकर

क्त–क्तवतु प्रत्ययान्ताः शब्दार्थाः

धातवः	क्त	क्तवतु	अर्थाः
लिख	लिखितः	लिखितवान्	लिखा
शकि	शंकितः	शंकितवान्	संदेह किया
ली	लीनः	लीनवान्	मिला
लू	लूनः	लूनवान्	काटा
पच्	पक्वः	पक्ववान्	पाक किया
पा	पीतः	पीतवान्	पीया
भज्	भग्नः	भग्नवान्	नष्ट हुआ
मुच्	मुक्तः	मुक्तवान्	छोड़ दिया
मृष्	मृष्टः	मृष्टवान्	सींचा
खिद	खिन्नः	खिन्नवान्	दुःखी हुआ
गद्	गदितः	गदितवान्	स्पष्ट कहा
गै	गीतः	गीतवान्	गाया
ग्लै	ग्लानः	ग्लानवान्	खिन्न हुआ
घ्रा	घ्राणः	घ्राणवान्	सूंघा
अद	जग्धः	जग्धवान्	खाया
जागृ	जागरितः	जागरितवान्	जागा
जॄ	जीर्णः	जीर्णवान्	पुराना हो गया
डी	डीनः	डीनवान्	आकाश मार्ग से गया
त्र	त्रातः	त्रातवान्	बचाया
दा	दत्तः	दत्तवान्	दिया
दू	दूनः	दूनवान्	दुःखी हुआ
धाव्	धावितः	धावितवान्	दौड़ा
ध्यै	ध्यातः	ध्यातवान्	ध्यान दिया
निर्+वा	निर्वाणः	निर्वाणवान्	बुझाया
शकि	शंकित	शंकितवान्	संदेह किया

धातवः --	क्त --	क्तवतु --	अर्थाः
शी	शयितः	शयितवान्	सो गया
शुष्	शुष्कः	शुष्कवान्	सूख गया
श्वि	शूनः	शूनवान्	(गया या बढ़ा)
सह	सोढः	सोढवान्	सह लिया
सिव	स्यूतः	स्यूतवान्	सी दिया
धा	हितः	हितवान्	धारण किया
ओहाक्	हीनः	हीनवान्	त्यागा
हु	हुतः	हुतवान्	हवन किया
ह्री	ह्रीतः	ह्रीतवान्	लजा गया
रंज्	रक्तः	रक्तवान्	रंग दिया
नृत्	नृतः	नृतवान्	नाच किया
आ + दा	आत्तः	आत्तवान्	ले लिया
क्लिद्	क्लिन्नः	क्लिन्नवान्	दुखी हुआ
कृ	कृतः	कृतवान्	किया
पठ्	पठितः	पठितवान्	पढ़ लिया
ज्ञा	ज्ञातः	ज्ञातवान्	ज्ञात हुआ
गुप्त्	गुप्तः	गुप्तवान्	छिपा हुआ
पाल्	पालितः	पालितवान्	पाला हुआ

इति —क्त-क्तवतु प्रत्ययान्ताः शब्दार्थाः ।

तद्धितप्रत्ययान्तशब्दार्थाः

अतिराजा=अतिशयितः राजा—उत्कृष्ट राजा
अद्यश्वीना=अद्य श्वो वा विजायते-आज या कल प्रसव होनेवाली
अकिञ्चनः=नास्ति किञ्चन यस्य—अति दुखी
आयुधिकः=आयुधेन जीवती—अस्त्र जीवी
धर्म्यम्=धर्मादनपेतम्—धर्मसंबद्ध
न्याय्यम=न्यायाद् अनपेतम्—न्याय संबद्ध
कुण्डोध्नी=कुण्डमिव ऊधो यस्याः—कुण्ड के समान स्तनवाली
गाम्मन्यः=आत्मानं गां मन्यते-अपने को माननेवाला
जनता=जनानां समूहः—जन समूह
तारकितम्=तारकाः संजाता अस्य—तारे दीखते हैं जिसमें वह
दाधिकम्=दध्ना संसृष्टम्—दधि मिश्रित ओदन
धर्म्यम्=धर्मादनपेतम्—धर्मसंबद्ध
न्याय्यम्=न्यायाद् अनपेतम्—न्याय संबद्ध
दाशरथिः=दशरथस्य अपत्यं पुमान्—राम आदि
द्विकम्बल्या=द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता—दो सौ तोले ऊनों से खरीदी गयी
द्विकाण्डा=द्वे काण्डे प्रमाणं अस्याः-दो षोडश हस्त प्रमाण दण्डों से परिमित क्षेत्र भूमि
द्विपुरुषा=द्वौ पुरुषौ प्रमाणं अस्याः—दो पुरुषों के बराबर की खाई
द्विविस्ता=द्वौ विस्तौ पचति—दो हिमाक्षों को गलानेवाली
द्विनावरूप्यः=द्वाभ्यां नौभ्याम् आगतः—दो नावों से आया हुआ
पञ्चगु=पञ्चभिः गोभिः क्रीतः—पाँच गौओं से खरीदा हुआ
पञ्चाश्वा=पञ्चभिः अश्वैः क्रीता—पाँच घोड़ों से खरीदी गयी
पद्माक्षः = पद्मे इव अक्षिणी यस्य – कमल नयन
पथिकः = पन्थानं गच्छति – रास्ता चलनेवाला
पन्थकः = पथि जातः – मार्गोत्पन्न ।

पक्त्रिमम् = पाकेन निर्वृत्तम् - पाक से हुआ
पाथेयम् = पथि साधु - मार्ग में उपकारक
परमराजः = परमश्चासौ राजा - सर्वोत्कृष्ट राजा
प्रावृषेण्यम् = प्रावृषि भवम् - वर्षा ऋतु में होने वाला
मातृष्वस्रेयः = मातृष्वसुः पुत्रः - मसियौत भाई
सायन्तनम् = सायं भवम् - साम को होने वाला
सभ्रातृकः = भ्रात्रा सह वर्तमानः - भाई के साथ
समांसमीना = समायां समायां विजायते - प्रतिवर्ष प्रसव करने वाली
सर्वपथीनः = सर्वपथान् व्याप्नोति समस्त-मार्गों के व्याप्त करने वाला
सप्ताहः = सप्तानाम् अह्नां समाहारः - सात दिन
यौवनम् = युवतीनां समूहः - युवतियों का समुदाय
राजन्यः = राज्ञः अपत्यानि - क्षत्रिय।
श्वशुर्यः = श्वशुरस्य अपत्यं पुमान् - साला
वैयासकिः = व्यासस्य अपत्य पुमान्-महर्षि शुकदेव जी
षाण्मातुरः = षण्णां मातृणाम् अपत्यम् - छः माताओं का पुत्र (कार्तिकेय)
सौधातकिः = सुधातुः अपत्यं पुमान् - सप्तर्षि आदि
सुगन्धि = शोभनः गन्धः यस्य तत् - सुन्दर गन्ध वाला-पुरुष
सुराजा = सुष्ठु राजा - सुन्दर राजा

विशेषोक्तिगर्भितवाक्यांशः

(मुहावरेदार वाक्यांश)

बिना अवसर का नाच = अकाण्डताण्डवम्
मिथ्या वस्तु की आशा = अकाण्डप्रत्याशा
व्यर्थ का रोना = अरण्यरोदनम्
असम्भव वस्तु = आकाशकुसुमम्
भेड़ियाधसान = अन्धपरम्पराऽन्यायः
अपने कुल का उजागर = कुलकमलदिवाकरः
अपने कुल का नाश करनेवाला = वंशकुठारः
झूठ-मूठ की नींद = व्याजनिद्रा
दूसरे को दोष ढूँढ़ना = परछिद्रान्वेषणम्
जिस युवक को दाढ़ी-मूँछ नहीं आई = अजातश्मश्रुः युवा
जो छात्र बहुत ही तेज बुद्धि का हो = कुशाग्रबुद्धिछात्रः
गर्व से चूर राजा = मदोद्धतो राजा
हाजिर जवाब आदमी = प्रत्युत्पन्नमतिः पुरुषः
जो मनुष्य पराया सुख नहीं देख सके = परसुखासहिष्णुर्जनः
नकली वेष धारण किये हुये राजा = छद्मवेषधारो राजा
घोंघावसन्त आदमी (बेवकूफ) = मृत्पिण्डबुद्धिर्जनः
निःस्वार्थ मित्र = निष्कारणो बन्धुः
पुरानी उम्र का मन्त्री = वयोवृद्धोऽमात्यः
श्रेष्ठ ज्ञानवाला तपस्वी = ज्ञानवृद्धस्तपस्वी
कर्तव्य में निरत पुरुष = कर्त्तव्यपरायणो नरः
जिस स्त्री का स्वामी मर गया है = मृतभर्तृका नारी
जिस पुरुष की स्त्री मर गयी है = मृतपत्नीकः पुरुषः
कल-कल शब्द करती हुई नदी = कलकल-निनादिनी नदी
जो आकाश से बातें करता हो = गगन चुम्बिनी अट्टालिका
जो घटना पूर्व में भी नहीं हुई = अभूतपूर्वा घटना
जो बात पहले कभी न सुनी गई = अश्रुतपूर्वो वृत्तान्तः

जिस घर में आपस में फूट हो = अन्तर्भेदाकुलं गृहम्
जो व्यवहार परम्परा से आया है = परम्परागतः व्यवहारः
हँसी-मजाक में कही गयी बात = नर्मभाषित वचः
ऐसी दिल्लगी जो रुचिकर हो = हृदयङ्गमः परिहासः
ऐसा गीत जो सुनने में मधुर लगे = श्रवणसुखदं गीतम्
ऊँची-नीची भूमि = उत्खातिनी भूमिः
घुटना भर पानी = जानुदघ्नं जलम्
ऐसा अन्धकार जहाँ हाथ न दिखाई पड़े = सूचिभेद्यं तमः
खराब हालत में पड़ा हुआ घर = दुर्दशापन्नं गृहम्
ऐसी बात जो सुनने से रोमांच हो उठे = लोमहर्षणो वृतान्तः
एक ही बात को दुहराता है = पिष्टपेषणं करोति
अलङ्कृत करता है = अलङ्करोति, भूषयति
तुलना करता है = तुलया धरति।
शोभा बढ़ाता है = लक्ष्मीः तनोति
प्रकट हो जाता है = वातमासेवते । प्रकटी भवति
आग में डालता है = अग्निसात् करोति
खाक में मिलाता है = भस्मसात् करोति
स्मरण रखता है = चित्तेऽवधारयति
प्राण दे डालता है = प्राणान् अतिपातयति
चम्पत हो जाता है = जङ्घामवलम्बते, पलायते
बदनाम होता है = वाच्यतां याति
दाँत पीसकर = दन्तैर्दन्तान्निष्पिष्य
उसकी बात का विश्वासकर = तद्वचनप्रत्ययात्
कुछ दिन बीतने पर = कालक्रमेण दिनेषु गच्छत्सु
बीमारी का बहाना बनाकर = रोगव्यपदेशेन
घुटने टेककर = जानुभ्यामवनिं गत्वा
गहरी साँस लेकर = दीर्घं निःश्वस्य
रुंधे हुए कण्ठ से = गद्गदस्वरेण, संरुद्धकण्ठम्

दुःख का आवेग रोककर = शोकवेगं नियम्य
चन्द्रोदय हो जाने पर = समुदिते चन्द्रमसि
सूर्यास्त हो जाने पर=अस्ताचलचूडावलम्बिनि मरीचिमालिनि—
सूर्यस्तंगते
आगामी सप्ताह में = आगामिनि सप्ताहे
पिछले महीने में = विगते मासि, गतमासे
उत्तर दिशा में = उत्तरस्यां दिशि
दक्षिण दिशा में = दक्षिणस्यां दिशि
पूरब दिशा में = पूर्वस्यां दिशि
पश्चिम दिशा में = पश्चिमायां दिशि
वर्षा बन्द हो जाने पर = समुदिते चन्द्रमसि
ऐसी हालत में = एवं गते सति
खुशी के साथ = सोल्लासम्
एक को देखकर शेष के अनुमान से=स्थालीपुलाकन्यायेन
प्राण देकर भी = प्राणव्ययेनापि
मुसलाधार पानी=अविरलवारिधारा सम्पातः
मृगतृष्णा झूठी आशा = मृगमरीचिका
वीरों में प्रधान = शूरशिरोमणिः
जिस मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं है=किंकर्तव्यविमूढो नरः
चारों ओर की विजय = दिग्विजयः ।

हिन्दीलोकोक्तीनां संस्कृतानुवादः

अन्धेर नगरी चौपट राजा—यथा राजा तथा प्रजा।
आधी छोड़ एक को धावै—यो ध्रुवाणि परित्यज्य।
ऊँट के मुँह में जीरे का फोरन—समुद्रे पृषतः पातो वये दीप-दर्शनम्।
एक पंथ दो काज—एका क्रिया द्वयर्थकारी प्रसिद्धा।
अधजल गगरी छलकत जाय—अगाधजलसञ्चारी, विकारी न च रोहितः।
अब पछताये होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत—व्यतीते समये किं स्यात्, पश्चात्तापैः प्रयोजनम्।
अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता—संहतिः कार्यसाधिका।
अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग—मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, भिन्नरुचिर्हि लोकः।
अशर्फी लुटे कोयलों पर मुहर—रत्नं चौरा हरन्त्येव, शीताङ्गारे महादरः।
अपनी करनी पार उतरनी—यथा कर्म तथा फलम्।
अपने मुँह मियाँ मिट्ठू—स्वात्मानं श्लाघते मूर्खः।
अन्धे को दीप दिखाना क्या? लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति?
आप भला तो जग भला—आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।
आया है सो जायगा, राजा रंक फकीर—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।
आग लगन्ते झोपड़ा जो निकसे सो लाभ—सर्वनाशे समुत्पन्ने, अर्द्धं त्यजति पण्डितः।
आगे नाथ न पीछे पगहा—रज्जुर्न पश्चान्न पुरोऽधिचाता।
काल करे सो आज कर—शुभस्य शीघ्रम्।

आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास—विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्।
आँख के अन्धे नाम नयनसुख—भिक्षार्थं भ्रमते नित्यम्।
उद्यम कबहुं न छाड़िये फल को दाता राम—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
ऊँची दूकान फीका पकवान—अन्तः सारविहीनस्य।
एक हाथ से ताली नहीं बजती—न तालिका ह्येककरेण ताड्यते।
कहने से करना भला—वाचः कर्मातिरिच्यते।
खग जाने खग ही की भाषा—खगस्य भाषा खग एव वेत्ति।
गुरु गुड़ चेला चीनी—प्रकर्ष आधारवशो गुणानाम्।
करम गति टारे नाहिं टरे—यद्धात्रा लिखितं ललाटपटले।
कहीं घी घना कहीं मुट्ठी भर चना—क्वचिदपि च निष्टान्नमशनम्।
कहाँ राजा भोज कहाँ भजुआ तेली—क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामितिः।
काम प्यारा चाम नहीं—गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते।
आज करो सो अब—श्वः कर्त्तव्यानि कार्याणि।
का वर्षा जब कृषि सुखाने—व्यतीतेऽवसरे लोके, दीर्घोद्योगोऽपि निष्फलः।
काबुल में भी गधे होते हैं—काश्यामपि निशाचराः।
कोयला न होय न उजला नौ मन साबुन खाय—अङ्गारः शतधौतोऽपि न श्वेतो भविष्यति।
खरबूजा खरबूजे का रंग पकड़ता है—संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।
गया वक्त फिर हाथ आता नहीं—प्रत्यायान्ति पुनर्गता न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
गुड़ खाय गुलगुले से परहेज—दिवाकाकरवाद्भीतो।
घर का योगी योगड़ा—चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते।

घर का भेदिया लंका ढाह—अहो दुरन्तः स्वजनविरोधः ।

जहाँ गाछ न वृक्ष तहाँ रेंड़ महापुरुष—निरस्तपादपे देशे-एरण्डोऽपि द्रुमायते ।

जैसा देश वैसा भेश—यत्र यादृश आचारस्तत्र वर्तेत तादृशम् ।

झूठे का मुँह काला—सत्यमेव जयते नानृतम् ।

जैसा बाप वैसा बेटा—आत्मा वै जायते पुत्रः

तेतो पाँव पसारिये जेति लम्बी सौर—चेष्टितम् सकलं सर्वैः स्वानुरूपं प्रशस्यते ।

घर में भूँजी भांग नहीं बाहर में है नाच—गृहे कर्दपिका नास्ति, बहिरस्ति महोत्सवः ।

चले न जाने अंगना टेढ़—वर्त्तते नाक्षाराभ्यासो ग्रन्थोऽशुद्धि-समाकुलः ।

चार दिनों की चाँदनी फिर अंधेरी रात—चलं चित्तं चलं वित्तं, चले जीवितयौवने ।

चौबे गये छब्बे होने दूबे होकर आये—प्रदीपं द्योतयेद्यावन् निर्वाणस्तावदेव सः ।

चलते फिरते पाइये, बैठे देगा कौन—न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।

जिसकी लाठी उसकी भैंस—वीरभोग्या वसुन्धरा ।

जल में रहकर मगर से बैर—नद्यां निवासो मकरेण वैरम् ।

जैसे को तैसा—शठे शाठ्यं समाचरेत् ।

जैसी करनी वैसी भरनी—कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

चोर-चोर मौसियौत भाई—स्ववर्गे परमा प्रीतिः ।

छोटा मुँह बड़ी बात—अत्युच्चैर्भवति लघीयसां धाष्टर्यम् ।

क्षमा बड़न को चाहिये—क्षमासारा हि साधवः ।

जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर—समर्थो यो नित्यं, स जयतितराकोऽपि पुरुषः ।

जो गरजता जो बरसता नहीं – शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः।

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल—अपकारिषु यः साधुः साधुत्वं तस्य प्रोच्यते।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ—अन्विष्टं येन लोकेऽस्मिन् लब्धं तेनैव निश्चितम्।

जैसी हो भवितव्यता वैसी उपजे बुद्धि—तादृशी जायते बुद्धिर्यादृशी भवितव्यता।

दुविधा में दोनों गये, माया मिले न राम—संशयात्मा विनश्यति।

दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है—बालः पयसा दग्धः, तक्रं फूत्कृत्य शङ्कितः पिबति।

बहुत योगी से मठ उजाड़—नश्यन्ति बहुनायकाः।

बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद—विहाय मुक्तां करिकुम्भजातां, कान्ता किरातस्य बिभर्ति गुञ्जाम्।

बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा—नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीम् प्रसववेदनाम्।

बूँद-बूँद से तालाब भरता है—जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।

बीती ताहि बिसारि दे—गतस्य शोचना नास्ति।

बैठे से बेगार भला—अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः।

दूर का ढोल सुहावन—अपरिचिते महानादरो भवति।

धोबी का कुत्ता घर का न घाट का मध्ये तिष्ठ त्रिशंकुवत्।

न रहे बाँस, न बाजे बाँसुरी—मूलाभावे कुतः शाखा।

नौ नगद न तेरह उधार—वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।

नीम हकीम खतरे जान—लोके निहन्ति प्राणिनः प्रणान्।

नौ की लकड़ी नब्बे खर्च—वहनीयव्ययो मूलादधिको नैव शोभते।

प्राण जाहि बरु वचन न जाही—न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे—परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।

पढ़े फारसी बेचे तेल, देखो यह कुदरत का खेल—भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ।

बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही झोंका किये—अपि काश्यां निवासेन, पठितं नैव किञ्चन ।

मुँह में राम-राम बगल में छुरा—विषकुम्भः पयोमुखः ।

मन मोदक नहिं भूख बुताई—उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।

लालच बुरी बलाय—अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके ।

लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर—निरक्षरो भट्टाचार्यः ।

मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम—ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ।

भैंस के आगे बीन बजावे, वह बैठी पगुराय—किं मिष्टमन्नं खरशूकराणाम् ।

वेष से भीख मिलती है—वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः ।

भूखे भजन न होहि गुपाला—भोजनं प्रथमं कार्यं, भजनं च ततः परम् ।

भूखा क्या नहीं करता—बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ।

मन चंगा तो कठौती में गंगा—मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

सत-संगति मंगलमूला—सत्संगतिः सकलमङ्गलमोदमूला ।

समय चूकि पुनि का पछिताने—व्यतीतेऽवसरे व्यर्थं का नाम परिजल्पना ।

सत्तर चूहे खाके बिल्ली चली हज को—वृद्धा वेश्या तपस्विनी ।

हाथी चला बाजार कुत्ते भूंके हजार—न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

होनहार बिरवान को होत चिकने पात—भव्यानां भवितव्यानां प्रथमं स्याच्छुभावहम्।

हाथ कंगन को आरसी क्या—सूर्यस्य किं दीपकदर्शनेन।

होम करते हाथ जले—उपकुर्वन्नेव हन्यते।

मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काजी—स्त्रीपुरुषौ यदा रक्तौ, किं करिष्यन्ति बान्धवाः।

मियाँ की दौड़ मस्जिद तक—मशकस्य बलं कियत्। दुर्बलानां समुत्साहः शयनावधि वर्त्तते।

बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहु—को न बिभ्यति दुष्टेभ्यः।

वा सोने को जारिये जासो टूटे कान—मणिना भूषितः सर्पः, किमसौ न भयङ्करः।

साँच बरोबर तप नहीं—नास्ति सत्यात् परो धर्मः।

साँच में आँच क्या—सत्ये नास्ति भयं क्वचित्।

सब से भला चुप्प—मौनं सर्वार्थसाधकम्।

शब्द-सङ्ग्रहः

शरीर के अङ्गादि

सिर – मस्तकम्, शिरः।
आँख – नेत्रम्, नयनम्।
कान – श्रोत्रम्, कर्णः।
नाक – नासिका।
मुँह – मुखम्, वदनम्।
जीभ – जिह्वा, रसना।
दाँत – दन्तः, दंष्ट्रा।
ओठ – ओष्ठः, अधरः।
दाढ़ी – चिबुकः।
कपार – कपालः।
गाल – कपोलः, गल्लः।
कन्धा – स्कन्धः, अंसः।
बाँह – बाहुः, भुजः।
काँख – कक्षः।
केहुनी – कफोणः।
हाथ – हस्तः, करः, पाणिः।
उँगली – अङ्गुलीः (स्त्री०)
हथेली – हस्ततलः।
नाखून – नखः।
मुट्ठी – मुष्टिः।
पेट – उदरम्, कुक्षिः।
पसली – पार्श्वम्।
कलेजा – हृदयम्।
गर्दन – ग्रीवा।
ढोंढ़ी – नाभिः।
कमर – कटिः।
चूतर – नितम्बः।
जाँघ-जङ्घा, ऊरुः।
स्तन – कुचः, पयोधरः।
घुटना – जानुः।
टाँग – टंगः, चरणः।
पैर – पादः, चरणः।
एँड़ी – पार्ष्णिः।
घुट्ठी – गुल्फः।
केश – कचः, बालः।
भौं – भ्रूः।
दाढ़ी-मूँछ – श्मश्रु।
हड्डी – अस्थि।
मांस – मासम्।
चर्बी – मेदः, वसा।

भोज्य-पदार्थ

भात – ओदनः, भक्तम्।
दाल – सूपः, द्विदलम्।
तरकारी – व्यञ्जनम्, तेमनम्।
रोटी – करपट्टिका, रोटिका।
कढ़ी – क्वाथिका।
झोल – विजिलम्।
चिउड़ा – चिपिटकः।
खीर – पायसम्।

कचौड़ी – कचौरी ।
पूरी – शष्कुली ।
परौठा – घृतचौरी ।
हलुआ – संयावः ।
मालपूआ – पूपः, अपूपः ।
पकवान – पक्वान्नम् ।
मिठाई–मिष्टान्नम् ।
लड्डू – लड्डुकः । मोदकम् ।
जिलेबी – कुण्डलिनी ।
मंडा – मण्डकः ।
पीठा – पिष्टकः ।
बड़ा – वटकः ।
पापड़ – पर्पटः ।
बाटी – आङ्गरकर्पटी ।
खोआ – किलाटः ।
छेना – कूचिका, आमिक्षा ।
छोला – छोलः ।
तक्र – तक्रम् ।
मक्खन – नवनीतम् ।
माँड़ – मण्डम् ।
खिचड़ी – कृशरान्नम्, खिच्चटिका ।
भूंजा – भृष्टान्नम्, भर्जनम् ।
खाँड़ – खण्डः ।
चीनी – सिता ।
शक्कर – शर्करा ।
भुरा – मधुधूलिः ।
शहद – मधु, क्षौद्रम् ।
अमावट – आम्रावर्तः ।
सत्तू – सक्तवः ।
गुड़ – गुडः ।
चटनी – अवलेहः ।
अँचार – अम्लरागः, आसुतम् ।
सिरका – शुक्तम् ।
दूध – दुग्धम, क्षीरम् ।
दही – दधि ।
घी – धृतम्, हविः ।
मलाई-सन्तानिका ।
लावा – लाजाः ।
होरहा – होलका ।
तीखुर – तवक्षारः ।
मखाना – मखान्नम् ।
आटा – गोधूम चूर्णम्, कणिका ।
मैदा – समिता ।
चाशनी – सितालेहः ।
शरबत – सिताम्बु, मिष्टपानकः ।

तरकारी

आलू – आलुकः ।
रामतरोई–भिण्डा, वृत्तबीजम् ।
ओल – कन्दः, सूरणः ।
मुरई – मूलिका ।

परबल – पटोलः ।
बैगन – वार्त्ताकुः, बृन्ताकः ।
सेम – शिम्बी (स्त्री०)
पेठा – कुष्माण्डः ।
कोंहड़ा – अलाबुः, कोशफलम् ।
कद्दू – तुम्बी, अलाबुः ।
झिगुनी – झिङ्गाकः ।
खीरा – त्रपुषम् ।
ककड़ी – कर्कटी, चिर्मटी ।
केरेला – कठिमल्लकः ।
केले की छीमी – मोचकः ।
लहसुन – लशुनम् , रसोनम् ।
गजरा – गृञ्जनम् , गाजरम् ।
सलगम – गृञ्जनम् ।
तरबूजा–कर्कारुकः, कालिन्दः ।
खरबूजा – चित्रफलम् ।
गोभी – गोजिह्वा ।
साग – शाकः ।
बथुए का साग – वास्तुकम् ।
पालक का साग – पालकः ।
पोई का साग – पोतकी ।
करमी का साग – करम्मी-शाकः ।
सोए का साग – शीतशिवा ।
पटुए का साग – नाडिका ।
नोनी का साग – लोणी ।
प्याज – पलाण्डुः ।
फूट – बालुकम् ।
कसेरु – कसेरुकम् ।
सिंहारा – शृङ्गाटकः ।
सेरुकी – शालुकम् ।
मकोय – काकमाची ।

अनाज

अनाज – अन्नम् , शस्यम् ।
धान – धान्यम् , व्रीहिः ।
साठीधान – शालीः, षिष्टिकः ।
बूट – चणकः, परिपन्थकः ।
अरहर – आढकी ।
मूंग – मुद्गः ।
मसूर – मसूरः ।
उड़द – माषः ।
केराव – कलायः ।
मटर – हरेणुः ।
खेसारी – त्रिपुटः, खण्डिकः ।
गेहूँ – गोधूमः ।
चावल: – तण्डुलः ।
जौ – यवः ।
बाजड़ा – बर्जरी ।
साँवाँ – श्यामाकः ।
कौनी – पीतधान्यम् ।
कोदो – कोद्रवः ।
सरसो – सर्षपः ।
राई–राजिका ।
तिल – तिलः ।
तीसी – अतसी ।

कुल्थी – कुलस्थः, कुल्माषः। ज्वार – यावनालः, तुवरः।
मकई – मकायः।

फल और मेवे

आम – आम्रम्।
केला – कदली रम्भाफलम्।
अनार – दाडिमः।
नीबू – निम्बूकः, जम्बीरः।
नाशपाती – अमृतफलम्।
नारङ्ग – नारङ्गम्।
सेव – सीवफलम्।
कटहल – पनसः।
जामुन – जम्बूफलम्।
बेल – बिल्वः, श्रीफलम्।
अमरूद – पेरूकः।
पपीता – मधुकर्कटी, एरण्डः, पपीतकफलम्।
बेर – बदरीफलम्।
तूत – तूदः।
करौंदा – करमर्दकः।
बड़हल – लकुचः।
गूलर – उदुम्बरः।
मीठा अनार – मधुबीजः।
इमली – अम्लिका, चिञ्चा।
ताड़ – तालः।
छुहाड़ा – पिण्डीफलम्।
नारियल – नारिकेलफलम्।
बदाम – बदामः।
अखरोट – अक्षोटः।
किशमिश – मधुरसा, मृद्विका।
मुनक्का – पथिका।
दाख – द्राक्षा।
पीनखजूर – मधुरस्रवा।
खीरा – क्षीरी।
महुआ – मधुकः।
अमड़ा – आम्रातकः।
आँवला – आमलकी, धात्रीफलम्।
हर्रे – हरीतकी, पथ्या, अभया।
बहेड़ा – भक्षः, विभीतकः।
मीठा अनार – मधुबीज
कदम – कदम्बः।
कथबेल – कपित्थः।
ईख – इक्षुः।
खजूर – खर्जूरः।

वस्त्र-भूषण

कपड़ा – वस्त्रम्, पटः।
धोती – धौतवस्त्रम्।
सूती कपड़ा – कार्पासम्।
गहना – भूषणम्, अलङ्कारः।
सेंदुर – सिन्दूरः।
मेंहदी – रक्तगर्भा, मेन्धी।

ऊनी कपड़ा - रोमजम्। उबटन - उद्वर्तनम्।
रेशमी कपड़ा - कौशेयम्। सुरमा - अञ्जनम्।
दुपट्टा - दुकूलम्, उत्तरीयम्। महावर - लाक्षा।
कुर्ता - कञ्चुकम्, कुर्पासकः। अंगूठी - मुद्रिका, अङ्गुलीयकम्।
कमीज - कमनीयः, कञ्चुकम्।
टोपी - शिरश्छदः। माला - हारः, प्रालम्बिका।
साड़ी - शाटी। कण्ठा - कण्ठभूषा।
चोली - कंचुकी। कँगना - कङ्कणः।
गमछा - अङ्गमार्जनी, अङ्गप्रोञ्छनी। पहुँची - कटकः।
कुण्डल - कुण्डलम्।
पगड़ी - उष्णीषम्। कर्णफूल - कर्णभूषणम्।
तौलिया - अङ्गमार्जनी। बिछिया - नूपुरः।
रूमाल - मुखमार्जनी। घुंघरू - किङ्किणी।
कोराकपड़ा-अनाहतं वस्त्रम्। कमरबन्द - मेखला, रसना।
पटुए का कपड़ा - क्षौमम्। बाजू - केयूरः।

खनिज-पदार्थ

सोना - स्वर्णम्, कनकम्, काञ्चनम्। सीसा - सीसकम्।
जस्ता - यशदः।
चाँदी - रजतम्, रूप्यम्। टीन - त्रपुः।
ताँबा - ताम्रकम्। राँगा - पिच्चटम्, रङ्गम्।
लोहा - लौहम्, अयः। पारा - पारदः, रसः।
काँसा - कांस्यम्। अबरख - अभ्रकम्।
पीतल - आरकूटः, रीतिः। गन्धक - गन्धाश्मा, गान्धिका।
हीरा - हीरकम्। कोयला - अङ्गारः।

पेड़-पौधे

पेड़ - वृक्षः, पादपः, तरुः। लकड़ी - काष्ठम्।
पौधा - पोतः, लघुपादपः। डंठल - वृन्तम्।
पीपल - अश्वत्थः। रेंड़ - एरण्डः।

बरगद – वटः, न्यग्रोधः।
पाकड़ – प्लक्षः, पर्कटी।
सखुआ – शालवृक्षः।
नीम – निम्बः।
पत्ता – पत्रम्, पर्णम्।
डाल – शाखा।
जड़ – मूलम्।
फुनगी – शिखा।
बबूर – बर्बुरः, पीतपुष्पः।
सेहुँड़ – सेहुण्डः।
अशोक वृक्ष – अशोकः।
भोजवृक्ष – भूर्जः।
चन्दन – चन्दनवृक्षः।
रीठा – अरिष्टः।
रस – रसः।
कपास – कार्पासः।
गूदा – वल्कुटम्।
बेंत-वेतः, वेतसः।
शिरसि – शिरीषः।
सीसो – शिशपावृक्षः।
देवदार – देवदारुः।
सेमर – शाल्मलीतरुः।
सहजन – शोभाञ्जनः, शिग्रुः।
फूल – पुष्पम्।
फल – फलम्।
कच्चाफल – शलाटुः।
छिलका – वल्कलम्, वल्कः।
कनेर – कर्णिकारः।
कचनार – काञ्चनारः।
पलाश – पलाशः।
बाँस – वंशः, वेणुः।

फूल और सुगन्धित द्रव्य

गुलाब – पाटलः।
चमेली – जाती, मालती।
चम्पा – चम्पकः, चम्पा।
कमल – सरोजम्, उत्पलम्, जलजम्, पद्मम्।
ओड़हूल – जपा।
गेंदा – गणेरुकः।
जूही – यूथिका।
कनेर – कर्णेरपुष्पम्।
मौलसिरी – बकुलः।
बेला – त्रिपुटा, मल्लिका।
केवड़ा – केतकी।
खस – उशीरः।
गुग्गुल – गुग्गलुः।
केसरः – कुङ्कुमम्।
कस्तूरी – कस्तूरिका।
गुलाबजल – पाटलजलम्।
केवड़ाजल – केतकीजलम्।
इत्र – पुष्पसारः।

औषधि-द्रव्य

पीपल—पिप्पली ।
सोंठ—शुण्ठी ।
असगन्ध—अश्वगन्धा ।
सोहागा—टङ्कणः ।
महावरी—कुलञ्जम् ।
गोखरू—गोक्षुरम् ।
इसफगोल—शीतबीजम् ।
गेरू—गैरिकम् ।
जवाखार—यवक्षारः ।
चूना—चूर्णम् ।
फिटकिरी—श्वेता, आशोधनी ।
कत्था—खदिरः ।
जमालगोटा—जयपालकः ।
अजमोदा—अजमोदा ।
गुरच—गुडूची ।
चिरैता—कैरातम्, चिरतिक्तः ।
अडूसा—वासकः ।
खड़िया मिट्टी—खटी ।

हर्बे-हथियार

हथियार—अस्त्रम्, शस्त्रम्, आयुधम् ।
तलवार—असिः, खड्गः ।
बर्छी—शल्यम्, शङ्कुः ।
भाला—प्रासः, कुन्तः ।
कुल्हाड़ी—कुठारः ।
परसा—परशुः ।
कटार—कृपाणः ।
गुप्ती—इली, करबालिका ।
चाकू—छूरिका, असिधेनुका ।
काँटी—लौहकीलम् ।
सूई—सूची ।
कुदाल—कुदालः ।
हँसिया—दात्रम् ।
खन्ती—खनित्रम् ।
खुरपी—क्षुरपः ।
लाठी—लगुडः, दण्डः
ढाल—फलकः ।
धनुष—धनुः, चापः ।
बाण—शरः, बाणः ।
तरकस—तूणीरः ।
तोप—शतघ्नी ।
बन्दूक—आग्नेयास्त्रम्, नालीकम् ।
फाल—फालम् ।
सरौता—संकुला ।
आरा—करपत्रम् ।
कैंची—कर्तनी ।
टकुआ—सर्कुः ।
फावड़ा—खनकः ।
छूरा—क्षुरः ।
हथौड़ी—घनः ।

गृहोपयोगी-वस्तुएँ

बर्तन—पात्रम्, भाजनम्।	खटिया—खट्वा
थाली—स्थालिका।	पलग—पर्यङ्कः।
लोटा—जलपात्रम्।	चौकी—चतुष्किका।
गिलास—लघुपात्रम्।	सेज—शय्या।
बाटी—कंसिका।	बिछावन—आस्तरणम्।
घड़ा—घटः, कुम्भः, कलशः।	कम्बल—कम्बलः।
गगरी—गर्गरी।	तोशक—तूलीरः।
बटलोई—कुण्डम्, स्थाली।	तकिया—उपधानम्।
करछुल—दर्विः।	मसहरी—मशहरी।
तवा—कन्दुः।	सन्दूक—वासकः, मञ्जूषा।
कड़ाही—कटाहः, ऋजिषम्।	ट्रङ्क—पेटी, पेटिका।
उखल—उलूखलम्।	खूँटी—नागदन्तः।
मूसल—मुसलम्।	छड़ी—यष्टिः।
सूप—सूर्पम्, प्रस्फोटनम।	छाता—छत्रम्।
चलनी—तितउः, चालनी।	जूता—उपानत्।
सिल—शिला।	खड़ाऊँ—काष्ठपादुका।
लोढ़ा—पेषणम्।	पीढ़ा—आसनम्।
टोकरी—कण्डोलः, पिटः।	झाड़ू—सम्मार्जनी।
बोरा—प्रसेवः।	चूल्हा—चुल्लिः।
चटाई—कटः।	रसोईघर—पाकशाला।
सरबा—शरावः।	कठौता—कर्करी।
ढकना—छादिका, पिधानम्।	पीकदान—प्रतिग्राहः।
कलछी—दर्विका।	पंखा—व्यजनम्।
चमचा—लघुदर्विका, चमचः।	बोतल—काचभाण्डम्।
शीशी—सीसिका।	चिराग—प्रदीपः।
आइना—दर्पणः, मुकुरः।	बत्ती—वर्तिः।
कंघी—कङ्कतिका, प्रसाधनी।	

सम्बन्धी

पिता—जनकः।
माँ—माता, जननी।
चाचा—पितृव्यः।
दादा—पितामहः।
नाना—मातामहः।
भाई—भ्राता।
बहन—भगिनी, स्वसा।
बेटा—पुत्रः, तनयः, सुतः, सूनुः, आत्मजः।
बेटी—पुत्री, तनया, दुहिता, आत्मजा।
स्त्री—पत्नी, भार्या, दाराः।
पति—स्वामी, भर्त्ता।
भतीजा—भ्रातृजः, भ्रातृव्यः।
मामा—मातुलः।
भगिना—भागिनेयः, स्वस्त्रीयः।
ससुर—श्वशुरः।
सास—श्वश्रूः।
भौजाई—भ्रातृजाया।

देवर—देवरः।
पतोहू—पुत्रवधूः, स्नुषा।
पोता—पौत्रः।
नाती—नप्ता।
साला—श्यालः।
बहनोई—भगिनीपतिः
फूआ—पितृस्वसा
मौसी—मातृस्वसा
फूफेरा भाई—पितृष्वसेयः।
मौसेराभाई—मातृष्वसेयः।
बड़ाभाई—अग्रजः।
छोटा भाई—अनुजः।
सौतेली माँ—विमाता।
जमाई—जामाता।
दायाद—दायादः।
साढ़ू—श्यालिवोढः।
ननद—ननान्दा।

भिन्न-भिन्न वृत्ति-जीवी

पुरोहित—पुरोहितः, ग्रामयाजकः।
किसान—कृषाणः, कृषकः।
कुम्हार—कुम्भकारः, कुलालः।
नाई—नापितः क्षुरी।
धोबी—रजकः।
तेली—तैलिकः।
बढ़ई—वर्धकिः काष्ठकारः, रथाकारः।

लुहार—लोहकारः
सुनार—स्वर्णकारः
बनिया—बणिक्
माली—मालाकारः
तमोली—ताम्बुलिकः।
कसेरा—कांस्यवणिक्।

मोची—चर्मकारः। मजदूर—श्रमिकः।
जुलाहा—तन्तुवायः, कौलिकः कसाई—मांसिकः।
दर्जी—सूचिकारः, सौचिकः ब्याध—व्याधः, जालिकः
मछुआ—धविरः, निषादः। भाँट—चारणः।
ग्वाला—गोपः। जासूस—चरः, स्पशः
रंगरेज—रङ्गाजीवः। गवैया - गायकः।
ठठेरा—ताम्रकुट्टकः। बजानेवाला - वादकः।
गड़ेरिया—मेषपालः, अजाजीवः। नाचनेवाला—नर्त्तकः।
कलवार—शौण्डिकः, कलालः। तमाशा दिखानेवाला—नटः।
कारीगर—कारुः, शिल्पी। बाजीगर - मायाकारः।
राज—लेपकः, स्थपतिः। वैद्य—वैद्यः, भिषक्।
गन्धी - गन्धिकः। रसोईया - पाचकः, सूदः।
हलवाई—मौदकिकः। चोर - चौरः, तस्करः।
पण्डा - देवलः। सिपाही - सैनिकः।
चौकीदार—द्वारपालः, प्रहरी। डाकू—दस्युः।
नौकर - भृत्यः, दासः, किङ्करः। लुटेरा - लुण्टाकः।
चरवाहा - वाहीकः, गोचारकः। भाँड़ - भण्डः।
कत्थक - कथकः। भिखमंगा - भिक्षुः, भिक्षुकः, याचकः।

पशु-पक्षी

हाथी-गजः, इभः, करी। घोड़ा—घोटकः, अश्वः, हयः।
सिंह - सिंहः, मृगेन्द्रः, केसरी। बाघ - व्याघ्रः, शार्दूलः।
भालू - भल्लुकः, ऋच्छः। चीता - चित्रकः।
बन्दर - वानरः, कपिः, मर्कटः। ऊँट - उष्ट्रः, क्रमेल,
गधा - गर्दभः, खरः। सूअर - शूकरः, वराहः, कोलः।
भैंसा - महिषः, लुलायः
बैल - वृषः, वृषभः। गैंडा - गण्डकः।
गाय - गौः, वृषभः। भेड़िया - वृकः, कोकः।

कुत्ता – कुक्कुरः, श्वा, सारमेयः ।
खरगोश – शशकः, शशः ।
गीदड़ – शृगालः, गोमायुः ।
हरिण – मृगः, हरिणः ।
भेड़ – मेषः ।
बकरा – अजः, छागः ।
नीलगाय – गवयः ।
बिड़ाल – बिडालः ।
लोमड़ी – खिखिरः ।
घड़ियाल – मकरः, नक्रः ।
तीतर—तित्तिरः ।
खंजन – खञ्जनः, खञ्जीरः ।
चकवा – चक्रवाकः ।
पपीहा – चातकः ।
बत्तक – बत्तकः, कलहंसः
चमगादर—जतुकाः ।
मूषा – मूषकः, उन्दुरुः ।
गरुड़ – वैनतेयः, खगेशः
गीध – गृध्रः ।
कौआ – काकः, वायसः ।
कोयल – पिकः, कोकिलः ।
बाज – श्येनः ।
कबूतर – कपोतः ।
बगुला – बकः ।
चील – चिल्लः ।
उल्लु – उल्लुकः, पञ्चकः ।
सुग्गा—शुकः, कौशिकः ।
मना – सारिका ।
हंस – हंसः ।
सारस – सारसः ।
मोर – मयूरः, केकी ।
मुर्गा—कुक्कुटः, ताम्रचूडः ।

सरीसृप और कीड़े-मकोड़े

मछली – मत्स्यः, मीनः ।
साँप – सर्पः, भुजङ्गः ।
बिच्छू – वृश्चिकः, अलिः ।
गिरगिट – कृकलासः, सरटः ।
मकड़ा – मर्कटः लूता ।
गिलहरी-कष्ठमार्जारः, चिक्षुरः ।
भौंरा-भ्रमरः अलिः षट्पदः ।
मधुमक्खी – मधुमक्षिका ।
कछुआ – कच्छपः, कुर्मः ।
मेढ़क - भेकः मण्डूकः ।
चींटी – पिपीलिकाः ।
कीड़ा – कीटः ।
पतिङ्गा – पतङ्गः, सलभः ।
मक्खी – मक्षिका ।
केंकड़ा – कर्कटः ।
जुगनू – खद्योतः ।
घोंघा – शम्बूकः ।
जोंक - जलौका ।
बिढ़नी – मधुलिका ।
डाँस - दंशः ।
जूँ – लिक्षा ।
मच्छड़ – मशकः ।

दीमक – वल्मीकः। खटमल – यूका, मत्कुणः।
झींगुर – भृङ्गारी, झिल्लिका।

निवासस्थानादि

शहर – नगरम्। बाजार – आपणः, निषद्या।
गाँव – ग्रामः पूः (स्त्री) जङ्गल – वनम्, विपिनम्।
पृथ्वी – भू, धरा, रसा, भूमिः मही, पृथ्वी। मिट्टी – मृत्, मृत्तिका।
जल – पानीयम्, उदकम्, जलम्, वारि, सलिलम्।
पहाड़ – पर्वतः, गिरिः, अचलः भूधरः। सड़क – राजमार्गः।
गली – प्रतोली, विशिखा, रथ्या। मकान – गृहम्, भवनम्, सदनम्, आलयः।
राजमहल – सौधः, प्रासादः। किला – प्राकारः सालः, दुर्गम्।
दीवाल – भित्तिः (स्त्री०) कुड्यम्। खिड़की – गवाक्षः, वातायनम्।
दरवाजा – द्वार (स्त्री०), द्वारम्।
आंगन – अङ्गनम्, अजिरम्। चबूतरा – चत्वरम्।
किवार – कपाटम्, अररम्। छत, छप्पर – छदिः।
ईटा – इष्टका, इष्टकम्। ओसारा – उपाशालम्।
ठाट – स्थातृ। अटारी—अट्टम्।
हाट – हट्टम्। अलीन – अलिन्दम्।

विशेषण पद

बड़ा – दीर्घः, आयताकारः। लालची – लोलुपः।
छोटा – लघुः, क्षुद्रः, ह्रस्वः। ठग-धूर्त्तः, प्रतारकः।
अच्छा – उत्तमः, सुष्ठु, साधु। नया—नवीनः, नवः नूतनः।
बुरा – कुत्सिः, दुष्टः। धनी – धनिकः, समृद्धः।
गरीब – दरिद्रः, निर्धनः। पुराना – प्राचीनः।
मोटा – स्थूलः, पीनः। ऊँचा—उच्चः, प्रांशुः।
पतला – कृशः। नीचा – नीचः, निम्नः।
कमजोर – दुर्बलः, निर्बलः। चिकना – मसृणः।

लम्बा — लम्बः, विशालः । कड़ा – कठोरः ।
नाटा – खर्वः, वामनः । गहरा – गम्भीरः ।
अन्धा – अन्धः, दृष्टिहीनः । गर्म – उष्णः ।
काना – एकाक्षः । ठण्ढा – शीतः, शीतलः ।
लूला – श्रोणः, न्युब्जः । ऊजला – श्वेतः, सितः, शुक्लः, धवलः ।
लँगड़ा – खञ्जः ।
बहरा – बधिरः । काला – कृष्णः, असितः ।
कोढ़ी – कुष्ठी । नीला नीलः ।
बीमार – रोगी, व्याधितः । पीला – पीतः ।
पागल – मत्तः, विक्षिप्तः । हरा – हरितः ।
मूर्ख – मुर्खः, मूढ़ः, जडः । लाल – रक्तः ।
विद्वान् – पण्डितः, सुधीः । मीठा—मधुरः मिष्टः ।
सुन्दर – रम्यः, मञ्जुलः । नमकीन – लवणः ।
कुरूप – कुरूपः, कान्तिहीनः । कच्चा – अपक्वः, आमः ।
सज्जन – सुशीलः, सज्जनः । शुद्ध—पूतः, पवित्रः, शुचिः ।
उदार – उदारः, विशालहृदयः ।

वाक्य-रचना

धातुओं के सकर्मक-अकर्मक भेद के कारण संस्कृत व्याकरण में मुख्यतया तीन वाक्य होते है—

(१ कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाच्य, (३) भाववाच्य।

(१) कर्तृवाच्य

जहाँ कर्ता प्रधानरूप से वाच्य रहता है, वहाँ सकर्मक या अकर्मक धातु से कर्ता में लकार (तिङ्) होता है और तिङन्त क्रिया पद कर्ता के अनुसार बदलता है। इसी को 'कर्तृवाच्य' कहते हैं।

अनुशीलनी कारिका—

प्रयोगेकर्तृवाच्यस्य कर्तरि प्रथमा भवेत्।
द्वितीया कर्मणि तथा क्रिया कर्तृपदान्विता॥

अर्थात् कर्तृवाच्य में कर्ता प्रथमान्त, कर्म द्वितीयान्त और क्रिया के पुरुषवचन कर्ता के अनुसार ही होता है। यथा—

(क) रामः पुस्तकं पठति—(राम पुस्तक पढ़ता है)।

(ख) रामकृष्णौ पुस्तकं पठतः—(राम और कृष्ण दोनों पुस्तक पढ़ते हैं)।

(ग) रामः, श्यामः, कृष्णश्च पुस्तकं पठन्ति—
(राम, श्याम और कृष्ण पुस्तक पढ़ते हैं)।

छन्दोबद्ध उदाहरण—

रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिम्।
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिः॥

(२) कर्मवाच्य—

जहाँ कर्म प्रधान रूप से वाच्य रहता है, वहाँ सकर्मक धातु से कर्म में लकार (तिङ्) होता है और क्रिया कर्म के अनुसार बदलती है, इसी को 'कर्मवाच्य' कहते हैं।

कर्मलक्षण

'कर्तृवृत्ति-व्यापारप्रयोज्य-फलवत्व-प्रकारकेच्छानिरूपित - विषयताश्रयत्वं कर्मत्वम्।

अर्थात् संज्ञा के जिस रूप पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे कर्म कहते हैं। कर्मवाच्य में कर्ता से तृतीया, कर्म से प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार होती है।

अनुशीलनी कारिका

प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया स्यात्तु कर्तरि।
कर्मणि प्रथमा चैव क्रिया कर्मानुसारिणी ॥

नोट—सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होने पर क्रिया के पुरुष-वचन कर्म के पुरुषवचन के अनुरूप ही होता है। यथा—

(क) रामेण पुस्तकं पठ्यते (राम द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है)

(ख) रामेण पुस्तके पठ्येते (राम द्वारा दो पुस्तकें पढ़ी जाती है)

(ग) रामेण पुस्तकानि पठ्यन्ते (राम द्वारा दो से अधिक पुस्तकें पढ़ी जाती है)

छन्दोबद्ध उदाहरण—

सज्जनैः सेव्यते धर्मः प्रजाभिः पूज्यते नृपः।
मूर्खेण लभ्यते दुःखं पण्डितैः प्राप्यते सुखम् ॥

(१) रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है) कर्तृवाच्य।

(२) रामेण पुस्तकं पठ्यते (राम द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।) कर्मवाच्य।

यहाँ कर्मवाच्य में कर्तृवाच्य के कर्ता 'रामः' के स्थान पर 'रामेण' हो गया और 'पुस्तकम्' द्वितीया एकवचन के स्थान पर 'पुस्तकम' प्रथमा एकवचन हो गया एवं तदनुकूल 'पठ्यते' क्रिया भी प्रथम पुरुष एकवचन में बदल गयी है।

इसी प्रकार उपर्युक्त (ख-ग) वाक्य में समझना चाहिए।

(३) भाववाच्य—

जहाँ भाव (क्रिया) प्रधान रहता है वहाँ अकर्मक धातु से भाव में लकार होता है और क्रियापद नित्य तृतीयान्त ही होता है। इसी को 'भाववाच्य' कहते हैं।

नोट—भाव क्रिया को कहते हैं वह भावार्थक लकार से अनूदित होता है। भाव में प्रत्यय करने पर 'तिङ' के साथ 'युष्मद्' 'अस्मद्' शब्द एकार्थवाचक नहीं होते, अतः क्रिया प्रथमपुरुषकी ही होती है—तिङर्थ क्रिया के द्रव्यरूप न होने से द्वित्व, बहुत्व संख्या की प्रतीति नहीं होती इसलिए द्विवचन, बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु स्वाभाविक एकवचन ही होता है।

भाव में प्रत्यय होने पर कर्ता अनुक्त होने से तृतीया विभक्ति होती है। और क्रिया सदा आत्मनेपदी ही होती है। यथा—

त्वं भवति इस अर्थ में—त्वया भूयते, होता है।

अनुशीलनी कारिका

कर्माभावः सदा भावे तृतीया चैव कर्तरि।
प्रथमः पुरुषः एकवचनं च क्रियापदे॥

अर्थात् भाववाच्य में कर्म का अभाव रहता है और कर्ता से (कर्मवाच्यवत्) तृतीया विभक्ति होती है एवं क्रिया सदैव प्रथम पुरुष एकवचन में होती है।

यथा—

(क) त्वया भूयते (तू होता है)।

(ख) युवाभ्यां चौराद् भीयते (आप दोनों चोर से डर रहे हैं)।

(ग) भवद्भिः कर्तुं शक्यते (आपलोग कर सकते हैं)।

नोट:—कर्मवाच्य तथा भाववाच्य बनाने के लिए लट्, लोट्, लृट्, लङ्, इन चारों लकारों के धातु में 'य' जोड़कर आत्मनेपद में रूप बनाया जाता है।

यथा :—

कर्मवाच्य 'गम्लृगतौ (गम्)

लट्

प्र० पु० – गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते
म० पु० – गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे
उ० पु० – गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे

लोट्

प्र० पु० गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
म० पु० गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
उ० पु० - गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लृट्

प्र० पु० गंस्यते	गंस्येते	गंस्यन्ते
म० पु० गंस्यथे	गंस्येथे	गंस्यध्वे
उ० पु०-गंस्ये	गंस्यावहे	गंस्यामहे

लङ्

प्र० पु० अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
म० पु० अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
उ० पु०-अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

(१) कर्मवाच्य में बहुप्रचलित सकर्मक धातुओं की क्रियायें—

क्रिया	वाक्य	अर्थ
पठ् = पठ्यते	पुस्तकं पठ्यते	(पुस्तक पढ़ता है)
कृ = क्रियते	कार्यं क्रियते	(काम करता है)
पच् = पच्यते	ओदनः पच्यते	(भात पकाता है)
खाद् = खाद्यते	पनसः खाद्यते	(कटहल खाता है)
क्री = क्रीयते	घटः क्रीयते	(घड़ा खरीदता है)
दृश् = दृश्यते	चन्द्रः दृश्यते	(चन्द्र को देखता है)
पा = पीयते	विजया पीयते	(भाँग पीता है)
भिद् = भिद्यते	काष्ठः भिद्यते	(काष्ठ भेदन करता है)
मुच् = मुच्यते	बाणाः मुच्यन्ते	(बाणों को छोड़ता है)
गम् = गम्यते	ग्रामः गम्यते	(गाँव जाता है)
ज्ञा = ज्ञायते	कर्तव्याऽकर्तव्यौ ज्ञायते	(कर्तव्य और अकर्तव्यों को जानता है)
गै = गीयते	गानः गीयते	(गाना गाता है)
भुज् = भुज्यते	ओदनः भुज्यते	(भात खाता है)
आप् = आप्यते	बुद्धिः आप्यते	(ज्ञान प्राप्त करता है)

(२) भाववाच्य में बहुप्रचलित अकर्मक धातुओं की क्रियायें—

क्रिया	वाक्य	अर्थ
स्वप् = सुप्यते	अनवसरं सुप्यते	(असमय में सोता है)
शक् = शक्यते	तत्कर्तुं शक्यते	(वह कर सकता है)
शी = शय्यते	कटे शय्यते	(चटाई पर सोता है)
ष्ठा = स्थीयते	चत्वरे स्थीयते	(चौराहे पर ठहरता है)
मृ = म्रियते	विषात् म्रियते	(विष से मरता है)
नृत् = नृत्यते	मयूरः नृत्यते	(मयूर नाचता है)
आस् = आस्यते	स्वस्थाने आस्यते	(अपने स्थान पर बैठता है)
युध् = युध्यते	परस्परं युध्यते	(परस्पर लड़ता है)
भी = भीयते	चौरात् भीयते	(चोर से डरता है)
वस् = वस्यते	कुट्याम् वस्यते	(कुटी में रहता है)

सकर्मक, अकर्मकधातु

(१) सकर्मक धातु—

'फलव्यधिकरण-व्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्'।

अर्थात् जिसका फल और व्यापार भिन्न-भिन्न आश्रय में हो, उसे 'सकर्मकधातु' कहते हैं। यथा—

(क) बीमला तण्डुलं पचति (बीमला चावल पकाती है) यहाँ विक्लिति रूपफल तण्डुल में और पाक रूप व्यापार बीमला में है, अतः 'पच् धातु' सकर्मक है।

(ख) रामः ग्रामं गच्छति (राम गाँव जाता है)।

यहाँ भी ग्राम गमनरूप व्यापार राम में है और इसका फल ग्राम-संयोग ग्राम में है, अतः 'गम् धातु' सकर्मक है। इसी तरह अन्य सकर्मक धातुओं में भी समझें।

(धात्वर्थः क्रिया = धातु का अर्थ क्रिया है)।

पठनाद्यर्थकसकर्मकधातुः—

'पठने भक्षणे याने हनने करणे तथा।
अर्जनेवर्जने पाने रक्षणे क्षालने तथा॥

भजने गमने त्यागे सेवने हवने तथा।
एवमादिषु वाक्येषु धातवः कर्मसंयुताः ॥'

अर्थात् पठनाद्यर्थक, भोजनार्थक, यानार्थक, हननार्थक, करणार्थक, उपार्जनार्थक, वर्जनार्थक, रक्षणार्थक, प्रक्षालनार्थक, भजनार्थक, गमनार्थक, त्यागार्थक, सेवनार्थक तथा हवनार्थक धातु सकर्मक होते है।

उदाहरणं यथा—पुस्तकं पठति, लशुनं भक्षति, अन्नं खादति, ग्रामं याति शत्रुं हन्ति, कार्यं करोति, धनं अर्जति, धूम्रपानं त्यजति, दुग्धं पिबति, धर्मं रक्षति, वस्त्रं क्षालयति, शिवं भजति, गृहं गच्छति, पापं त्यजति, पितरौ सेवते, घृतं जुहोति।

(२) अकर्मकत्व-धातुः

"फल-समानाधिकरण-व्यापारवाचकत्वम्-अकर्मकत्वम्"।

अर्थात् जिसका फल और व्यापार एक ही आश्रय में हो, उसे 'अकर्मक धातु' कहते हैं।

यथा—

(क) पथिकः शेते (पथिक सोता है)

यहाँ विश्राम रूपफल और चक्षुनिमीलनानि रूप व्यापार दोनों पथिक में ही है, अतः 'शीङ्' धातु 'अकर्मक' है। एवं

(ख) सर्वे बालकाः हसन्ति (सभी बालक हँसते हैं।)

यहाँ भी हँसना रूप व्यापार और उसका फल दोनों बालकों में ही हैं, अतः 'हस्' धातु अकर्मक है (इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

लज्जाद्यर्थक अकर्मक धातुः—

'लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भयजीवित-मरणम्।
शयन क्रीडा-रुचि दीप्त्यर्थं धातुगणं तम् अकर्मकमाहुः ॥

लजाना, रहना, टहरना, जागना, बढ़ना, क्षय होना, डरना, जीना मरना, सोना, खेलना, चमकना—इतने अर्थों में धातु अकर्मक हैं।

उदाहरण यथा—मूर्खः लज्जति, ईश्वरः अस्ति, बालः तिष्ठति, प्रहरी जागर्ति, सदाचारी वर्धते, दुराचारी क्षयति, शिशुः बिभेति कीर्तिः जीवति, मुमूर्षुः म्रीयते, शिशुः शेते, सुकेशः क्रीडति, भक्तिः रोचते, दीव्यते ब्रह्मचारी।

नोट—(१) यदि सकर्मक धातु अर्थान्तर (अपने अर्थ से अन्य अर्थ) को कहने लगे तो वह सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाती है। यथा—

आभीरः भारं वहति = प्रापयति (अहीर भार को ढोता है)

यहाँ प्रापणार्थक 'वह्' धातु 'सकर्मक' है किन्तु वही धातु अर्थान्तर में प्रवृत्त होकर 'अकर्मक' हो जाती है। यथा—

नदी वहति=स्यन्दते (नदी अपनेआप बह रही है)

(२) यदि कर्म का धात्वर्थ में ही उपग्रह (अन्तर्भाव) हो जाय तो सकर्मक धातु, भी अकर्मक हो जाती है। यथा—

(क) मुमुर्षुः जीवति अर्थात् प्राणान् धारयति (मरने वाला जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है)।

(ख) गणिका नृत्यति अर्थात् अङ्गविक्षेपं करोति (वेश्या नाचती है अर्थात् हाथ-पैर फैलाती है।)

यहाँ 'जीव' प्राणधारण और 'नृत्' का अंगविक्षेप रूप अर्थ का धात्वर्थ में ही अन्तर्भाव हो जाता है, अतः दोनों धातु अकर्मक कहे जाते है।

इसी तरह—

(ग) मेघो वर्षति अर्थात् मेघो जलं वर्षति) (मेघ बरसता है यानि मेघ जल बरसाता है।) यहाँ भी जलरूप कर्म का धात्वर्थ में ही अन्तर्भाव हो जाने से धातु अकर्मक कही जाती है।

(३) कर्म की अविवक्षा करने पर भी सकर्मक धातु अकर्मक हो जाती है। यथा—

हितान्नयः संशृणुते स किं प्रभुः (हितपुरुष से जो अपना हित

नहीं सुनता वह निन्दित है) यहाँ स्वहित रूप अर्थ की अविवक्षा करने पर धातु अकर्मक हो गयी।

अनुशीलनी कारिका—

धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोरकर्मका क्रियः॥

सकर्मक अकर्मक धातुओं का सरल निरूपण—

(१) साकांक्षित क्रियायें 'सकर्मक'—यथा—पठति, गच्छति खादति, चुनोति इत्यादि। यहाँ क्या पढ़ता है, कहाँ जाता है, क्या खाता है, क्या चुनता है। इस तरह (कर्मों की) आकांक्षा होती है, अतः इस प्रकार की सभी साकांक्षित धातुयें 'सकर्मक' होती हैं।

(२) निराकांक्षित क्रियायें 'अकर्मक'—यथा—हसति, क्रुध्यति, नृत्यति, जाग्रति, इत्यादि। यहाँ क्या हँसता है, क्या-क्रोध करता है, क्या-नाचता है, क्या जागता है, इस तरह (कर्मों की आकांक्षा होती ही नहीं। अतः इस प्रकार की सभी निरांकाक्षित धातुयें 'अकर्मक' होती हैं।

द्विकर्मक धातुः

'दुह्याच्-पच्-दण्ड-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मन्थ-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह्—प्रपूरणे, याच्—याच्ञायाम्, पच्—पाके, दण्ड=निपातने, रुध्=आवरणे, प्रच्छ्—ज्ञीप्सायाम्, चिञ्=चयने, ब्रूञ्=व्यक्तायां वाचि, शासु=अनुशिष्टौ, जि=अभिभवे, मंथ=बिलोडने, मुष्=स्तेये, णीञ्=प्रापणे, हृञ्=हरणे, कृष्=विलेखने, वह=प्रापणे। ये १६ धातुयें द्विकर्मक है इनमें दुह से मुष् पर्यन्त १२ धातुओं के गौण (अकथित) कर्म और अन्तिम ४—नी, हृ, कृष् और वह के प्रधान कर्म कहे जाते हैं।

नोट—उपर्युक्त १६ धातुओं के प्रधान और अप्रधान दो कर्म होते हैं। क्रिया के साथ प्रधान रूप से जिसका सम्बन्ध होता है उसे प्रधानकर्म कहते हैं।

उदाहरण—गोपः गां दुग्धं दोग्धि । शिष्या गुरुं धर्मं पृच्छति । दरिद्रः प्रभुं धनं याचते । पिता पुत्रं गृहं नयति । मालाकारः वृक्षं पुष्पं चिनोति । देवाः जलनिधिं अमृतं ममन्थुः ।

यहाँ 'गाम्' आदि प्रथम कर्म गौण (अकथित) कर्म है और 'दुग्धम्' आदि द्वितीय कर्म मुख्य कर्म है ।

छन्दोबद्ध उदाहरणम्

धेनुंदोग्धिपयोगोपः, दीनोऽयं याचते नृपम् ।
रुरोध गां व्रजंकृष्णः, गुरुं धर्मं स पृच्छति ॥
चिन्वन्ति ते गुरुं पुष्पम्, शिशुं गेहं निनाय सः ।
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः, स अजां ग्रामं नयति ॥

वाच्य-परिवर्तनम्

कर्तृवाच्य के वाक्य को कर्मवाच्य में और कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के वाक्य को कर्तृवाच्य में परिवर्तन कर देना ही 'वाच्य परिवर्तन' कहलाता है। यथा—

सकर्मक धातु से—

(१) कर्तृवाच्य—गुरुः शिष्यं पश्यति।

(२) कर्मवाच्य—गुरुणा शिष्यः दृश्यते।

अकर्मक धातु से—

(१) कर्तृवाच्य—व्याघ्रः धावति।

(२) कर्मवाच्य—व्याघ्रेण धाव्यते।

(३) भाववाच्य—तेन भूयते (उसके द्वारा होता है)

(४) कर्तृवाच्य—सः भवति (वह होता है)

इस प्रकार कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य और भाववाच्य में परिवर्तन हुआ। इन्हीं वाक्यों को परिवर्तन कर देने से कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के वाक्य कर्तृवाच्य में परिवर्तित हो जाते हैं।

नोट—(१) वाच्यपरिवर्तन करने पर कर्त्ता और कर्म दोनों के विशेषण में वही विभक्ति और वचन होंगे जो कर्त्ता और कर्म में होंगे। यथा—

कर्तृवाच्य—सुशीलः छात्रः स्वकीयं पुस्तकं पठति।

कर्मवाच्य—सुशीलेन छात्रेण स्वकीयः पुस्तकं पठ्यते।

(२) सदा नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होने वाले शब्द वाच्यपरिवर्तन करने पर किसी भी वाक्य में एकवचन ही रहते हैं। केवल वाक्य के अनुसार उसकी विभक्ति परिवर्तित हो जाती है। यथा—

कर्तृवाच्य—गुणाः पूजास्थानं गुणिषु।

भाववाच्य—गुणैः पूजास्थानेन गुणिषु।

(३) वाच्यपरिवर्तन करने पर वाक्य की क्रिया के काल तथा लकार कोई परिवर्तन नहीं होता है। यथा—

कर्तृवाच्य—

(१) कर्तृवाच्य—सः चन्द्रं पश्यति ।
कर्मवाच्य—तेन चन्द्रः दृश्यते ।

(२) कर्तृवाच्य—सः स्वप्नम् अपश्यत् ।
कर्मवाच्य—तेन स्वप्नः अदृश्यत ।

द्विकर्मक धातुओं का वाच्यान्तर—

द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह्, याच्, पच्, दण्ड, रुध्, प्रच्छ, चिञ्, ब्रूञ्, शासु, जि, मंथ, मुष् ये १२ धातुओं के गौणकर्म और अन्तिम चार—नी, कृष, हृ, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा विभक्ति में रखे जाते है ।

यथा—'दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म और नी, हृ कृष्, वह् के गौण कर्म द्वितीया विभक्ति में रखे जाते हैं—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१. सः धेनुं पयो दोग्धि	तेन धेनुं पयः दुह्यते ।
२. देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे ।
३. सः अजां ग्रामं नयति	तेन अजा ग्रामं नीयते ।

णिजन्त धातुओं का वाच्यान्तर

"बुद्धि-भक्षार्थयोः शब्द-कर्मकाणां निजेच्छया ।"

अर्थात् कर्मवाच्य में बुध्यर्थक । भक्षार्थक तथा शब्दकर्मक धातुओंके दोनों कर्मों से भी अपनी इच्छानुसार प्रथमा विभक्ति की जा सकती है । यथा—

कर्तृवाच्य—गुरुः छात्रधर्मं बोधयते ।

कर्मवाच्य—गुरुणा छात्रः धर्मं बोध्यते ।

नोट—उपर्युक्त धातुओं से भिन्न णिजन्त द्विकर्मक धातुओं के कर्मवाच्य बनाने में प्रयोज्य कर्म से प्रथमा विभक्ति होती है । यथा—

कर्तृवाच्य—रामः बाणेन बालिनं घातयति ।

कर्मवाच्य—रामेण बाणेन बालिः घात्यते ।

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-गणपाठः

अजन्तपुल्लिङ्गप्रकरणे—

सर्वादीनि सर्वनामानि। (१।१।२७) सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावर दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंख्यानयोः। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्। इति सर्वादिः।

अव्ययीभावसमासे—

अव्ययी भावे शरत्प्रभृतिभ्यः। (५।४।१०७) शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् कियत्। जराया जरस् च। प्रतिपरस—मनुभ्योऽक्षणः। पथिन्। इति शरदादिः।

तत्पुरुष समासे

सप्तमीशौण्डैः। (२।१।४०) शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधिपटु पण्डित कुशल चपल निपुण। इति शौण्डादिः।

ऊर्यादिच्विडाचश्च। (१।४।६१) ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संसकला ध्वंसकला भ्रंशकला गुलुगुधा सजूष फलफली विक्ली आक्ली आलोष्टी केवाली केवासी सेवाली पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मसा मस्मसा मसमसा श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा पाम्पी प्रादुस् श्रत् अविस् एते ऊर्यादयः।

तद्धितप्रकरणे—

अश्वपत्यादिभ्यश्च। (४।१।८४) अश्वपति स्थानपति ज्ञानपति यज्ञपति बन्धुपति शतपति धनपति गणपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति पशुपति धान्यपति धर्मपति धन्वपति सभापति प्राणपति। क्षेत्रपति। इत्यश्वपत्यादिः।

उत्सादिभ्योऽञ्। (४।१।८६) उत्स उदपान विकिर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन वष्कयास धेनु पृथ्वी पङ्क्ति

पाली त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलु कुण। उदस्थान देशे। पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादयश्छन्दसि। इत्युत्सादिः।

शिवादिभ्योऽण् (४।१।११२) शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठक चण्डजम्भ भूरि दण्डकुठार ककुभ् अनभिम्लान कोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूवय कहय रोध कपिञ्जल वतण्ड तृण कर्ण क्षीरहृद जलहृद परिल पिष्ट हैहय (पार्षिक) गोपिका कपालिका जटिलिका। इति शिवादिः।

रेवत्यादिभ्यष्ठक्। (४।१।१४६) रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह दण्डग्राह कर्णग्राह चामरग्राह। इति रेवत्यादिः।

भिक्षादिभ्योऽण्। (४।२।३८) भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गार चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवती पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भरत विषय श्रोत्र। इति भिक्षादिः।

क्रमादिभ्यो वुन्। (४।२।६१) क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन्। इति क्रमादिः।

वरणादिभ्यश्च। (४।२।८२) वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोदा आलिङ्ग्यायनी जानपदी जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी। इति वरणादिः।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। (८।२।९) यव दल्भि ऊर्मि भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि (ध्रिज) ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुद् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु। आकृतिगणोऽयं यवादिः।

नद्यादिभ्यो ढक्। (२२९७) नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफरी खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शल्वा दार्वा सेतकी (वडवाया वृषे)। इति नद्यादिः।

गहादिभ्यश्च । (४।२।१३८) गह अन्तस्थ सम विषम मध्य मध्यंदिन चरणे उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख एकग्राम समानग्राम एकवृक्ष एकपलाश अव स्यन्दन कामप्रस्थ सौमित्रि व्याडि । इति गहादिराकृतिगणोऽयम् ।

दिगादिभ्यो यत् । (४।३।५४) दिग् वग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ (उदकात्संज्ञायाम्) न्यायवंश वेश काल आकाश । इति दिगादिः ।

अनुशतिकादीनां च । (७।३।२०) अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अंगारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति वध्योग पुष्करसत् अनुहरत् कुरुकत् कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री (राजपुरुषात्ष्यञि) सूत्रनड । इत्यनुशतिकादिराकृतिगणोऽयम् । तेन अभिगम अभिभूत अधिदेव चतुर्विद्या इत्यादयोऽन्येऽपि गृह्यन्ते ।

उगवादिभ्यो यत् । (५।१।२) गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्वदा युग मेधा स्रुच् (नाभि नभं च) (शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम्) । (ऊधसोऽनङ् च) । कूप खद दर खर असुर अध्वन् क्षर वेद बीज दीप्त । इति गवादिः ।

दण्डादिभ्यो यः । (५।१।६६) दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग । इति दण्डादिः ।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः (५।२।१००) लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु । इति लोमादिः ।

पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रू बलि सामन् ऊष्मन् कृमि । (अङ्गात्कल्याणे) शाकी पलाली (दद्रूणां ह्रस्वत्वं च) । (विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः) । (लक्ष्म्या अच्च) । इति पामादिः ।

पिच्छा उरस् ध्रुवक (जटाघटाकालाः क्षेपे) वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा । इति पिच्छादिः ।

व्रीह्यादिभ्यश्च । (५।२।११६) व्रीहि माया शाखा शिखा माला

.खला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा बडवा मारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ (शीर्षान्नञः)। इति व्रीह्यादिः।

अर्श आदिभ्योऽच्। (५।२।१२७) अर्शस् तुन्द चतुर पलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण। इति अर्शआदिराकृतिगणः।

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्। अयमेव सार्वविभक्तिस्तसिः। आदि मध्य अन्त पार्श्व पृष्ठ। इत्याद्यादिराकृतिगणोऽयम्। स्वरेण स्वरतः।

प्रज्ञादिभ्यश्च। (५।४।३८) प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् वेदन षोडश् विद्या मनस् (श्रोत्र शरीरे) चिकीर्षत् चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्हवयस् व्याकृत असुर रक्षस् पिशाच अशनि कार्षापण देवता बन्धु। इति प्रज्ञादिः।

स्त्रीप्रत्यय प्रकरणे—

अजाद्यतष्टाप्। (४।१।४) अजा एडका अश्वा चटका मूषका बाला वत्सा होडा पाका मन्दा विलाता पूर्वापहाणा उत्तरापहाणा क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमेति पुंयोगेऽपि कोकिला जातौ, दंष्ट्रा एतेऽजादयः। आकृतिगणोऽयम्।

षिद्गौरादिभ्यश्च। (४।१।४१) गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य पुट तूण द्रुण हरिण कामण पटर उणक आमल आमलक कुवल बिम्ब बदर कर्कर तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सदल शुष्काण्ड सनन्द सुषम सुषव अलिन्द गुडुल षाण्डश आढक आनन्द अश्वत्थ। इति षिद्गौरादिः।

बह्वादिभ्यश्च। (४।१।४५) बहु पद्धति अङ्कति अञ्चति मंहति शकटि शक्ति शस्त्र शारि वारि राति राधि। इति बह्वादिराकृतिगणोऽयम्।

न क्रोडादिबह्वचः। (४।१।५६) क्रोड नख खुर गोखा उखा शिखा वाल शफ शुक। आकृतिगणोऽयम्। तेन भगगलघोणनालभुजगुदकर। इति क्रोडादिः।

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। (४१।७३) शार्ङ्गरव कापटव गोग्गुल- ब्राह्मण गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय आतिथेय आनिचेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकसेय काव्य काव्य शैव्य एहि पर्ये आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड भोगवत् गौरमत् एतौ संज्ञायाम् नृनयोर्वृद्धिश्च । पुत्र इति शार्ङ्गरवादिः ।

इति 'लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ गणपाठः' समाप्तः ।

व्याकरणादि लक्षणम्

(१) व्याकरणम् —

'व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति—शब्दज्ञानजनकं व्याकरणम्' जिससे साधु शब्द का ज्ञान हो उसी का नाम व्याकरण है। व्याकरण का ही दूसरा नाम महाभाष्यकार ने 'शब्दानुशासन' रखा है। "अनुशिष्यन्ते = अपशब्देभ्यो विविच्य कथ्यन्ते साधु शब्दा अनेनेत्यनुशासनं नाम—सूत्र-वार्तिक-भाष्यव्याख्यानादिरूपं शास्त्रम्" संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शास्त्र का स्थान सबसे ऊँचा है। क्योंकि व्याकरणशास्त्र के बिना वेदार्थ या स्मृति, पुराण, इतिहास, काव्य, कोश आदि किसी भी शास्त्रान्तर का ज्ञान हो ही नहीं सकता। भास्कराचार्य ने कहा भी है—

"यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्
ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥"

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन षडङ्गों में व्याकरण वेद का मुखरूप प्रधान अङ्ग है। जैसा कि कहा गया है—

मुखं व्याकरणं तस्य ज्योतिषं नेत्रमुच्यते।
निरुक्तं श्रोत्रमुद्दिष्टं छन्दसां विचितिः पदे॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ कल्पान् प्रचक्षते।

किं बहुना 'ब्राह्मणेनहि निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदो ध्येयो ज्ञेयश्च'।

इस आगमोक्त वचन का उद्धरण देते हुए भगवान् पतञ्जलि ने कहा है—

'षट् स्वङ्गेषु प्रधानं व्याकरणम्,
प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति'

इत्यादि उक्ति से भी सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य मात्र पृ
लिये मुख्यतः व्याकरण शास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम नितान्त आव-
श्यक है।

(२) सूत्रलक्षणम्—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

सूत्रों के भेद—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

(१) संज्ञासूत्रम्—शक्तिबोधकत्वं संज्ञात्वम्।
यथा—वृद्धिरादैच्, अदेङ्गुणः, इत्यादि।

(२) परिभाषासूत्रम्—अनियमे नियमकारणित्वं परिभाषात्वम्।
यथा—आदेः परस्य, तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इत्यादि।

(३) विधिसूत्रम्—अपूर्वबोधबोधकत्वं विधित्वम्।
यथा—इको यणचि, एचोऽयवायावः, इत्यादि।

(४) नियमसूत्रम्—व्यापकसूत्रनियामकत्वं नियमत्वम्।
यथा—कृत्तद्धितसमासाश्च, रात्सस्य, इत्यादि।

(५) अतिदेशसूत्रम्—अन्यस्य धर्मः अन्यस्मिन् आरोपः अति-
देशवत् घटितं अतिदेशत्वम्।
यथा—स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ, तृज्वत्क्रोष्टुः, इत्यादि।

(६) अधिकारसूत्रम्—स्वदेशे वाक्यार्थशून्यत्वं परदेशे वाक्यार्थ-
बोधजनकत्वम् अधिकारत्वम्।
यथा—ङ्याप्प्रातिपदिकात्, सार्वधातुके, इत्यादि।

(३) वार्तिकलक्षणम्—

उक्ताऽनुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः॥

कात्यायन का वार्तिकपाठ पाणिनिव्याकरण का एक अत्यन्त
महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना पाणिनीय व्याकरण अपूर्ण ही रह

ाता और यही कारण है कि अब पाणिनीय व्याकरण के आलोक में अन्त कोई भी व्याकरण पनप नहीं रहा है। महामुनि कात्यायन का ही दूसरा नाम 'वररुचि' है। ये स्मृतिकार और वार्तिककार ही नहीं, अपितु महाकवि भी थे। इसके 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य की प्रशंसा अनेक ग्रन्थों में की गयी है। जैसा कि लिखा है—

य: स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचि: कवि:॥

न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्य:।
काव्येपि भूयोऽनुचकार तवै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्ष:॥

अत: कात्यायन का 'वार्तिक' त्रिमुनिव्याकरणम् में अभिन्न अंग है, क्योंकि इसके बिना पद सिद्ध नहीं हो पाता। यही कारण है कि सभी शास्त्रों में सर्वथा अग्रगण्य है।

(४) भाष्यलक्षणम् —

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वर्णै: सूत्रानुसारिभि:।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यभाष्यविदो विदु:॥

(५) व्याख्यानलक्षणम् —

पदच्छेद: पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपश्च समाधानं व्याख्यानं षड्विधं मतम्॥

विद्यार्थी शिक्षासूत्रम्

छात्राणामुपकाराय हितं चोपदिशाम्यहम्।
येन जीवनमेतेषामुन्नतिप्रवणं भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ—छात्रों के उपकारार्थ मैं कुछ हित की बात बतलाता हूँ जिससे उनका जीवन उन्नतिशील हो ॥ १ ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य समाधाय मनस्तथा।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय नमेत् प्रभुमतन्द्रितः ॥ २ ॥

सबसे पहले इन्द्रियों को अपने वश में कर और मन को एकाग्र बनाकर प्रतिदिन सबेरे उठकर आलस्य छोड़कर ईश्वर की वन्दना करें ॥ २ ॥

शौचस्नानादिकं कृत्वा सन्ध्याहवनमाचरेत्।
पूर्वं पठितपाठानामावृत्तिं नित्यशश्चरेत् ॥ ३ ॥

शौच, दन्तधावन, स्नान आदि शारीरिक पवित्रता सम्पादन कर सन्ध्या अर्थात् परमात्मचिन्तन और हवन करें। तदुपरान्त पढ़े हुए पाठों का आवर्तन करें ॥ ३ ॥

ततो गुरुमुखाद् ग्रन्थमाद्योपान्तं पठेन्मुदा।
गुरुशुश्रूषणं कृत्वा चाऽभ्यस्येत् पाठमन्वहम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर गुरुमुख से अपने-अपने पाठों को पढ़ें। बाद में गुरु की यथोचित सेवा कर प्रतिदिन पाठ का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

परीक्षोत्तीर्णतार्थांऽपि योग्यता परमौचिती।
अर्जनीया सदा शिष्यैर्वर्ध्या व्युत्पत्तिरन्ततः ॥ ५ ॥

परीक्षा में सफलता-प्राप्त्यर्थ उचित योग्यता प्राप्त करते हुए आन्तरिक व्युत्पत्ति बढ़ाने की भी चेष्टा करें ॥ ५ ॥

व्युत्पत्तिमन्तरा नैव प्रतिपत्स्यात् कथञ्चन।
अतो व्युत्पित्सुभिर्भाव्यं छात्रैर्जिज्ञासुभिस्तथा ॥ ६ ॥

व्युत्पत्ति के बिना कुछ भी पदार्थों का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए विद्यार्थियों को व्युत्पत्ति की जिज्ञासा अवश्य रखनी चाहिए ॥ ६ ॥

महामूल्यत्वमज्ञात्वा कालस्य य उपेक्षते।
जीवनं तस्य व्यत्येति व्यर्थमेव न संशयः ॥ ७ ॥

जो विद्यार्थी समय की कीमत को नहीं जानकर (पढ़ने में) लापरवाही करता है, उसका जीवन निःसन्देह व्यर्थ (कण्टकाकीर्ण) हो जाता है ॥ ७ ॥

परीक्षां दातुकामो वै लेखशक्तिं विवर्धयेत्।
अल्पेनापि सुलेखेन परीक्षोत्तीर्यते ध्रुवम् ॥ ८ ॥

परीक्षा देनेवालों को चाहिए कि लिखने की शक्ति को अच्छी तरह बढ़ावें क्योंकि थोड़ा भी सुन्दर लेख से निश्चितरूपेण परीक्षा में सफलता मिलती है ॥ ८ ॥

लेखशक्तिविहीनेन बहुश्रमयुताऽपि वा।
परीक्षामुत्तरीतुं हा ! पार्यते न कथञ्चन ॥ ९ ॥

उत्तम लेख लिखने में कमजोर छात्र अधिक से अधिक मेहनत करने पर भी परीक्षा में सफलता प्राप्त नहीं करते ॥ ९ ॥

परीक्षाभवनं गत्वा मनश्चाञ्चल्यमुत्सृजेत्।
निर्भीकतां समासाद्य शान्तचित्तो भवेज्जनः ॥ १० ॥

परीक्षाभवन में जाकर मन की चञ्चलता को दूर कर हृदय से भय को बिलकुल हटाकर प्रसन्नचित्त हो जाना चाहिये ॥ १० ॥

प्रश्नपत्रं गृहीत्वादौ प्रश्नान् सर्वान् निभाल्य च।
उत्तरं विदितं सम्यगादौ लेख्यं सविस्तरम् ॥ ११ ॥

पहले प्रश्नपत्र लेकर सब प्रश्नों को अच्छी तरह हृदयङ्गम करके सबसे पहिले जिस प्रश्न का उत्तर खूब उत्तम रूप से आता हो उसी को लिखें ॥ ११ ॥

कालानुपातमाश्रित्य सारगर्भेण सत्वरम्।
संक्षेपेणैव लेखेन प्रश्नानामुत्तरं लिखेत् ॥ १२ ॥

परीक्षा-समय के औसत को ध्यान में रखकर संक्षेप में सारगर्भित लेख से अनिवार्य प्रश्नों का उत्तर लिखना चाहिये ॥ १२ ॥

समयस्य समाप्तेः प्राक् स्वासनं परिहाय च ।
केन्द्रान्न हि बहिर्गच्छेदनुतापोऽन्यथा भवेत् ।। १३ ।।

समय के समाप्त होने से पहले आसन को परित्याग कर परीक्षा-भवन से बाहर नहीं निकले, नहीं तो बड़ी हानि होगी ।।१३।।

सिंहावलोकनन्यायात् शोधयेल्लिखितोत्तरम् ।
गच्छतः स्खलनन्यायात् त्रुटिर्जाता विनश्यति ।। १४

अन्त में लिखित उत्तरों को आद्योपान्त एक निगाह डालकर संशोधित कर लें, जिससे भ्रमवश लेख की सारी भूलचूक दूर हो जायगी ।। १४ ।।

समाप्तः ।

संख्यानां गणनाक्रमः

१ = एकः
२ = द्वौ
३ = त्रीणि
४ = चत्वारि
५ = पञ्च
६ = षट्
७ = सप्त
८ = अष्टौ, अष्ट
९ = नव
१० = दश
११ = एकादश
१२ = द्वादश
१३ = त्रयोदश
१४ = चतुर्दश
१५ = पञ्चदश
१६ = षोडश
१७ = सप्तदश
१८ = अष्टादश
१९ = एकोनविंशतिः
२० = विंशतिः
२१ = एकविंशति
२२ = द्वाविंशतिः
२३ = त्रयोविंशतिः
२४ = चतुर्विंशतिः
२५ = पञ्चविंशतिः
२६ = षड्विंशतिः
२७ = सप्तविंशतिः
२८ = अष्टाविंशतिः
२९ = एकोनत्रिंशत्
३० = त्रिंशत्
३१ = एकत्रिंशत्
३२ = द्वात्रिंशत्
३३ = त्रयस्त्रिंशत्
३४ = चतुस्त्रिंशत्
३५ = पञ्चत्रिंशत्
३६ = षट्त्रिंशत्
३७ = सप्तत्रिंशत्
३८ = अष्टात्रिंशत्
३९ = एकोनचत्वारिंशत्
४० = चत्वारिंशत्
४१ = एकचत्वारिंशत्
४२ = द्विचत्वारिंशत्
४३ = त्रिचत्वारिंशत्
४४ = चतुश्चत्वारिंशत्
४५ = पञ्चचत्वारिंशत्
४६ = षट्चत्वारिंशत्
४७ = सप्तचत्वारिंशत्
४८ = अष्टचत्वारिंशत्
४९ = एकोनपञ्चाशत्
५० = पञ्चाशत्
५१ = एकपञ्चाशत्
५२ = द्विपञ्चाशत्
५३ = त्रिपञ्चाशत्
५४ = चतुःपञ्चाशत्

५५ = पञ्चपञ्चाशत्
५६ = षट्पञ्चाशत्
५७ = सप्तपञ्चाशत्
५८ = अष्टपञ्चाशत्
५९ = एकोनषष्टिः
६० = षष्टिः
६१ = एकषष्टिः
६२ = द्विषष्टिः
६३ = त्रिषष्टिः
६४ = चतुःषष्टिः
६५ = पञ्चषष्टिः
६६ = षट्षष्टिः
६७ = सप्तषष्टिः
६८ = अष्टषष्टिः
६९ = एकोनसप्ततिः
७० = सप्ततिः
७१ = एकसप्ततिः
७२ = द्विसप्ततिः
७३ = त्रिसप्ततिः
७४ = चतुःसप्ततिः
७५ = पञ्चसप्ततिः
७६ = षट्सप्ततिः
७७ = सप्तसप्ततिः
७८ = अष्टसप्ततिः
७९ = एकोनाशीतिः
८० = अशीतिः
८१ = एकाशीतिः
८२ = द्व्यशीतिः
८३ = त्र्यशीतिः
८४ = चतुरशीतिः
८५ = पञ्चाशीतिः
८६ = षडशीतिः
८७ = सप्ताशीतिः
८८ = अष्टाशीतिः
८९ = एकोननवतिः
९० = नवतिः
९१ = एकनवतिः
९२ = द्विनवतिः
९३ = त्रिनवतिः
९४ = चतुर्णवतिः
९५ = पञ्चनवतिः
९६ = षण्णवतिः
९७ = सप्तनवतिः
९८ = अष्टनवतिः
९९ = एकोनशतम्
१०० = शतम्
१००० = सहस्रम्

विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः ।
संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तः तासु चानवतेः स्त्रियः ।।

(अमरकोष २।९।८३-८४)

विंशत्याद्याः =विंशति प्रभृतयः, सर्वाः = संख्यावाचकशब्दाः,

दा = सर्वदा, एकत्वे = एकवचने (एव वर्तन्ते) ; तासु = संख्यासु (विंशत्यादयः शब्दाः), संख्येयसंख्ययोः = संख्येये (विशेष्ये), संख्यायां (विशेषणे च) अर्थात् विशेष्यवाचकाः विशेषणवाचकाश्च सन्ती-त्यर्थः। (तत्र) संख्यार्थे = विशेषणे, द्विबहुत्वे = द्विवचन-बहुवचने, स्तः = भवतः। च = पुनः, तासु = संख्यासु, आनवतेः = नवति संख्यापर्यन्तम् (विंशत्याद्याः सर्वाः संख्याः), स्त्रियः = स्त्रीलिङ्गाः (एव भवन्ति)।

(१) विशेषणवाचकस्य उदाहरणम् — विंशतिः बालकाः पठन्ति। शतं बालिकाः क्रीडन्ति। सहस्रं मुद्राः गृह्णाति। विंशत्या दण्डैः ताडयन्ति।

(२) विशेष्यवाचकस्य उदाहरणम् — बालकानां विंशतिः। आम्राणां द्वे विंशती। योद्धानां तिस्रो विंशतयः। विद्यार्थिनां त्रीणि शतानि। सैनिकानां पञ्च सहस्राणि।

तात्पर्यार्थ—

(१) तीन से अष्टादश (१८) पर्यन्त संख्यावाचक शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में बहुवचनान्त ही होते हैं।

(२) ऊनविंशति (१९) शब्द के रूप नित्य स्त्रीलिङ्ग ('मति' शब्द के समान) और सभी वचनों में प्रयुक्त होते हैं। यथा—ऊन-विंशतयः छात्राः।

(३) 'विंशति' (२०) से 'नवनवति' (९९) पर्यन्त शब्द सदा ही एकवचनान्त और नित्य स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

यथा — विंशतिः सैनिकाः।

नोट—विंशति' आदि शब्द जब विशेषणवाचक होते हैं तब ही एकवचनान्त और नित्य स्त्रीलिङ्ग होते हैं। किन्तु जब वही 'विंशति' आदि शब्द विशेष्यवाचक होते हैं तो यह नियम नहीं रहता। जैसे—आम्राणां द्वे विंशती (४० आम), नराणां तिस्रो विंशतयः। इत्यादि।

इति 'संख्यानांगणनाक्रमः' समाप्तः।

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ सूत्रसूची

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-सूत्रसूची

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-सूत्रसूची

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-धातु-सूची

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-धातु-सूची

धातुसूची समाप्ता

८ः लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ वार्तिकानुक्रमणिका

प्रश्न-पत्राणि

(१)

१. सुद्ध्युपास्यः, गव्यूतिः, विष्णु इह, अमी इशाः, किम्वुक्तम्, चक्रि अत्र, एषु पञ्चैव प्रयोगाः साध्यन्ताम्।
(अस्योत्तरं पृष्ठाङ्के ९, १०, १२, १८, १९, अवलोकनीयम्)।
२. सर्वे, क्रोष्टुः, मत्याम्, अनड्वान्, विदुषः, अमी, अमुना, अद्भिः एषु स्वेच्छया पञ्च प्रयोगाः साध्याः।
(अस्योत्तरं पृष्ठांके—४१, ५६, ६१, ७३, ९५, ९६, ९७, ९९, अवलोकनीयम्)।
३. भवानि, अभूत्, आतीत्, गोपायाञ्चकार, अक्रमीत्, अपुः, शृणु, अगमत् एषु कानिचित् पञ्चरूपाणि साधयत।
(अस्योत्तरं पृष्ठांके—११७ १२१, १२७, १२९, १३३, १३५, १३७, १३९ अवलोकनीयम्)।
४. जघनिथ, निष्यात, अधोक्, और्णुविष्ट, विभेति, अदीपि, गिलति, आनक् एषु पञ्चैव साधनीयाः।
(अस्योत्तरं पृष्ठाङ्के—१५३, १५७, १६१, १६५, १६७, १७७, १८७, १९१ अवलोकनीयम्)।
५. भाविषीष्ट, पच्यते फलम्, भिक्षाचरः सरसिजम्, जल्पाकः, वेपथुः, गां दोग्धपयः एषु चत्वारः प्रयोगाः साध्याः।
(अस्योत्तरं पृष्ठाङ्के—२२४, २२७, २३५, २३९, २४३, २५७ अवलोकनीयम्)।
६. कृष्णश्रितः, पञ्चगवम्, औत्सः, रैवतिकः, ग्रामीणः, अङ्गीस्यात्, युवतिः, एषु पञ्चैव प्रयोगाः साधनीयाः।
(अस्योत्तरं पृष्ठाङ्के—२६८, २७३, २८९, २९५, ३०५, ३४३, ३५५ अवलोकनीयम्)।

(२)

१. गव्यूतिः, अमुकेऽत्र, रामष्षष्ठः, उत्थानम्, शम्भू राजते, मनोरथः, एषु पञ्चप्रयोगाः सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः।

(अस्योत्तरं १०, १८, २१, २३, ३२, ३३ पृष्ठाङ्के अवलो-
नीयम्)।

२. रामाय, हरिणा, क्रोष्टा, पितरौ, श्रोणाम्, दध्नि, यूनः, युष्म-
कम्, एषु पञ्च प्रयोगाः स्वेच्छया साधयत।
(अस्योत्तरं—३९, ४८, ५५, ५७, ६४, ६९, ८० पृष्ठाङ्के
द्रष्टव्यम्)।

३. बभूविथ, अभूवन्, चिक्षयिथ, अग्लासीत्, जहि, अविजगे,
विभेति, एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः।
(अस्योत्तरं ११९, १२२, १३२, १३५, १५४, १६० पृष्ठाङ्के
अवलोकनीयम्)।

४. ननंष्ठ, बर्भजिथ, अनानीत्, मुषाण, चिकीर्षति, वरीवृत्यते,
अस्तावि, अभाजि, एषु पञ्चप्रयोगाः साधु साधनीयाः।
(अस्योत्तरं १७६, १८२, १९३, २००, २०८, २१०, २२६
पृष्ठाङ्के द्रष्टव्यम्)।

५. जनमेजयः, उच्छूनः, दुष्करः, भूतपूर्वः, उपराजम्, पञ्चगवधनः,
कुम्भकारः; एषु पञ्चप्रयोगाः साधु साधनीयाः।
(अस्योत्तरं २३६, २४०, २५२, २६२, २६६, २७२, २७६
पृष्ठाङ्के अवलोकनीयम्)।

६. आश्वपतम्, पारावारीणः, पैतामहकः, धानुष्कः, प्रथिमा, अमुतः
कल्याणक्रोडा, वामोरूः एषु पञ्चैव प्रयोगाः साधनीयाः।
(अस्योत्तरं २८८, ३१०, ३१७, ३२५, ३३५, ३५२ पृष्ठाङ्के
क्रमेण अवलोकनीयम्)।

(३)

१. सवर्णसंज्ञाविधायकं संहितासंज्ञाविधायकञ्च सूत्रं विलिख्य
प्रोहः, शिवेहि, वाग्घरिः संस्कर्ता, देवा इह, एषु केषु चत्वारः
प्रयोगाः, साधु साधनीयाः।
(अस्योत्तरं ५, ८, १३, १५, २३, २८, ३२, पृष्ठाङ्के क्रमेण
अवलोकनीयम्)।

ामान्, निर्जरसौ, सख्युः, नृणाम्, विश्वौहः, अष्टौ, युष्मान्, ताद्दक्, एषु केऽपि पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः।

(अस्योत्तरं : ८, ४५, ५०, ५८, ७२ ८२, ९३ पृष्ठाङ्के क्रमेण अवलोकनीयम्)।

भविता, भवेत्, आनर्च, जग्मतुः एधे, अचीकमत, अगात्, जुहोति, एषु पञ्च प्रयोगाः स्वेच्छया साधनीयाः।

(अस्मोत्तर ११५, १२०, १२६, १४२, १५८, १६६ पृष्ठाङ्के अवलोकनीयम्)।

४. अबोभूयिष्ट, वाचयति, अस्तावि, कदा आगतोऽसि, एधितव्यम् मार्ग्यः, सुशर्मा, कालिम्मन्या एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः।
(अस्योत्तरं २०९, २१३, २२४, २२८, २३०, २३३, २३७, २३८ पृष्ठाङ्के क्रमेण द्रष्टव्यम्)।

५. प्रातिपदिकार्थेति सूत्रं विलिख्य उदाहरणमुखेन साधु व्याख्या कार्या। (अस्योत्तरं पृष्ठाङ्के २२६ अवलोकनीयम्)।

(४)

१. सवर्ण-अनुनासिक-संयोगसंज्ञाविधायकानि सूत्राणि विलिख्य उपेन्द्रः, प्रार्च्छति, रामश्शेते, सेष दाशरथिः, एते प्रयोगाः साध साधनीयाः।
(अस्योत्तरं ५, ८, ११, १४, २१ पृष्ठाङ्के अवलोकनीयम्)।

२. 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः—' इति सूत्रं विलिख्य व्याख्या कार्या।
(अस्योत्तरं ३४ पृष्ठाङ्के अवलोकनीयम्)।

३. हरेः, लिट्सु पिपठीष्षु, पुमान्, उपानत्, चत्वारि, पयांसि, एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः।
(अस्योत्तर ४८, ७१, ९४, ९५, ९८, १०१, १०२, पृष्ठाङ्के द्रष्टव्यम्)।

४. भवितासि, अगोप्ताम्, अग्लासीत्, ईजतुः, दुग्धः, जहीहि, अदास्त एषु पञ्च प्रयोगाः साधु साधनीयाः।
(अस्योत्तरं ११६, १३१, १४०, १६१, १६९, १७७ पृष्ठाङ्के अवलोकनीयम्)।

व्याकरण-ग्रन्थाः

लघुशब्देन्दुशेखरः। नागेश भट्ट कृत। भैरवमिश्र कृत 'चन्द्रकला' (भैरवी) टीका। गोपाल शास्त्री नेने कृत नोट्स १-२ भाग सम्पूर्ण द्वि० सं०।

लघुशब्देन्दुशेखरः। नागेश भट्ट कृत। नित्यानन्द पन्त पर्वतीय कृत 'दीपक' टीका। षष्ठ संस्करण पञ्चसन्धि-अव्ययीभाषान्त

सिद्धान्तचन्द्रिका। रामाश्रम कृत। सदानन्द कृत 'सुबोधिनी' टीका तथा लोकेशकर कृत 'तत्वदीदिका' टीका। लिंगानुशासन नवकिशोरकर कृत संस्कृत टीका उणादि कोश एवं नोट्स १-२ भाग

सिद्धान्तकौमुदी। भट्टोजि दीक्षित कृत। वासुदेव दीक्षित कृत 'बालमनोरमा' टीका सं० गोगाल शास्त्री नेने। सम्पूर्ण १-४ भाग

सिद्धान्तकौमुदी। भट्टोजि दीक्षित कृत। गोपाल शास्त्री नेने कृत टीका रूपलेखन प्रकार तथा पंक्तिलेखन प्रकार आदि सहित 'सरला'। प्रथम भाग स्त्रीप्रत्ययान्त

परिभाषेन्दुशेखरः। नागेशभट्ट कृत। भैरवमिश्र कृत 'भैरवी टीका' तथा लक्ष्मण त्रिपाठी कृत 'तत्वप्रकाशिका' टीका सदाशिव कृत नोट्स

व्याकरणमहाभाष्यम्। पतञ्जलि कृत। कैयट कृत 'प्रदीप' नागेभट्ट कृत 'उद्योत' तथा रुद्रधर झा कृत 'तत्वलोक' टीका गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत बृहद भूमिका 'पाणिनीय परिचय' नवाह्निक भाग

१-३ आह्निक १-५ आह्निक ६-९ आह्निक